लेखक

श्री सरोज नाथ घोष

अनुवादकर्ता

पं० रूपनारायण पांडेय

भूतपूर्व सम्पादक

माधुरी, सुधा, नागरी-प्रचारक, कान्यकुब्ज,

निगमागमचंद्रिका, कृष्णा, इन्दु इत्यादि

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भवन

लखनऊ.

[illegible]तीयावृत्ति २२०० | सम्वत् २०१० वि० | मूल्य ४)

सन्ध्या नामक प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम तथा द्वितीय संस्करण सरस्वती
पुस्तक भण्डार लखनऊ ने प्रकाशित किया था। सरस्वती पुस्तक
भण्डार ने अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लखनऊ के
हाथों इसके प्रकाशन अधिकार बेच दिये थे और अब
अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस वालों ने हिन्दी
साहित्य भवन लखनऊ के हाथों प्रकाशन
अधिकार बेच दिया है। अस्तु इस
के प्रकाशन का अधिकार
हिन्दी साहित्य भवन

मुद्रक :—
पं० बिहारीलाल शुक्ल
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

प्राक्कथन

बङ्गभाषा के सिद्धहस्त अनुवादक, स्वनामधन्य पं० रूपनारायण पाण्डेय भूतपूर्व सम्पादक 'माधुरी' द्वारा अनुवादित 'सन्ध्या' के दो संस्करण हाथों-हाथ बिक गए। यह तीसरा संस्करण आपके कर कमलों में है। दो संस्करण, सरस्वती पुस्तक भंडार आर्यनगर लखनऊ ने प्रकाशित किए थे। कई वर्षों से यह सर्वाङ्गीण सुन्दर उपन्यास अप्राप्य था। अत्यधिक माँग होने पर हिंदी साहित्य भवन ने इसका नवीन संस्करण प्रकाशित कर हिन्दी-संसार को उपकृत किया है।

बङ्गभाषा के उदीयमान लेखक श्री सरोजनाथ घोष की यह अनुपम कलाकृति आपके मन पर अमिट-मधुर छाप छोड़ देगी। रूप के मोह में पड़े युवक रमेन्द्र द्वारा, परित्यक्ता सतीसाध्वी 'सन्ध्या' के मूक-रुदन, बन्धुत्व और मैत्री के उच्चतम आदर्श प्रेम और त्याग की अनोखी भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा ललित भाषा का मनहरा प्रवाह देखकर उसकी तुलना आप निस्संकोच शरत्‌बाबू की शैली से करने लगेंगे। इतने सुन्दर और सदा स्मरण रहने वाले उपन्यासों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है।

आशा है प्रेमी पाठक 'सन्ध्या' को पूर्ण तुष्टि से देखते हुए इसमें मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन के साधन प्राप्त करेंगे—

नाग पंचमी
संवत् २०१० वि०
मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर

रामस्वरूप गुप्त
उप सम्पादक, "परमार्थ"

सन्ध्या

पूर्वाभास

आरती समाप्त हो गई है। देवता के मन्दिर में शंख, घंटा आदि की मंगल ध्वनि बहुत देर पहले थम चुकी है। थका हुआ पथिक, गंगा के तट पर सीढ़ियों के ऊपर बैठा हुआ, उस समय भी कुछ सोच रहा था। चैत्र के मेघशून्य आकाश में त्रयोदशी का चन्द्रमा अमृत बरसाता हुआ हँस रहा था। गंगा के चंचल जल के ऊपर चंद्रमा की किरणें खेल रही थीं। दूसरे किनारे पर वृक्षपंक्ति की काली रेखा दिखाई दे रही थी।

बटोही का शरीर बलिष्ठ था, मुख की श्री कोमल और सुन्दर थी। ललाट में प्रतिभा की प्रदीप्त रेखा शोभा पा रही थी। किन्तु उनके नेत्रों की दृष्टि में निराशा की मलिनता झलक रही थी।

चन्द्रमा का प्रकाश और भी उज्ज्वल हो उठा। पास ही फूलों का बाग था। उससे फूलों की भीनी-भीनी सुगंध लिये हुए एक हवा का झोंका आया और चला गया। बटोही सहसा जैसे सोकर जागा हो, इस तरह चौंक उठा। वह उठकर जैसे पीछे फिरा, वैसे ही सहसा जैसे विस्मय से अवाक् हो गया। यह नंगी देह, सफ़ेद धोती पहने आदमी कौन है? चंद्रमा की किरणों से उस नवागत पुरुष का तेजस्वी मुखमण्डल और भी चमक उठा।

विस्मय-विमूढ़ युवक बटोही की ओर देखकर उस व्यक्ति ने पूछा—तुम कौन हो भैया?

युवक ने कहा—एक बटोही।

बटोही? इस समय गंगा के किनारे एकान्त में इस तरह अकेले बैठे क्या कर रहे हो? कहाँ जाओगे? उसने पूछा।

युवक अन्यमनस्क भाव से जैसे आप ही आप कहने लगा—कहाँ जाऊँगा?—यह तो नहीं जानता। इसके बाद बोला—अच्छा, आप बतला सकते हैं, रात कितनी बीती होगी?

नवागत ब्राह्मण ने तीक्ष्ण दृष्टि से युवक के मुख की ओर देखकर कहा—रात! रात तो जान पड़ता है, एक पहर बीत गई होगी।

इतनी रात बीत गई!" युवक ने शीघ्रता के साथ वहाँ से जाने का उपक्रम किया।

ब्राह्मण ने कहा—तुम बहुत थके जान पड़ते हो। मेरे साथ आओ।

उत्तर की अपेक्षा न करके ब्राह्मण देवता आगे-आगे चल दिए। युवक भी मंत्रमुग्ध की तरह उनके पीछे चल दिया।

रास्ते में दोनों ओर तरह-तरह के फलों और फूलों के वृक्ष लगे थे। थोड़ी ही दूर पर बराबर-बराबर बने हुए ऊँचे कलशों से सुशोभित कई मन्दिर थे। युवक ने गिनकर देखा, मन्दिर संख्या में बारह थे। चन्द्रमा के प्रकाश में सफेदी से पुते हुए देवमन्दिर चाँदी के पहाड़ों की तरह चमचमा रहे थे।

कुछ दूर आगे बढ़कर ब्राह्मण ऊँचे चबूतरे के ऊपर बने हुए अन्य एक मन्दिर के सामने आकर खड़े हो गए। मन्दिर का दरवाजा उस समय भी खुला हुआ था। भीतर से उज्ज्वल प्रकाश बाहर आ रहा था। युवक ने देखा, मन्दिर के भीतर रजत-निर्मित श्वेत शतदल कमल) के ऊपर महाकाल की मूर्ति लेटी हुई है और उस मूर्ति के वक्षःस्थल पर एक काले पत्थर की बनी काली की प्रतिमा विराजमान है। युवक ने खड़े होकर

देवी की मूर्ति को प्रणाम किया। मूर्ति अवश्य ही पत्थर की बनी थी, लेकिन वह यह क्या देखता है, माता के दोनों नयन जैसे सजीव हो उठे हैं! युवक अचम्भे में आकर खड़ा रहा। उसने फिर अच्छी तरह देखा, सचमुच प्रतिमा के दोनों नेत्रों से जैसे एक अपूर्व दीप्ति, अद्भुत ज्योति निकल रही थी! संगमरमर के बने सफेद फ़र्श पर युवक लोटने लगा और भाव के आवेश से गद्गद् होकर उसने देवी को बारम्बार अनेक बार प्रणाम किया। जिस कारीगर ने इस पाषाणमयी मूर्ति को गढ़ा है, उसकी निपुणता अवश्य ही प्रशंसनीय है, किन्तु जिस साधक ने आराधना करके इसमें प्राण-प्रतिष्ठा की है, या यों कहो कि जान डाल दी है, वह निश्चय ही धन्य है, और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह एक असाधारण शक्तिशाली महापुरुष है।

स्नेह के स्वर में ब्राह्मण ने कहा—"उठो! आओ।"

युवक एक बार और देवी की ओर देखकर ब्राह्मण के पीछे चल दिया। मन्दिर के आसपास अनेक कोठरियाँ बनी थीं। उस युवक को लेकर ब्राह्मण एक कोठरी के भीतर गए। उस कोठरी में कई आदमी बैठे थे। कोई पुस्तक पढ़ रहा था, कोई आग्रह के साथ सुन रहा था। एक आदमी तंबूरा छेड़ रहा था।

ब्राह्मण के वहाँ प्रवेश करते ही सब लोग सँभलकर अदब के साथ बैठ गए। कई व्यक्ति सम्मान और विनय का भाव दिखाते हुए ब्राह्मण के निकट उपस्थित हुए। ब्राह्मण ने इशारे से उन सबसे बैठ जाने के लिए कहा। युवक का हाथ पकड़कर वह ब्राह्मण और एक कोठरी में पहुँचे। जाते समय उस युवक ने देखा, सब लोग चुपचाप विस्मय के साथ उसी की ओर देख रहे हैं। क्रमशः और भी कई कोठरियाँ नाँघकर एक बड़ी कोठरी में दोनों ने प्रवेश किया।

उसमें तीसरा व्यक्ति और कोई नहीं था। किन्तु तरह-तरह

के भोजनों से भरे हुए अनेक पात्र रक्खे थे। ब्राह्मण ने युवक से कहा—पहले कुछ खा-पी लो, निश्चय ही तुम इस समय बड़े भूखे हो रहे हो।

बात कुछ झूठ न थी। सचमुच युवक को बड़ी भूख लगी थी। फिर ब्राह्मण की आज्ञा का न मानना भी उचित नहीं जान पड़ा। युवक ब्राह्मण की आज्ञा के अनुसार एक थाली खींचकर भोजन करने लगा।

इस अपरिचित प्रौढ़ ब्राह्मण के विचित्र व्यवहार से सचमुच युवक को बड़ा विस्मय हो रहा था। उनके शरीर की उज्ज्वल स्निग्ध कान्ति शान्त मधुर व्यवहार, स्नेहव्यंजक कण्ठ-स्वर—सभी कुछ जैसे उसे नया, अलौकिक अथवा यों कहो कि स्वर्गीय जान पड़ रहा था। अपरिचित व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार करना यद्यपि एक समय भारतवासियों की आदत में दाखिल था, तथापि धीरे धीरे यह बात जैसे दुर्लभ होती जा रही है।

भोजन समाप्त हो चुकने पर ब्राह्मण ने कहा—अब बतलाओ तो भैया, तुम कौन हो? कहाँ के रहने वाले हो?

प्रश्न का उत्तर न देकर युवक विस्मृत दृष्टि से ब्राह्मण के दोनों नेत्रों की करुण प्रदीप्त दृष्टि को देख रहा था। उसे चुप देखकर ब्राह्मण ने फिर वही प्रश्न किया। युवक का ध्यान टूटा। कुछ लज्जित भाव से ब्राह्मण को एक बार देखकर वह युवक इस तरह अपने संगीहीन जीवन का परिचय देने लगा—

एक प्रतिष्ठित और धनी घर में, उच्च कुल में उसका जन्म हुआ है। किन्तु संसार में अपना कहने योग्य कोई नहीं है। विश्व-विद्यालय की सभी परीक्षाएँ उसने पास कर ली हैं तो भी अभी तक ब्याह नहीं किया। उसने यही निश्चय कर रक्खा है कि विवाह ही मनुष्य के बन्धन की रस्सी है। उसकी समझ में गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है कि "तुलसी गाइ-बजाइ

के देत काठ में पाँव। इस बन्धन में जो एक बार बँध गया, उसे जन्म भर फिर छुटकारा नहीं मिलता—वह फिर मुक्ति के मार्ग का पता नहीं लगा सकता। संसार के साधारण मनुष्य जिसे सुख कहते हैं, नगेन्द्रनाथ (यह उस युवक का नाम था) को उसमें सुख का लेशमात्र भी नहीं देख पड़ता। और यही उसके लिए महा दुःख है। इसी अवस्था में वह दूर-दूर तक हो आया है, अनेक देश घूम आया है, बहुत लोगों से मिला-जुला है, किन्तु उसने कहीं सुख नहीं पाया। एक विराट अतृप्ति उसके हृदय में हर घड़ी लंबी साँसें छोड़ती है। उसे विश्वास हो गया है कि इस पृथ्वी पर सुख ही नहीं है, आनन्द भी नहीं है। पृथ्वी पर अगर कोई ऐसा आकर्षक पदार्थ या कार्य होता, जिसमें उसे सुख मिलता या उसे तृप्ति और सन्तोष प्राप्त होता तो वह अपना अहोभाग्य समझता। किन्तु कहाँ है वैसा कार्य ! कहाँ है वह आत्मविस्मृति !

कहते-कहते युवक के मुखमंडल में गहरी निराशा की मलिनता छा गई।

उसकी बातें सुनते-सुनते ब्राह्मण के दोनों नेत्र करुणा के भाव से और भी स्नेहपूर्ण हो उठे। ममता से मधुर-प्रशान्त स्वर में ब्राह्मण ने कहा—ठीक रास्ता तुम नहीं पा सके भैया ! संसार में इतने काम भरे पड़े हैं, और तुम्हें कोई काम ही ढूँढ़े नहीं मिला ! काम तो इतना करने को हैं कि एक जीवन क्या, ऐसे-ऐसे लाख जीवनों में भी तुम उसे चुका नहीं सकते, निःशेष नहीं कर सकते ! तुम्हारी आँखों के सामने ही ऐसे अनन्त काम पड़े हैं, जिन्हें तुम केवल आनन्द और तृप्ति पाने के लिए ही कर सकते हो। अब तक तुम्हें किसी ने वह मार्ग दिखा नहीं दिया, इसी से तुम्हारा मन इतनी अशान्ति भोग रहा है। तुम काम करना चाहते हो ?

ब्राह्मण ने तीक्ष्ण दृष्टि से युवक की ओर देखा।

नगेन्द्रनाथ ने दृढ़ स्वर में कहा—भगवन्, मैं अपने अस्तित्व को उसी काम में डुबा देना चाहता हूँ। आप यदि कोई ऐसा काम बता सकें, ऐसी कोई राह दिखा सकें तो मैं जन्म भर के लिए आपका दास हो जाऊँगा।

युवक के मस्तक पर हाथ रखकर ब्राह्मण ने कहा—मैं तुम्हारे ही जैसे एक मनुष्य को खोज रहा था। आओ बेटा, मेरे साथ आओ।

ब्राह्मण युवक का हाथ पकड़ उस कोठरी से निकल गए।

पहला परिच्छेद

शरद् ऋतु थी। तीसरा पहर बीत चुका था। यमुना खूब बढ़ी हुई थी और बड़े वेग से बह रही थी। उस पार खेत थे। किसानों की बहू-बेटियाँ गाती हुई अपने खेतों से गाँव की ओर लौट रही थीं।

ऐसे ही समय एक छोटी सी डोंगी में बैठे हुए तीन व्यक्ति जल-मार्ग की सैर करने निकले थे। उनमें एक मर्द था और दो औरतें। मर्द दोनों हाथों से डाँड़ चला रहा था। दोनों स्त्रियाँ चुपचाप बैठी हुई नदीतट में संध्या की शोभा निहार रही थीं। दोनों औरतें खूबसूरत थीं। एक तो फ़ीरोज़ई रंग की पारसी साड़ी पहने थी, जिसका किनारा कामदार था। उसके शरीर पर पतले रेशम का रंगीन ब्लाउज भी खूब खिल रहा था। पैरों में स्लीपर और कानों में तितली के आकार के हीरे के जड़ाऊ सोने के छोटे-छोटे बुन्दे थे। कलाइयों में दो-दो सोने की जड़ाऊ कीमती चूड़ियाँ थीं। अवस्था अन्दाजन सत्रह साल की होगी। मुख की कान्ति अत्यन्त कोमल और सलोनी थी। अपूर्व लावण्य झलक रहा था। दोनों नेत्र रसीले और दृष्टि चंचल कटाक्ष से युक्त थी। तीसरे पहर के ढलते हुए सूर्य की लाल आभा से उसका भावमय मुखमंडल अनुरंजित हो रहा था।

दूसरी अवस्था में पहली से कुछ बड़ी थी। उसके पुष्ट और भरे हुए शरीर में सौन्दर्य की ज्योत्स्ना जैसे लहरा रही थी। चेहरा गोल, मधुर और चित्त को अपनी ओर खींचनेवाला था। दोनों नेत्र विशाल और उनकी पुतलियाँ बिलकुल काली थीं। किन्तु उस की दृष्टि पहली के समान चंचल नहीं थी—वह गंभीर, भावमयी और

स्थिर थी। उसके मुख पर, ललाट पर कमल के पुष्प पर भ्रमर-पंक्ति के समान, छोटे-छोटे कुंचित केश मंद पवन से हिल रहे थे। वह एक सादी सिल्क की साड़ी और श्वेतवर्ण ब्लाउज़ पहने थी। सुगोल, चिकनी कलाइयों में सोफियानी सोने की चूड़ियाँ और ब्रेसलेट शोभायमान थे। इस श्वेतवसना सुन्दरी को देखने से जान पड़ता था, जैसे किसी ने एक चाँदी के पात्र के ऊपर एक ताजा खिला हुआ कनक-चम्पा रख दिया है।

क्रमशः सन्ध्या का अन्धकार घना होने लगा। मेघशून्य नीले आकाश में सन्ध्याकालीन पूर्ण चन्द्र निकल आया। साथ ही साथ अकस्मात् नदी का जल भी जैसे देवबालाओं की हास्य-छटा से प्रकाशित हो उठा।

अपेक्षाकृत अल्पवयस्क सुन्दरी ने दूसरी रमणी से कहा—भाभी, देखो, कैसा सुन्दर दृश्य है! कैसा मनोहर चित्र है! ऐसी सुखस्वप्न-सी मधुर संध्या, ऐसी मन को मुग्ध करनेवाली चाँदनी देखने का सौभाग्य बहुत दिनों से नहीं हुआ था।

शुभ्रवसना युवती ने मुसकिराकर कहा—तुमको तो सभी बातों में, सभी दृश्यों में काव्य का मजा आता है सरयू! मेरे हृदय में तो इतना कवित्व है नहीं बहन। मैं तो नित्य जैसी संध्या देखती हूँ, हमेशा जैसी चाँदनी निहारती हूँ, वैसी ही आज भी देख रही हूँ—मुझे तो आज कोई नई बात नहीं दिखलाई पड़ती।

सरयू अपने विशाल, भावमय, चंचल नेत्र आकाश की ओर उठाकर जोश के साथ कह उठी—नहीं भाभी, तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं। रोज जैसा देखती हो, वैसा ही दृश्य आज नहीं है; उसमें बड़ा अन्तर है। रात-दिन दादा के पास रहकर, उनके साथ विज्ञान की आलोचना करते-करते तुम्हारा हृदय एकदम गद्य (नीरस) हो गया है। नहीं तो ऐसी सुन्दर सुहावनी

संध्या तुम्हें रुचिकर न होती ! मैं नहीं जानती थी कि विज्ञान मनुष्य को इतना नीरस बना देता है ।

उस युवती ने कहा—होगा भाई ! मुझे तो कुछ भी अन्तर नहीं मालूम पड़ता । सौंदर्य का इतना आडम्बर समझने की शक्ति मुझमें नहीं है । और विज्ञान को क्यों दोष देती हो ? अगर मुझमें यह कमी है तो वह विधाता का अपराध है, जिसने मुझे वैसा हृदय नहीं दिया । विज्ञान पढ़ने के पहले भी तो मैं ऐसी ही कवित्व से कोरी थी ।

जरा चुप रहकर सरयू ने कहा—अच्छा भाभी, सन्ध्या की हवा में जब फूल खिलते हैं, तब क्या उनकी वह शोभा देख कर तुम्हारा मन मुग्ध नहीं होता ? नीले आकाश में चन्द्रमा जब हँसता है, तब उस परिपूर्ण ज्योत्स्ना के प्रवाह में अपने को डुबा देने के लिए क्या तुम्हारा हृदय व्याकुल नहीं हो उठता ?

दूसरी सुन्दरी ने गम्भीर भाव धारण करके कहा—यह मैं मानती हूँ कि फूल की महक बड़ी भीनी और मादक होती है और फूल की शोभा सुन्दर है । हवा उसकी महक मुझ तक ले आती है, उससे मुझे तृप्ति मिलती है । चन्द्रमा की शीतल किरणें शरीर को शीतल कर देती हैं और उनसे हृदय खिल उठता है, अतएव चन्द्रमा की चाँदनी भी मुझे भली लगती है । किन्तु तुम जैसे फूल को तोड़कर अपने हृदय के पास रखकर उसकी गंध और शोभा का उपयोग करना चाहती हो, आकाश में चन्द्रोदय होते ही जैसे उसके पास दौड़ जाना चाहती हो, उसकी किरणों में अपने अस्तित्व को डुबा देना चाहती हो, वैसा कोई भाव मेरे हृदय में नहीं उठता । कारण, किसी वस्तु की इंतिहा देखने की चेष्टा करने से अक्सर निराश ही होना पड़ता है । अति या अत्यन्त अधिकता किसी की भी अच्छी नहीं । मान लो, चन्द्रमा की किरणों के साथ हृदय को

मिला देने के लिए अगर चंद्रमा के पास जाना हो, तब तो बड़ी मुश्किल होगी। वहाँ जाना वैसा सुविधाजनक नहीं है। कारण विज्ञान कहता है—

ताली बजाकर सरयू कह उठी—जी हाँ वैज्ञानिका महाशया! लेकिन रहने दो अपना विज्ञान! तुम्हारा विज्ञान जो कुछ कहता है, उसे हम-जैसी क्षुद्रबुद्धि नारियों को जानने की कोई आवश्यकता नहीं। हम पृथ्वी का जो कुछ मधुर है, जो कुछ सुन्दर है, वही देखना पसन्द करती हैं, वही प्राप्त करना चाहती हैं। कारण, यही मनुष्य का स्वभाव है। लेकिन भाभी तुम्हारी सभी बातें बेढब हैं। तुम उत्साह के साथ किसी अच्छी वस्तु को अपनाना नहीं चाहतीं। जैसे उससे कुछ दूर—कुछ अलग रहना चाहती हो। अपने घेरे को छोड़कर जाने में तुमको बड़ा कष्ट होता है।

दूसरी रमणी ने उदास भाव से कहा—यह अगर कर सकूँ तो क्या कुछ बुरा है? घेरे के बाहर जाना, चित्त-बाहर काम करने के लिए उद्यत होना क्या कोई अच्छी बात है?

सरयू ने भी सहसा जैसे गंभीर भाव धारण कर लिया। उसने कहा—भाभी, यह भी क्या मनुष्य की अपने वश की बात है? प्रायः भाग्य ही मनुष्य को सीमा के बाहर ले जाता देख पड़ता है।

दूसरी युवती ने दृढ़ स्वर में कहा—मैं अदृष्ट या भाग्य को नहीं मानती। मनुष्य का मन उसके अधीन है। वह जैसा काम करेगा, फल भी उसे वैसा ही मिलेगा। कर्म ही सब कुछ है—कर्म के सिवा मैं और कुछ नहीं मानती। कर्म ही सुख-दुःख देने वाला ईश्वर है।

डाँड़ चलाना बन्द करके युवक जैसे कुछ सोच रहा था। इन औरतों की बात चीत की ओर शायद उसका ध्यान नहीं था। नाव अपने मन से जल पर तैरती चली जाती थी।

बड़ी रमणी सहसा कह उठी—दादा, अब और अधिक दूर जाने की जरूरत नहीं है। नाव फेर लो, रात हो गई।

युवक सहसा जैसे चौंक पड़ा—एक बार आकाश की ओर देखकर कोमल स्वर में उसने कहा—आज की रात बड़ी ही सुहावनी है। अभी तो घर लौटने को जी नहीं चाहता।

इसके बाद ही हाथ में डाँड़ पकड़कर उसने कहा—ना, आगे बढ़ने की जरूरत नहीं, लौटना ही चाहिए। प्रोफेसर मित्र साहब शायद आकर बैठे हमारी राह देख रहे होंगे। सीता, जरा हाथ को दाहनी ओर घुमा तो दे बहन।—बस, ठीक हो गया।

सरयू ने धीमे स्वर में कहा—हाँ, दादा ऐसे ही आदमी तो हैं! किताब छोड़कर हम लोगों के लिए बैठे रहनेवाले आदमी वह नहीं हैं। अच्छा भाभी, तुम दादा को इतना अधिक पुस्तक-कीट क्यों बनने देती हो? दिन-रात, चौबीसों घंटे केवल पुस्तक लिये रहते हैं! बस, एक ही धुन है—वैज्ञानिक आलोचना में ही डूबे रहते हैं। उन्हें जैसे यह खयाल ही नहीं कि संसार में विश्राम भी आवश्यक होता है। तुम भी उन्हें नहीं रोकतीं, बल्कि उल्टे उनका साथ देती हो। इसी से तो दादा इस तरह विज्ञान के पीछे दीवाने हो रहे हैं। मैं होती तो—

सीता ने हँसकर कहा—तो क्या मैं मना करती हूँ भाई? अपने दादा के शासन का भार तुम अपने हाथ में ले न लो! तुम्हारे भाई हैं, अपने आदमी ठहरे! हम ठहरीं पराई लड़की!

इस दिल्लगी से सरयू का मुँह लाल हो उठा। भावज को घूँसा दिखा कर उसने कहा—छिः भाभी, तुम बड़ी मुँहफट हो! कोई ऐसी भी दिल्लगी करता है!

सीता ने गंभीर भाव धारण करके कहा—मैं दिल्लगी नहीं करती, सच कहती हूँ।

सरयू ने कहा—फिर वही बात ! मैं आज घर चलकर दादा से सब कह दूँगी । देखिए सुरेश बाबू—

इतना कहकर ही न जाने क्या सोचकर सरयू चुप हो रही । सीता ने हँसते-हँसते कहा—मुझे भी बहुत-सी बातें कहनी हैं बहन ! बदला लेना मैं भी जानती हूँ ।

सुरेशचन्द्र उस समय कोई गीत गुनगुनाकर गा रहा था । नाव तेजी से चल रही थी ।

दूसरा परिच्छेद

नाव किनारे आकर लगी। पास के एक पेड़ के तने में नाव बाँधकर सुरेशचंद्र सड़क पर आकर खड़ा हो गया। सड़क के दोनों ओर लंबे-लंबे नीम के वृक्ष खड़े थे। चन्द्रमा की किरणें वृक्षों की डालों के भीतर से पत्तों से छन-छन कर इधर-उधर झाँक रही थीं।

तीनों जने तेजी के साथ उस सुनसान सड़क को नाँघकर पास ही के एक मकान में घुस गए। लम्बे-चौड़े हाल में एक लाल-टेन जल रही थी। पास ही के एक कमरे में प्रोफेसर मित्र खूब मन लगाकर कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। अपने साले सुरेशचन्द्र की आवाज सुनकर पुस्तक से आँखें उठाकर उन्होंने देखा। बहन, पत्नी और साले को जल-विहार से लौटकर आते देख उन्होंने किताब बन्द कर रख दी।

प्रोफेसर मित्र का नाम सुनीलचन्द्र मित्र था। उन्हें जान पड़ा, उनका सोता हुआ घर जैसे इन तीनों प्राणियों के आने से सजीव होकर जाग उठा। उनके विज्ञानमय शुष्कप्राय कर्म-क्लान्त हृदय के एक छोर में जैसे आनन्द की हिलोर दौड़ गई। चश्मा आँखों से उतारकर धीरे-धीरे टेबुल के ऊपर रखते हुए अपेक्षाकृत प्रफुल्लभाव से वह बोले—आज कितनी दूर घूम आए?

एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठते हुए सुरेश ने कहा—बहुत दूर। तुम तो घर का कोना छोड़कर कहीं हिलने का नाम ही नहीं लेते। तुम खुद वैज्ञानिक हो, इसलिए तुम्हें विशेष रूप से यह जानना जरूरी है कि सन्ध्या-काल की हवा—नदी-तट का निर्मल

जल-वायु तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए कितना प्रयोजनीय और उपयोगी है।

सरयू ने हँसकर कहा—यह आपकी वृथा चेष्टा है सुरेश बाबू! मेरे दादा इस मामले में बड़े ही लापरवाह हैं। व्याख्यान देकर और लोगों का स्वास्थ्य-सम्बन्धी अज्ञान दूर करने में यह जैसे निपुण हैं, वैसे ही अपने सम्बन्ध में लापरवाही रखने में भी अपना सानी नहीं रखते।

प्रोफेसर मित्र ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से बहन की ओर देखकर कहा—तू तो आजकल खूब तर्कवागीश हो उठी है सरयू!

मुसकराकर सरयू ने कहा—क्या करूँ दादा, तुम सा भी कोई दार्शनिक है, कोई वैज्ञानिक है; और मैं तार्किक हूँ। कुछ होना तो चाहिए ही।

सब जने खूब जोर से हँस पड़े।

इसी समय रसोइए ने आकर खबर दी, भोजन तैयार है। सब उठकर भोजन करने चले गए।

भोजन से छुट्टी पाकर सब जने बैठने के कमरे में आकर बैठे।

सरयू ने कहा—दादा, हम लोगों के साथ तुम कलकत्ते नहीं चलोगे? तुम्हारे कालेज में तो जल्दी ही छुट्टी हो जायगी; चलो न सब जने एक साथ ही चलें।

सीता ने स्वामी की ओर देखा। उस दृष्टि का अर्थ यही था कि वह भी इस प्रस्ताव का समर्थन करती है। सुनीलचन्द्र ने गम्भीर भाव से कहा—इस बार शायद मैं तुम लोगों के साथ नहीं चल सकूँगा। विज्ञान के बारे में मैंने जो नई पुस्तक लिखी है, उसी की आलोचना और परीक्षा में इस समय मैं लगा हुआ हूँ। अतएव सरयू, इस बार तुम लोगों के साथ जाकर छुट्टी बिताने की आशा मैंने छोड़ दी है।

सरयू ने कुछ रूठकर कहा—तुम्हारा विज्ञान ही क्या सबसे

बढ़कर है दादा ? संसार की और कोई भी वस्तु क्या तुम्हें नहीं चाहिए ?

बहन की इस मीठी झिड़की में जो उसके हृदय का भाव निहित था, वह सुनीलचंद्र से छिपा नहीं रहा। उन्होंने हँसकर कहा—प्यारी बहन, मनमें कुछ और न समझो। सचमुच कितनी बड़ी जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर ले रक्खी है, इसका ज्ञान तुम लोगों को नहीं है। इस छुट्टी के समय में ही अगर मैं अपनी यह पुस्तक पूरी तैयार करके न दे सकूँगा तो प्रकाशक के निकट मुझे बहुत ही लज्जित होना पड़ेगा। इस एकान्त स्थान को छोड़ कर और कहीं जाकर ऐसी पुस्तक लिखी भी नहीं जा सकती।

सीता अब तक चुप थी। अब की वह बोली—तुम्हें अकेले इलाहाबाद में छोड़कर मैं ही किस तरह कलकत्ते चली जाऊँ ? तुमको अकेले यहाँ बड़ा कष्ट होगा। मैं न जाऊँगी।

सुनीलचंद्र ने व्यस्तभाव से कहा—ना सीता, यह न होगा। तुम जाओगी क्यों नहीं। बुआजी को तुमने बहुत दिनों से नहीं देखा। उन्होंने चिट्ठी में तुम्हारे आने के लिए बड़ी ताकीद लिख भेजी है। न जाओगी तो वह बुरा मानेंगी। फिर पुरी जाने की भी तुम्हारी बहुत दिनों की साध है। जाओ, समुद्र की सैर कर आओ, जी भी बहल जायगा। यहाँ रहते-रहते तुम्हारा जी ऊब गया होगा। तुम जाओ, मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। मेरी देख-रेख रखने के लिए कामता मौजूद है। वह ठीक समय पर मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध कर देगा। मुझे कुछ भी असुविधा न होगी। और अगर हो सका तो छुट्टी समाप्त होने के कुछ पहले मैं भी तुम्हारे पास आ जाऊँगा। हाँ, तुम्हारे जाने के लिए कौन दिन ठीक हुआ ? सुरेश, तुम भी तो इन लोगों के साथ जा रहे हो न ?

सीता ने कहा—दादा तो जावेंगे ही, नहीं तो हम लोगों को ले कौन जायगा ?

सुरेश बोला—इसी रविवार को पंजाब-मेल से जाऊँगा। लेकिन तुम जो साथ चलते तो और ही आनन्द रहता। मुझे तो तुम जानते हो, औरतों को साथ लेकर घूमना मुझे एक बोझ सा लगता है।

हँसकर सुनीलचंद्र ने कहा—इस मामले में तो तुम फिर अच्छे हो; मैं तो तुम से और एक डिग्री बढ़ा हुआ हूँ। अतएव मेरा जाना और न जाना बराबर ही है। मैं जाता तो तुम्हारी बहन की देश-भ्रमण की साध अपूर्ण ही रह जाती। क्योंकि मैं घूमता-फिरता बहुत कम हूँ। दिन-रात किताब पढ़ते ही बिता देता हूँ। यही हाल वहाँ भी होता।

रैक के ऊपर तौलिया रखते-रखते सरयू कह उठी—यह तो कुछ झूठ नहीं है। जैसे देव वैसे ही देवी। मैं समझती थी, भाभी के कुछ अक्ल होगी; लेकिन कुछ भी नहीं—दोनों ही एक से बढ़कर एक पुस्तक के कीड़े हैं।

सीता ने हँसकर कहा—मैं तो हैरान हूँ कि ऐसे दादा की ऐसी बहन कैसे हुई?

सुरेशचंद्र ने सहसा बहनोई के सामने आकर धीमे स्वर में पूछा—तो क्या सचमुच तुमने हम लोगों के साथ न जाने का निश्चय कर लिया है? लेकिन मैं तो समझता हूँ, तुम चलते तो बड़ा अच्छा होता। ब्याह के बाद से आज तक तुम दोनों एक दिन के लिए भी जुदा नहीं हुए।

सुनीलचंद्र के होठों में हल्की हँसी की रेखा फूट उठी—वह जोर से हँसकर कह उठे—तुम्हारी कवित्व-शक्ति में अकस्मात् बाढ़ आ गई देख पड़ती है। देखो सीता, अपने दादा के लिए जल्दी कोई लड़की खोजो। हमारे भावी विरह की आशंका से तुम्हारे दादा बहुत चिन्तित हो उठे हैं।

सीता ने नीची नजर करके धीमे स्वर में कहा—दादा के ब्याह के योग्य पात्री तो तुम्हारे हाथ ही में है।

सीता यों कहकर सरयू की ओर देखकर हँस पड़ी। सरयू का मुखमंडल लज्जा-संकोच से लाल हो उठा। वह सिर झुकाए काम के बहाने वहाँ से उठकर दूसरी ओर चली गई।

प्रोफेसर मित्र ने जा रही बहन की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालकर कहा—सो तो मैं जानता हूँ, लेकिन सुरेशचंद्र तो अभी तक ब्याह करने को तैयार ही नहीं होते।

बीच ही में सुरेश बोल उठे—व्यर्थ की बातें छोड़ो, घड़ी की ओर तो देखो, बारह बज गए। आज बहुत परिश्रम करना पड़ा। अब चलकर सोना चाहिए।

सीता को यह मालूम था कि उसका भाई क्वाँरे रहकर देश-सेवा करने की इच्छा रखनेवाली एक सभा का मेम्बर है। इसलिए उसने इस प्रसंग को यहीं रहने दिया, आगे नहीं बढ़ाया।

सुरेशचंद्र उठकर सोने के कमरे की ओर धीरे-धीरे चला गया।

तीसरा परिच्छेद

सबेरे से ही आकाश में बादल जमा हो रहे थे। बीच-बीच में कभी-कभी वर्षा हो जाती थी; परन्तु बादल नहीं रहते थे। शरद् ऋतु होने पर भी आज की बदली देखकर यही जान पड़ता था कि वर्षा के दिन हैं। आज इतवार की छुट्टी थी। छुट्टी का दिन बड़ा लंबा जान पड़ता है, किसी तरह बीतने ही नहीं आता।

उदीयमान कवि रमेन्द्रनाथ दोपहर भर टेनीसन की ग्रंथावली के पन्ने उल्टा किए और स्वयं भी दो पृष्ठ कविता लिख डाली, फिर भी दिन जैसे बीतने ही न आता था। इसमें संदेह नहीं कि आज का दिन काव्य-चर्चा के लिए उपयुक्त था। लेकिन दिन भर केवल कविता करके तो नहीं बिताया जा सकता। किसी से मिले-जुले और वार्तालाप किए बिना जी नहीं मानता। मेस के और सब साथी और यार-दोस्त आज सबेरे ही स्टीमर पर चढ़कर जल की सैर करने चले गए थे। बनभोज करने के इरादे से वे लोग बहुत-सी खाने-पीने की सामग्री और दमचूल्हा भी साथ ले गए थे। रमेन्द्र से भी साथ चलने के लिए उन लोगों ने अनुरोध किया था लेकिन सबेरे से ही छाई हुई बदली में आकाश के रंगढंग देखकर रमेन्द्र ने घर छोड़कर स्टीमर-पार्टी के साथ सैर करने जाना मंजूर नहीं किया। बदली के दिन निराले में, एकान्त में बैठ कर कविता-रचना करने की प्रबल इच्छा से ही उसने जल-यात्रा से इनकार कर दिया था। किन्तु दिन भर सूने घर में बैठे रहने पर जब कविता करने का नशा उतर
सोचा आज वह एक बड़े भारी आनन्द के उप
गया। लहरों से भरी हुई नदी के वक्षःस्थल प

स्टीमर पर बैठकर साफ़ और ठंडी हवा खाने से, मेघमण्डित आकाश की अद्भुत शोभा देखने से और यार-दोस्तों के साथ बातचीत, हँसी-दिल्लगी करने से उसे जो तृप्ति होती, आनन्द मिलता, घर में अकेले बैठे रहने पर उसकी शतांश भी तृप्ति या आनन्द वह नहीं प्राप्त कर सका! दिन भर घूमने और सैर करने से हृदय में जो विमल आनन्द होता, उसके फलस्वरूप रात को बैठकर वह इससे कहीं अच्छी कविता की रचना कर लेता। लेकिन अब पछताना व्यर्थ था।

सन्ध्या का अन्धकार चारों ओर फैलने लगा। तब भी इष्ट मित्रों को लौटते न देखकर रमेन्द्र उठ खड़ा हुआ। कविता की कापी दराज़ के भीतर बंद करके उसने एकबार आकाश की ओर देखा। आज रविवार होने के कारण ट्यूशन पर जाने की भी जरूरत नहीं थी और इष्ट-मित्रों के लौट आने तक कमरे में अकेले बैठे रहना भी उस समय उसके लिए अत्यन्त कठिन हो रहा था। रमेंद्र कुर्ता पहन और रेशमी चादर कन्धे पर डाल-कर निकल पड़ा।

उस समय पानी गिरना बन्द था। दोपहर को जो पानी बरस गया था, उसके कारण सड़क पर कीचड़ हो रही थी। पैर रपट जाना तो एक साधारण बात थी। तब भी सड़क पर खूब चहल-पहल थी, भीड़ भी थी। कार्नवालिस स्ट्रीट में रमेंद्र पहुँचा और उत्तर की ओर चला। हेदो-तालाब के किनारे कुछ देर टहल आने का विचार था।

कुछ दूर आगे आने पर सहसा एक चीख़ सुनाई पड़ी। देखा, लोग इधर-उधर भाग रहे हैं, शोर-गुल हो रहा है। रमेंद्र ने सामने देखा, उससे थोड़े ही फ़ासले पर एक घोड़ागाड़ी बड़ी तेज़ी से चली आ रही है। कोचवान पूरी ताक़त से रास को खींचता हुआ बिगड़कर सरपट भाग रहे वैलर घोड़े को रोकने

की चेष्टा कर रहा है; लेकिन घोड़ा काबू में नहीं आता, बल्कि भागने में और भी तेजी दिखा रहा है। गाड़ी के भीतर भय से व्याकुल स्त्रियों की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। एक मर्द खिड़की से आधा धड़ निकाल कर नीचे फाँद पड़ने की चेष्टा कर रहा था। सड़क के दोनों ओर लोगों की भीड़ जमा हो गई। सबके मुख से यही सुनाई पड़ रहा था।—रोक लो, रोक लो! रमेंद्र ने देखा, सब लोग केवल चिल्ला रहे हैं, लेकिन सहायता के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता।

लिखने में तो बहुत समय लग गया, घटना में कुछ सेकेंडों का ही समय लगा होगा। पल भर में ही रमेंद्र सब समझ गया और उसने अपने कर्त्तव्य का निश्चय भी कर लिया। वह कवि अवश्य है, लेकिन आज कल के कवियों के समान लता-वल्लरी नहीं है। उसके शरीर में असुर की-सी शक्ति और मन में साहस भी है। भय किसे कहते हैं, वह नहीं जानता। उस समय गाड़ी कुछ आड़ी हो गई थी और घोड़ा फ़ुटपाथ के ऊपर चढ़ने का उपक्रम कर रहा था। रमेंद्र एकदम छलाँग मारकर घोड़े के सामने पहुँच गया, और सोच-विचार में न पड़ कर मजबूती के साथ उसकी रास पकड़कर ज़ोर से अपनी ओर खींची। एकाएक बाधा आ पड़ने से घोड़े ने झिटका मार कर अपना मुँह छुड़ाने की चेष्टा की; लेकिन रमेंद्र की पकड़ से वह छूट न पाया। रमेंद्र ने अपने क़ाबू में करके पूरी ताक़त से खींच-कर घोड़े को फ़ुटपाथ से सड़क पर उतार लिया। गाड़ी रुक गई।

तब चारों ओर से तमाशाई लोग दौड़-दौड़कर घटनास्थल पर जमा होने लगे। गाड़ी के भीतर जो मर्द बैठा था, वह तेजी से खिड़की खोलकर नीचे उतर आया। साईस ने आकर घोड़े का मुँह पकड़ लिया। पल भर में ही यह सब हो गया।

उस पुरुष ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—आज आप ही की कृपा से हम लोगों के प्राणों की रक्षा हुई। धन्यवाद!
(ध्यान से देखकर) अरे कौन? तुम हो रमेंद्र? वाह!

उस पुरुष ने जोश के साथ रमेंद्र का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

रमेंद्र ने कहा—कौन, भाई सुरेश?—तुम यहाँ कहाँ?

सुरेश ने कहा—घटनाचक्र तो देखो! मित्र, आज तुमने ही हमारे प्राण बचाए।

कुंठित स्वर में संकोच प्रकट करते हुए रमेंद्र ने कहा—अजी इस जिक्र को छोड़ो। यह बतलाओ, तुम इतने दिन कहाँ रहे? मैंने सुना था, तुम सिविल सर्विस पास करके विलायत से आ गए हो, लेकिन तुमने नौकरी नहीं की। इससे अधिक कुछ नहीं मालूम हो सका।

सुरेश ने कहा—यह कहानी बहुत लम्बी चौड़ी है, पीछे सुन लेना। यह मेरी बहन सीता है। इसे तो तुम पहचानते ही हो और यह सीता की नंद सुनील बाबू की छोटी बहन सरयू हैं।

रमेंद्र सहसा चौंक उठा। यह वही सीता है!—कितने दिनों के बाद मुलाक़ात हुई।

चारों ओर कौतूहली भीड़ को जमा होते देखकर सुरेशचन्द्र ने कहा—चलो, घर तो पास ही है—तुम भी जानते हो। बुआ-जी तुमको देखकर बहुत प्रसन्न होंगी। कई बार तुम्हें पूछ चुकी हैं। आओ, गाड़ी में जगह है।

रमेंद्र जरा इधर-उधर कर रहा था। किन्तु जनता की कौतूहली दृष्टि से परित्राण पाने की आशा से रमेंद्र सुरेश के पास जाकर गाड़ी में बैठ गया। बाल्यबन्धु के अचानक यों मिल जाने से रमेन्द्र के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे, पुरानी बातें याद आने लगीं।

सुरेश ने कोचवान को गाड़ी धीरे-धीरे चलाने की आज्ञा दी। साईस घोड़े का मुँह पकड़कर चला।

सुरेशचंद्र ने कहा—तुमने अपनी विपत्ति की पर्वा न करके घोड़े को पकड़ लिया—बेशक तुम बड़े साहसी हो। गाड़ी तो गई ही थी, उसका कुछ दुःख न था; किन्तु सीता और सरयू की जो दशा होती, उसका विचार आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

दोनों युवतियों की घबराहट और हृदय की धड़कन शायद अभी तक बन्द नहीं हुई थी। कारण, वे उस समय भी चुपचाप पत्थर की मूर्ति सी बनी बैठी थीं।

रमेंद्र ने मित्र की बात पर ध्यान न देकर अपने को सँभाला और सीता की ओर देखकर कहा—आपने क्या मुझे पहचाना?

सीता उस समय कुछ कुछ प्रकृतिस्थ हो चुकी थी। उसने कहा—आप मुझे आप कहकर संबोधन न कीजिए। लड़कपन से ही आप दादा के मित्र हैं। इधर केवल चार वर्ष से आपके दर्शन नहीं हुए थे। इतने दिनों का परिचय क्या इतने थोड़े दिनों में भूला जा सकता है?—खैर, अपनी प्राणरक्षा करने के लिए मैं क्या कहकर आपको—

बीच ही में रोककर रमेन्द्र ने कहा—उस बात की चर्चा छोड़िए। कौन भला आदमी ऐसी दशा में चुपचाप खड़े-खड़े तमाशा देख सकता था? यह कौन मैंने ऐसी अद्भुत बात कर डाली है, जिसके लिए आप लोग इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, इस तरह कुंठित हो रहे हैं?

सरयू अब तक चुप-चाप बैठी थी। रमेंद्र को वह नहीं जानती थी, उसने उसे पहले कभी देखा भी न था। मगर हाँ, अनेक बार सीता और सुरेशचन्द्र के मुख से वह रमेन्द्र की बातें सुन चुकी थी। अतएव रमेन्द्र का नाम उसके लिए अपरिचित न था। उसने सुन रक्खा था कि रमेन्द्रनाथ सुरेशचन्द्र का बड़ा घनिष्ट बाल्यबन्धु

है। बोलने का कोई मौका न पाकर वह अब तक चुपकी बैठी हुई थी। इस समय मौका पाते ही वह बोल उठी—ऐसा न कहिए। रास्ते में इतने सब मर्द ही खड़े थे—सब तमाशा देख रहे थे, कोई आगे नहीं बढ़ा। इतने आदमियों के बीच क्या कोई भी भला आदमी न था? किन्तु प्राणों की ममता छोड़कर और कोई भी तो हमें बचाने नहीं आया! सभी का हृदय क्या एक-सा होता है?

रमेन्द्र ने अभी तक ध्यान देकर सरयू को देखा नहीं था। अब उसने अच्छी तरह इस प्रगल्भ युवती को देखने की चेष्टा की। गाड़ी के भीतर अँधेरा था, अच्छी तरह चेहरा नहीं देख पड़ता था। सहसा सड़क की उज्ज्वल गैस की रोशनी सरयू के मुख पर पड़ी। रमेन्द्र ने सरयू को देख लिया। बेशक युवती का स्वरूप एक देखने की चीज़ है।

बात का रुख फेरने के लिए रमेन्द्र ने कहा—खैर, इन बातों को जाने दीजिए।—भाई सुरेश, इतने दिनों से तुमसे भेंट नहीं हुई। बतलाओ तो, तुम कहाँ थे? एक चिट्ठी भी नहीं लिखी तुमने! तुम्हारे घर से कई बार खबर जाननी चाही, लेकिन ठीक समाचार न मिल सके। केवल इतना ही सुना कि तुम सारे भारतवर्ष की यात्रा करने निकले हो।

सुरेश ने कहा—हाँ, यह ठीक समाचार था। विलायत से लौट आने के बाद से बराबर भ्रमण करता आ रहा हूँ। आज इलाहाबाद से आए दो दिन हुए। इन लोगों की इच्छा कालीजी के दर्शन की हुई, इसी से इन्हें कालीघाट ले गया था। वहीं से हम लोग लौटे आ रहे थे। रास्ते में एकाएक एक उपद्रवी लड़के ने एक लाल दियासलाई जलाकर घोड़े के सामने फेंक दी। घोड़ा बहुत दिनों से अस्तबल में बँधा रहा है, इसीसे उजाला देखकर भड़क गया।

रमेन्द्र ने पूछा—अब तो कलकत्ते में ही रहोगे न?

सुरेश—अधिक दिन नहीं ठहरूँगा। बहुत अधिक रहा तो बस एक सप्ताह। उसके बाद पुरी जाऊँगा। सीता ने कभी समुद्र नहीं देखा। मैंने भी भ्रमण करने का प्रण कर रक्खा है। पुरी में कुछ दिन रहकर यह निश्चय करूँगा कि अब कहाँ चलना चाहिए?

रमेन्द्र—तुमने सिविल सर्विस पास करके भी नौकरी क्यों नहीं की? कितने ही लोग जिले का हाकिम होने के लिए सिफारिशें कराते हैं, और तुमने हाथ में आई लक्ष्मी को पैरों से ठेल दिया! यह मुझे मालूम है कि तुमको रुपयों की कुछ कमी नहीं है। मैं पेट पालने के लिए नहीं कहता, लेकिन क्षमता और पद गौरव तो तुच्छ वस्तु नहीं है। कम-से कम कमिश्नर तो तुम जरूर ही बनाए जा सकते थे।

सुरेश ने गम्भीर भाव से कहा—भाई, मुझे परीक्षा पास करने की एक सनक या नशा अवश्य है। इसे तुम मेरा स्वभाव भी कह सकते हो। सभी कहते हैं, सिविल सर्विस की परीक्षा कठिन होती है, इसी से मैंने सोचा, चलो, यह परीक्षा भी पास कर लेनी चाहिए। इसके सिवा विलायत देखने की इच्छा लड़कपन ही से प्रबल थी। इसी से एक पंथ दो काम कर डाले। लेकिन गुलामी कभी मैंने पसंद नहीं की और क्षमता या पदगौरव लेकर ही क्या करूँगा? फिर वह क्षमता भी नकली है, असली नहीं। इसके सिवा क्षमता के गर्व में पड़कर क्या अपनी मनुष्यता को भी तिलांजलि दे दूँ? ना भाई, उसमें कुछ भी आनन्द या सुख नहीं। इसी से नौकरी मैंने स्वीकार नहीं की। लो, घर आ गया, उतरो। ये बातें पीछे होती रहेंगी।

सरयू और सीता पहले ही गाड़ी से उतरकर अन्तःपुर में चली गई मित्र का हाथ पकड़कर सुरेशचन्द्र गाड़ी-बरामदे की बगलवाली सीढ़ियों से ऊपर की बैठक को गए।

चौथा परिच्छेद

दूसरे खंड में एक लम्बे-चौड़े कमरे में ले जाकर सुरेशचन्द्र ने रमेन्द्र को बिठलाया।

उस कमरे में टेबुल, कुर्सी या सोफा कुछ नहीं था, बल्कि एक धुली हुई शतपंजी फर्श पर बिछी हुई थी। उसके ऊपर एक सफेद जाजिम पड़ी हुई थी। विलायत से लौटे हुए उच्च शिक्षित धनी-समाज के एक युवक के कमरे में ऐसी विचित्र सजावट देखने की कल्पना भी रमेन्द्र कभी नहीं कर सकता था। उसने देखा, कमरे की दीवारों में एक ओर ईसा, सेंट पाल आदि पश्चिम के महात्माओं की और दूसरी ओर बुद्ध, चैतन्य; नानक, रामकृष्ण परमहंस, शंकराचार्य, :स्वामी दयानन्द आदि भारतीय महर्षियों की तसवीरें लगी हुई थीं। एक तरफ शेक्सपियर, मिल्टन, वर्डस्वर्थ, टेनीसन, स्काट, डिकेन्स, टाल्सटाय, ह्यूगो, राममोहन राय, बंकिमचन्द्र, विद्यासागर, विवेकानन्द, गो० तुलसीदास, सूरदास, रवीन्द्रनाथ, कबीर आदि पूर्व तथा पश्चिम के अनेक मनीषी कवियों, लेखकों और औपन्यासिकों के चित्र गृहस्वामी की सुरुचि और श्रद्धा का पूर्ण परिचय दे रहे थे। कई एक उत्तम प्राकृतिक छटा के चित्र भी वहाँ दिखाई दिए। कई आल्मारियों में अँगरेजी, संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की बहुत-सी उच्च कोटि की पुस्तकें कायदे से सजाई हुई रक्खी थीं।

कई वर्षों से रमेन्द्र का इस घर में आना नहीं हुआ। इसी बीच में इतना परिवर्तन हो गया! वह एकाग्रता के साथ कमरे को देख रहा था, इसी समय सुरेश ने आकर पूछा—क्या देखते हो, मेरी रुचि का परिवर्त्तन? तुम यही सोच रहे होगे कि

विलायत से लौटकर मुझे हमेशा हैट, कोट, पतलून पहनकर घूमना और टेबुल, कुर्सी का व्यवहार करना चाहिए था, सो उसके बदले यह भूमि-शय्या ! ना भाई, विलायत से आकर मेरी समझ में यही बात आई है कि भारतीय के लिए धोती, कुर्ते का पहनावा ही ठीक है।

इस बारे में रमेंद्र भी सुरेश से सर्वांश में सहमत था।

जूते उतारकार सुरेश उसी फर्श पर बैठ गया। दोनों मित्रों में इसी प्रसंग पर वार्त्तालाप हो रहा था, इतने में दासी ने आकर कहा—भैयाजी, बुआजी आपको याद कर रही हैं।

बुआजी अर्थात् सुरेशचन्द्र की बुआ। दासी बहुत पुरानी थी, उसने सुरेश को अपनी गोद में खिलाया था, इसी लिए वह विलायत से लौटे हुए सुरेश को साहब या मिस्टर घोष न कहकर भैयाजी ही कहा करती थी। किसी एक नौकर ने एक बार सुरेशचंद्र को "साहब" कहने की गल्ती की थी, तब सुरेश ने बहुत डाँटा था। तब से कोई भी उसे साहब नहीं कहता।

सुरेश ने कहा—चलो रमेन।

रमेंद्र उठ खड़ा हुआ। कई साल पहले न जाने कितनी बार इस घर में आकर वह इन्हीं बुआ के हाथ की बनी तरकारी, चटनी, अचार, पापड़ और कच्ची-पक्की रसोईं खा गया है। वही पुरानी याद उसे इस समय आ गई।

दोनों मित्र अंदर गए। बुड्ढी बुआजी एक शीतलपाटी पर बैठी थीं। हमेशा से वह इस मकान की मालकिन हैं। भाई के साथ धर्ममत या सामाजिक रीति नीति के किसी-किसी मामले में उनका मतभेद अवश्य था, लेकिन सदाचार-व्यवहार की अपनी स्वतंत्रता उन्होंने बनाए रक्खी। इसके लिए कभी उनके भाई को या उन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई। अब उनका भतीजा भी बुआ की आचार-निष्ठा के बारे में किसी तरह

का प्रतिवाद नहीं करता। बल्कि उसकी बराबर यही चेष्टा रहती है—इस ओर ध्यान रहता है कि बुआ पूर्ण मात्रा में अपनी इच्छा और मत के अनुसार काम करती रहें—उसमें कोई बाधा न पड़ने पावे। बात यह थी कि सुरेशचंद्र अपनी बुआ को बहुत मानता था, उनपर बड़ी श्रद्धा रखता था। मछली-मांस की ओर भी उसकी विशेष रुचि नहीं थी। वह अपनी बुआ के हाथ का बना निरामिष आहार करके ही अधिक तृप्त होता था।

रमेंद्र ने जाकर बुआजी के पैर छुए।

बुआ ने स्नेह के साथ कहा—आओ बेटा रमेन, अच्छे तो रहे? बहुत दिनों से तुमको नहीं देखा था। घर में तो सब कुशल है न?

रमेंद्र की दृष्टि पास ही के कमरे की ओर लगी हुई थी। उधर ही दृष्टि रखकर उसने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया—जी हाँ। सब कुशल है।

बुआ ने कहा—सीता कह रही थी कि आज तुमने ही उन सबकी जान बचाई। तुम अगर वहाँ पहुंचकर घोड़े को न पकड़ लेते तो आज बड़ा अनर्थ हो जाता। जुग-जुग जियो बेटा, भगवान् ने ही आज तुम को वहाँ भेज दिया।

सुरेश कह उठा—यही बात है बुआजी! आज अगर रमेन उस समय वहाँ न आ जाता तो सर्वनाश ही हो जाता!—सीता कहाँ गई?

बुआ ने कहा—सीता उस कमरे में है बेटा। कुछ जल पान का प्रबन्ध करने के लिए गई है।—जाओ भैया रमेन, तुम तो घर के ही लड़के हो। तुमसे कुछ पर्दा या संकोच नहीं है।

रमेन्द्र अपने मित्र के साथ पास ही के प्रकाशपूर्ण कमरे में दाखिल हुआ। वह कमरा बिल्कुल नए फ़ैशन से सजाया हुआ था। सुरेशचचंद्र के बैठने के कमरे की सजावट बिलकुल और ही

ढंग की थी। सुरेशचन्द्र के पिता इस कमरे को "ड्राइंग रूम" की जगह काम में लाते थे। पाश्चात्य रुचि के अनुसार यह सजाया हुआ था। पिता की स्मृति के प्रति सम्मान दिखलाने के लिए सुरेशचंद्र ने अपनी रुचि के विरुद्ध होने पर भी, इसके साज-सामान में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया था।

उज्ज्वल प्रकाश में रमेंद्र ने देखा, सीता एक गद्दीदार कुर्सी के ऊपर बैठी है। सामने एक सफ़ेद पत्थर के टेबुल पर दो बर्तनों में तरह-तरह की मिठाइयाँ और फल क़ायदे से सजाकर रक्खे हुए हैं।

रमेन और सुरेश को आते देख सीता उठकर खड़ी हो गई। रमेंद्र ने देखा, सीता के शरीर में रूप फटा पड़ता है, उसका सौन्दर्य और खड़े होने का ढंग अपूर्व है। कई साल पहले उसने सीता को जिस रूप में देखा था, उसमें आज बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। परिपूर्ण यौवन उसके प्रत्येक अंग पर अधिकार कर चुका है। रमेंद्र उसे देखकर जैसे चौंक पड़ा। एक दिन ऐसा था, जब शायद वह चाहता तो सीता सहज ही उसकी अर्धांगिनी हो सकती थी— मगर अब उन बातों की याद करना भी पाप है। आज उन बीते हुए दिनों को याद करने से कोई लाभ नहीं।

किंतु तो भी रमेंद्र के हृदय की हलचल शान्त नहीं हुई।

सीता ने स्निग्ध मधुर स्वर में कहा—आवो। दादा, रमेन बाबू के साथ तुम इधर बैठो।—रमेन बाबू, हम लोगों के यहाँ खाने-पीने में आपको कुछ आपत्ति तो नहीं है?

सुरेश विलायत हो आया था और इस परिवार के लोग ब्रह्म-समाजी थे। पर रमेंद्र अपने को सनातनधर्मी कहता था। इसीलिए सीता ने यह प्रश्न किया।

रमेंद्र का चेहरा लाल हो उठा। उसने कुछ तीव्र भाव के साथ कहा—आपत्ति? यहाँ आपके हाथ का खाने में मुझे आपत्ति

होगी ? आश्चर्य तो यही है कि आप ऐसा प्रश्न कर रही हैं। मैंने इस घर में खाने में क्या कभी आपत्ति की है ? बुआजी के हाथ की रोटी-दाल तो मैं अनेकों बार खुशी से खा चुका हूँ। आप क्या भूल गईं ?

सुरेश ने हँसकर कहा—तब तो सीता छोटी थी। बचपन की बातें अक्सर बड़े होने पर भूल जाया करती हैं। क्यों न सीता ?

सीता ने नजर नीचे करके कहा—मैं भूली नहीं हूँ। मैंने यह ख़याल करके यह प्रश्न किया था कि अवस्था बढ़ने के साथ ही साथ मनुष्य के मत में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है।

पास ही के दरवाजे से सरयू उस कमरे में प्रवेश कर रही थी। वह कपड़े बदलने गई थी। अपनी भावज के पास जाकर उसने धीमे स्वर में पूछा—क्या बातचीत हो रही है भाभी ?

इसके बाद रमेंद्र की ओर फिरकर उसने धीर भाव से कहा—आप बैठ जाइए, खड़े क्यों हैं ?

रमेंद्र एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया। सरयू के शरीर में जवानी चढ़ रही थी। उस वयःसंधि की अवस्था में पड़ी हुई नवपरिचित तरुणी की इस सप्रतिभ अर्थात् संकोचहीन आत्मीयता के भाव ने रमेंद्र को मुग्ध कर लिया।

जलपान समाप्त हो चुकनेपर सरयू बोली—आज की उस दुर्घटना का स्मरण हो आने से मेरे तो अब भी रोमांच हो आता है। आप उसे चाहे जितनी छोटी बात समझें रमेन बाबू, लेकिन सच तो यह है कि अगर आप न आ जाते तो····

बीच ही में बाधा देकर रमेंद्र ने कहा—आप उस बात को जैसा महत्व दे रही हैं, उससे तो मैं समझता हूँ, भविष्य में लोग कर्त्तव्य पालन को भी अपनी बहादुरी समझने लगेंगे। मैं तो यही समझता हूँ कि कर्त्तव्य-पालन से अधिक मैंने कुछ नहीं किया।

सुरेशचन्द्र मुँह में एक पान रखकर बोले—कर्त्तव्य ही सही, लेकिन प्राणों का मोह छोड़कर इस तरह कर्त्तव्य का पालन करने ही को कितने लोग तैयार होते हैं ? खैर, रमेन जब इतने कुंठित हो रहे हैं, तब इस चर्चा को छोड़ दो, और बातें करो।—हाँ, खूब याद आया, तुम तो एक बड़े भारी कवि हो गए हो रमेन ! उस दिन मैंने तुम्हारी "यूथिका"—जो अभी प्रकाशित हुई है—पढ़ी थी। खूब लिखा है । इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी कविता सजीव होती है। सीता बड़ी कड़ी समालोचना करनेवाली है; किसी की रियायत करना नहीं जानती। यह भी तुम्हारी यूथिका की उस दिन प्रशंसा कर रही थी।

सरयू विस्मय के साथ कह उठी—यही क्या यूथिका के कवि रमेंद्रनाथ हैं ? धन्य है ! कवि के हृदय में केवल कोमल कल्पना के भाव ही नहीं हैं, बल्कि एक सच्चे वीर की तरह साहस भी है ! बेशक यह एक नई बात है !

रमेंद्र ने सिर झुकाया।

सुरेश ने कहा—सीता, यूथिका उठा तो ले आओ। आज कवि के सामने ही उसकी कविता का आनन्द लिया जाय ।

इलाहाबाद से आने के समय सुरेश और सीता अपनी पसन्द की चुनी हुई उत्तम पुस्तकें भी साथ लेते आए थे। सीता जाकर यूथिका की प्रति ले आई।

सुरेश ने कहा—तुम्हारी पुस्तक को मैं कई बार खूब मन लगाकर पढ़ चुका हूँ। यहाँ तक कि मुझे उसकी अनेक पंक्तियाँ याद हो गई हैं।

रमेंद्र का हृदय पुलकित हो उठा। कवि के लिए इस प्रकार की अयोचित प्रशंसा एक बहुत बड़ा पुरस्कार होती है । रमेंद्र ने कहा—मुझे नहीं मालूम था कि अंग्रेजी के आगे अपनी मातृभाषा पढ़ने का तुमको इतना शौक़ है ?

सुरेश—क्यों ? क्या जब हम-तुम कालेज में एक साथ पढ़ते थे, तब की बात तुम भूल गए ? मैं तो सदा से मातृभाषा की अच्छी रचनाओं का परम भक्त हूँ।

रमेन्द्र—हाँ, सो तो याद है। मगर बहुत लोग पीछे से अँगरेजी के परम-भक्त बन जाते हैं।

सुरेश—ओः। मैं विलायत गया था, इसी से तुमने ऐसा समझ लिया ? क्या विलायत जाने से. मातृभाषा को भूल जाना अनिवार्य होता है ? जो लोग विलायत-यात्रा के बाद मातृभाषा से घृणा करने लगते हैं, वे वास्तव में मूर्ख हैं।

रमेन्द्र ने कुछ लज्जित होकर कहा—नहीं जी, यह बात नहीं है। मैं तुमको ऐसा नहीं समझता—

सीता कह उठी—दादा तो कविता के परम भक्त हैं। कविता की जो नई पुस्तक प्रकाशित होती है, उसे अवश्य खरीदते और पढ़ते हैं। बँगला-कविता के ऊपर तो इनको बड़ी ममता और बड़ा अनुराग है रमेंद्र बाबू !

सरयू से दिल्लगी किये बिना नहीं रहा गया। बोली—लेकिन मुझे आश्चर्य है कि ऐसे दादा की ऐसी बहन तुम कैसे हुईं भाभी ? काव्य में तुम्हारी तनिक भी आसक्ति मैं नहीं देखती। हाँ, रमेन बाबू बेशक बड़े भाग्यशाली हैं; क्योंकि इनकी पुस्तकें पढ़ते तुमको मैंने कई बार देखा है।

सुरेशचन्द्र हँसने लगा ! सीता के अधरों पर भी मुस्कान की हल्की रेखा खिंच गई। रमेंद्र को इस तरुणी के सरल व्यवहार और वार्तालाप से बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई।

इसके उपरान्त काव्य की आलोचना और अध्ययन आरम्भ हुआ। सब लोग उसमें इतने मग्न हो गए कि घड़ी ने टन-टन करके ग्यारह बजाए, तब उन्हें होश हुआ। रमेंद्र चौंक कर उठ खड़ा हुआ। बोला—ओह, बड़ी रात हो गई !

सुरेश के आग्रह से भी फिर वह नहीं ठहरा, बोला—आज जाता हूँ भाई।

सुरेश ने कहा—अच्छा, कल संध्या के समय तुम्हारा निमंत्रण रहा। भूलना नहीं, आना जरूर।

सीता ने कहा—हाँ, जरूर आइएगा। हम लोग आपकी राह देखेंगे।

रमेंद्र ने कहा—निश्चय आऊँगा।

बुआ को प्रणाम करके, सबसे बिदा होकर, अन्यमनस्क भाव से रमेंद्र अपने मेस की ओर चल दिया।

पाँचवाँ परिच्छेद

अब तो रमेंद्र की काव्य-कल्पना में अच्छी तरह बाधा पड़ने लगी।

बाल्यबन्धु सुरेश के घर में अक्सर भोजन और भ्रमण करने का निमन्त्रण होने लगा। आज नाव पर बैठकर बोटानिकल गार्डेन कल चिड़ियाखाने और परसों जादूघर की सैर का ताँता बँध गया। किसी भी दर्शनीय स्थान में जाते समय सुरेशचन्द्र रमेंन्द्र को साथ ले जाना नहीं भूलता था। सुरेशचन्द्र के, खासकर सीता और सरयू के आग्रह अनुरोध को वह टाल नहीं सकता था, और सच तो यह है कि उसे टालने की वह कुछ विशेष चेष्टा भी नहीं करता था।

जिस दिन कहीं जाना नहीं होता था, उस दिन भोजन आदि के बाद खाली बातचीत और साहित्यिक तथा सामाजिक अनेक विषयों की चर्चा छिड़ जाती थी। तात्पर्य यह कि सुरेश के यहाँ रमेंद्र नित्य ही जाता था। उसके व्यवहार को देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता था कि कविता की आराधना में विघ्न पड़ने के कारण उसे कुछ विशेष कष्ट या चिन्ता है। मार्जित-रुचि, विदुषी, तरुणी रमणियों के संसर्ग में आकर वह एक प्रकार से सुखी ही था। पहलेपहल वह कुछ संकोच का अनुभव करता था, कुछ कुंठित होता था; लेकिन अंत को ऐसा हो गया कि निर्दिष्ट समय के पहले ही आपसे मित्र के घर में आकर उपस्थित हो जाता था, और जो समय उसके मेस को लौट जाने का था, उस समय भी प्रायः उठने का नाम नहीं लेता था

पहले वह हर घड़ी सरस्वती की वीणा के मधुर गुंजन में प्रायः मस्त रहता था, पर इस समय उसने साहित्य-सरस्वती की सेवा एक प्रकार से बिलकुल ही छोड़ दी थी। यद्यपि इसके कारण कभी-कभी उसे अतृप्ति का अनुभव हुआ करता था, तथापि उसका प्रभाव बहुत देर तक नहीं रहता था। सुरेश के यहाँ जाने के प्रबल आकर्षण से उसका वह भाव बहुत शीघ्र दूर हो जाता था। सीता के धीर गंभीर अथच सहज, सरल वार्तालाप और व्यवहार से रमेंद्र की हृदय-वीणा के किसी अलक्ष्य तार में जिस मनोहर रागिनी का मधुर स्वर बज उठता था, उसी के ध्यान में वह जैसे डूब जाता था।

आज शाम को रमेंद्र तनिक जल्दी ही अपने मेस को लौट आया था। बात यह हुई कि उस दिन किसी आत्मीय के यहाँ सीता और सरयू का निमंत्रण था, वे वहाँ चली गई थीं। इसी कारण रमेंद्र ट्यूशन करके सीधा मेस को ही चला आया था। भोजन आदि के उपरान्त मेज के सामने बैठकर उसने दराज से अपनी कविता की कापी बाहर निकाली। कई दिन पहले उसने एक कविता लिखना शुरू किया था, उसकी कई पंक्तियाँ लिख भी डाली थीं। परंतु आज तक वह उसे समाप्त नहीं कर सका था। आज बैठकर वह उसी अर्द्धरचित कविता को समाप्त करने की चेष्टा करने लगा।

सामने की खुली हुई खिड़की से नक्षत्रखचित आकाश का बहुत कुछ अंश दिखाई पड़ रहा था। रमेंद्र ने एक बार क़लम उठाई, लिखने की चेष्टा की. परन्तु भाव हृदय में न उठने के कारण क़लम को दावात के पास रखकर चुपचाप उसी आकाश की ओर ताकने लगा।

ध्यान जैसे आज किसी तरह एकाग्र ही होना न चाहता था। कल्पना का ध्यान करते समय यह किसका चित्र उसके मानस-

पट में उदय हो रहा है ? कैसी सलोनी मुख की छवि है ? यौवन के प्रथम प्रभात के मुकुलित सौन्दर्य ने इस समय, बिकसित शत-दल कमल की तरह, चारों ओर कैसी मनोहर शोभा फैला दी है ! वर्ण, गन्ध और उज्ज्वलता तथा मादकता में कैसी परिपूर्णता दिखलाई पड़ती है ! अतीत का स्वप्न अब फिर क्यों नवीन रूप से उसके चित्त को पागल बनाने के लिए प्रत्यक्ष उपस्थित हुआ है ! यह सब सोचना भी आज उसके लिए निषिद्ध है ! तो फिर उसने क्यों अपने मनको इस निषिद्ध चिन्ता के भँवर की ओर खिंच जाने दिया ? वह अच्छी तरह जानता है कि उधर आकृष्ट होना उसके लिए किसी प्रकार उचित या संगत नहीं तथापि सूर्य की गर्मी से पिघली हुई बर्फ़ के प्रवाह की तरह उसके विचारों का प्रवाह अकस्मात् उसके चित्त को अज्ञात रूप से ज़बरदस्ती यह किस गहरे गढ़े की ओर बहाए लिये जा रहा है ?

सोचते-सोचते रमेन्द्र उठ खड़ा हुआ—अधीर भाव से अपनी कोठरी के भीतर टहलने लगा। कुर्त्ते की जेब में अकस्मात् हाथ पड़ते ही वह रुककर खड़ा हो गया। सबेरे आज गाँव से चिट्ठी आई थी। उस समय वह स्टीमर पर टहलने जाने के लिए सुरेश के घर जा रहा था। अतएव पत्र को खोलकर पढ़े बिना ही जेब में डालकर चल दिया था। दिन भर भ्रमण में उत्साह, आनन्द और उत्तेजना की अधिकता के कारण उसे उस पत्र की याद बिलकुल भूल गई थी। इस समय जेब में हाथ पड़ते ही उस पत्र की याद आ गई।

पत्र निकालकर लिफ़ाफ़े में ऊपर सिरनामा पढ़कर रमेन्द्र ने एक बार मुँह बनाया। धीरे-धीरे लिफ़ाफ़ा फाड़कर उसने चिट्ठी निकाली। स्त्री के हाथ की लिखावट थी। लिखनेवाली उसी की पत्नी—उसी की सहधर्मिणी थी !

किन्तु पत्र में प्रेम की कोई भी विशेषता नहीं, बिलकुल साधारण भाव से लिखा गया है ! ऊपर के सम्बोधन से लेकर नीचे के हस्ताक्षर तक शुष्क, पुराने ढंग का और वैचित्र्यहीन है ! नदी का गर्भ तो है; किन्तु दोनों किनारों को छाप लेनेवाला जल का प्रवाह कहाँ है ? लिखा था—

"बहुत दिनों से आप घर नहीं आए; अब की दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में आइएगा क्या ? मा आपको देखने के लिए बहुत उत्सुक हैं । पहले कई पत्र भेज चुकी हूँ; परन्तु उत्तर कभी नहीं मिला ।"

बूँद भर भी सरसता नहीं ! जिस पत्र में हृदय का उच्छ्वास न प्रकट हुआ, उसके लिखने की सार्थकता क्या है ?

रमेन्द्र का हृदय क्षुब्ध हो उठा । उसने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिए । फिर कविता की कापी जहाँ की तहाँ रखकर पलँग पर पड़ रहा । उसकी चिन्ता का स्रोत, विचारों की धारा, दूसरी ओर मुड़ गई । एम्. ए. की परीक्षा में प्रशंसा के साथ, प्रथम श्रेणी में पास होने के बाद माता ने उसका ब्याह करने के लिए कैसा प्राणपण से आग्रह दिखाया था, चेष्टा की थी ! किन्तु उसका यह कहना था कि वह ब्याह नहीं करेगा, जिंदगी भर काँरा ही रहेगा । बाक़ी जिंदगी को वह केवल कविता-कामिनी के संसर्ग में साहित्य-चर्चा करके ही बिता देगा । विवाह में अब उसके लिए कुछ सुख नहीं रहा; क्योंकि जिसे अर्धांगिनी के रूप में प्राप्त करके उसका जीवन सार्थक और धन्य होता, उसे समाज और उसकी परिस्थिति ने उसकी नहीं होने दिया । अतएव विवाह वह अब कभी करेगा ही नहीं । परन्तु माता के आँसुओं के आगे उसे हार माननी ही पड़ी । पिता को तो रमेन्द्र ने बहुत छुटपन में देखा था । सच तो यह है कि उसकी सूरत भी अब उसे याद नहीं । माता की स्नेह-दृष्टि ही सर्वदा अक्षय कवच की तरह उसकी सब

कष्टों से रक्षा करती आई है। उसके घर की आर्थिक अवस्था अच्छी ही थी। माता के शासन और पालन-पोषण करने की निपुणता से रमेन्द्र सुस्थ-सबल शरीर और उच्च शिक्षा से भी वंचित नहीं रहा। माता उसकी माता और पिता दोनों के कर्त्तव्य का पालन करती रही।

माता के अधिक आग्रह से अन्त को रमेंद्र ब्याह करने के लिए विवश हुआ। किन्तु पूर्व और पश्चिम की शिक्षा के मेल से उसने जो स्त्री का अपूर्व आदर्श अपने मन में गढ़ रक्खा था, वैसी पत्नी उसे नहीं प्राप्त हुई, और सच तो यह है कि ऐसी पत्नी शायद ही किसी को प्राप्त हो सके। सन्ध्या का रंग एकदम काला न होने पर वह गोरी नहीं है, तपे हुए सोने का-सा रंग भी नहीं है। अतएव कोरी कल्पना से काम लेनेवाले युवक रमेन्द्र के आदर्श के सामने अत्यन्त तुच्छ है। समालोचना के भी अयोग्य है। वह धनी बाप की बेटी जरूर है, साधारणतः कुछ लिखना-पढ़ना भी शायद जानती है; किन्तु रमेन्द्र जैसी शिक्षा चाहता है, उसे उसने सद्गृहस्थ और पुरानी रूढ़ि के माननेवाले भारतीय हिन्दू के घर की कन्या के लिए दुर्लभ ही समझ रक्खा है। विशेषकर मन की आशा सफल न होने के कारण, चंचल मानसिक अवस्था में ब्याह होने से, वह ऐसा खीझा हुआ था कि उसने विवाह के उपरान्त पत्नी के साथ वार्तालाप करने या परिचय बढ़ाने की चेष्टा भी नहीं की। फल यह हुआ कि रमेन्द्र के कवि-हृदय में चिर-संगिनी अर्द्धांगिनी के लिए जो प्रेम का प्रवाह था, वह पत्नी की ओर प्रवाहित न होकर कविता-कामिनी और उसकी सहचरी कल्पना की ओर प्रवाहित हो चला।

स्त्री के साथ उसका परिचय ही कितना है? जिस साल विवाह हुआ, उस साल एक-दो बार से अधिक उनकी भेंट ही नहीं हुई। यदि दोनों ओर आग्रह हो तो दो-तीन बार की भेंट

में भी यथेष्ट घनिष्ठता उत्पन्न हो सकती है; किन्तु इन दोनों पति-पत्नियों में परस्पर हृदय के आदान-प्रदान का शुभ सुयोग ही शायद नहीं उपस्थित हुआ, और इसका अधिकांश दोष भवितव्यता को ही दिया जा सकता है। स्त्री जब मायके से सुसराल आती थी, उस समय रमेंद्र रायचंद-प्रेमचंद स्कालरशिप का कोर्स और क़ानून पढ़ने के बहाने कलकत्ते में रहता था और जब सन्ध्या मायके चली जाती थी, तब रमेन्द्र अवसर निकालकर माता के दर्शन करने घर जाता था।

रमेंद्र की माता यद्यपि बुद्धिमती और पक्की गृहिणी थीं, तथापि इतने दिनों तक पुत्र की इस चालाकी को पकड़ नहीं सकीं—बहू के ऊपर रमेंद्र की इस उपेक्षा का आभास भी उन्हें नहीं मिला। स्त्री से साक्षात् न होने देने के लिए रमेंद्र ने जैसी सतर्कता का सहारा लिया था, वह छलनापूर्ण होने पर भी, उसके लिए सहसा उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। कम-से-कम रमेंद्र अपने मन में यही समझे हुए था। माता को पुत्र पर विश्वास था। वह समझती थीं कि सचमुच वह पढ़ने-लिखने में ही तल्लीन है, पढ़ने-लिखने की साधना ही उसकी एकमात्र लक्ष्य है। यही समझकर माता भी बहू के घर रहने के समय पुत्र से घर आने के लिए आग्रह या हठ नहीं करती थीं। इसके सिवा रमेंद्र ने एम्० ए० पास करने के बाद माता को यह समझा दिया था कि वह किसी राजकुमार को पढ़ाने लगा है, इसलिए उसे छुट्टी सहज में नहीं मिल सकती। यद्यपि इस तरह ट्यूशन कर के धन कमाने की उसे कोई ज़रूरत नहीं थी, तथापि रमेंद्र ने माता से इसका कारण यह बतलाया था कि वह अपनी कमाई के धन से अपनी उच्च शिक्षा समाप्त करेगा, पिता के कमाए धन की एक कौड़ी भी नहीं ख़र्च करेगा, यही उसका प्रण है कि वह अभी से स्वावलम्बन का अभ्यास करेगा। बुद्धिमती माता ने

पुत्र के इस सत्संकल्प में बाधा डालना उचित नहीं समझा। जीवन के आरंभ से ही अगर पुत्र अपने पैरों खड़े होने का अभ्यास करना चाहे तो यह तो बहुत ही अच्छी बात है।

इन्हीं कारणों से रमेन्द्र ने अपने जल्दी-जल्दी घर आने का रास्ता बन्द कर दिया था। माता भी सोचती थीं कि और थोड़े दिनों की बात है। बहुत जल्दी पुत्र लिख-पढ़कर कृत-विद्य हो जायेगा और तब एकदम घर आकर गृहस्थाश्रम का आरम्भ करेगा।

रमेन्द्र खिड़की के सामने खड़े-होकर अपने अतीत और वर्त्तमान जीवन तथा जीवन की व्यर्थता के सम्बन्ध में सोचने लगा। सचमुच जिस पुरुष को अपनी पसंद के माफ़िक पत्नी प्राप्त हो, वही भाग्यशाली और सुखी है। विधाता का श्रेष्ठ दान मन के मफ़िक पत्नी ही है। किन्तु कैसे दुर्भाग्य की बात है! उसने जो कल्पना की थी, जैसी स्त्री चाही थी, वैसी स्त्री उसे नहीं मिली। पाश्चात्य आदर्श से नहीं, भारतवष के प्राचीन आदर्श के अनुसार भार्या अपने स्वामी की सखी, सहायक, सचिव, शिष्य, जीवनसंगिनी, एक शब्द में कहा जा सकता है कि सर्वस्व है। किन्तु संध्या क्या वैसी ही है? वह क्या उसकी अर्द्धांगिनी होने के योग्य है? यह जो उसने कितनी ही रातों में जागकर कल्पना कुंज के कितने ही मनोरम सुगंधित पुष्प बड़े यत्न से चुनकर उनकी माला गूँथी है, उसे धारण करने अर्थात् उसका रस लेने की क्षमता क्या उसकी पत्नी में है। वह क्या उसके हृदय का मर्म समझ सकी है? प्रीति-पात्र इष्ट-मित्रों को उपहार के रूप में उसने अपनी "यूथिका" भेजी थी। सबके साथ अपनी पत्नी को भी उसकी एक प्रति डाक के द्वारा भेज दी थी। लेकिन संध्या ने तो उस पुस्तक के संबंध में निंदा या प्रशंसा का एक शब्द भी लिखकर उसके पास नहीं भेजा! उसका स्वामी कवि है, इस सौभाग्य को पाकर क्या उसे आनन्द नहीं होना चाहिए?

अर्धशिक्षित गँवईगाँव की लड़की में इतनी बुद्धि कहाँ ? हो सकता है कि उसने आज कल के कुछ उपन्यास पढ़ डालें हों। पर उनका भी प्रयोजन क्या खाक समझी होगी ! वह शायद उपन्यासों की कहानी भर ही पढ़ जाती है। उपन्यास में जो अपूर्व तत्त्व, वर्णन-वैचित्र्य और चरित्र का सौंदर्य रहता है, वह समझने की, उसका विश्लेषण करके देखने की शक्ति उस देहाती रमणी में कहाँ से आ सकती है ? गाँव की लड़की इस रस की माधुरी का मजा कैसे ले सकती है ? प्रेम कितना महान्, कितना सुन्दर है, इसका अनुभव संध्या की कल्पना से भी अतीत है। हाय ! उस (रमेंद्र) के समान अभागा कौन है ? उसका जीवन हमेशा के लिये व्यर्थ, निष्फल हो गया !

रमेन्द्र आकुल दृष्टि से तारका-चिन्नित स्तब्ध आकाश की ओर ताकता रहा। वहाँ क्या कोई उसे आश्वासन प्राप्त हो रहा था ? कौन जाने !

छठा परिच्छेद

"बहू"

"आती हूँ माँ"

धीमे और कोमल स्वर में पूर्वोक्त उत्तर देकर, गोबर से सने हाथ लिये पुत्र-वधू जब पास आई, तब सास ने स्नेह सहित कहा—इतने तड़के उठने की क्या जरूरत थी बेटी, ऐसा कौन बड़ा काम-धन्धा है कि रात बीतते-न-बीतते तुम उठ बैठीं? ठंड लगने से तबीयत न ख़राब हो जायगी!

पुत्र-वधू सन्ध्या नीची नजर करके मुसकिराने लगी।—शरद ऋतु के तड़के ठंड लगने का डर! माँ की भी बातें ख़ूब हैं!

रमेन्द्र की माँ ने कहा—तुम हाथ धो डालो बेटी! बाक़ी काम बड़ी बहू कर डालेगी। इतना काम क्यों करती हो, देखो, कितनी दुबली हो गई हो!

हँसी को दबाकर कोमल स्वर में संध्या ने कहा—मैं ऐसा क्या बहुत काम करती हूँ माँ? आप तो मुझे बिलकुल काम ही नहीं करने देतीं। सबेरे तुलसी के चबूतरे को गोबर से लीपे बिना जी नहीं मानता। वही कर रही थी।

सास ने कहा—अच्छा किया। अब जाओ, हाथ-पैर धो डालो। धोती बदलकर कुछ जलपान कर लो। आज रोटी-पानी भी मैं ही अपने हाथ से करूँगी, तुम्हें कुछ जल्दी नहीं है।

सन्ध्या चली गई। सास बरामदे में बैठकर माला जपने लगीं।

शरद के प्रातःकाल की धूप गोबर से लिपे हुए आँगन में जगमगा रही थी। थोड़ी दूर पर गोशाला की दालान के सामने कई दुधार गाएँ पागुर कर रही थीं। गाऊ दुही जा चुकी थीं और उनके

बच्चे थनों में मुह लगाकर दूध पीने के लिए उछल रहे थे।

इसी समय साग-सब्जी और तरकारियों से परिपूर्ण एक बड़ी टोकरी सिर पर रक्खे एक आदमी आकर आँगन में खड़ा हो गया। उसने पुकारा—माँ!

माला रखकर रमेंद्र की माँ ने कहा—इसमें क्या है रे माधू?

माधव बरामदे में टोकरी उतारकर रखता हुआ बोला – इसमें बाग़ की तरकारी है। आज तुम अपने हाथ से भोजन बनाओगी, इसलिए कुछ अधिक तोड़ लाया हूँ।

माधव जाति का ग्वाला है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही पिता-माता नहीं रहे थे और आत्मीय-स्वजनों ने भी त्याग दिया था। रमेंद्र के पिता पार्वतीचरण ने उस समय माधव को आश्रय दिया था, अपने घर लाकर रक्खा था। पार्वतीचरण बेनीपुर के ताल्लुक़ेदार के दीवान थे। मेदिनीपुर ताल्लुक़े से घर लौटते समय यह अनाथ बालक माधव उनको रास्ते में मिल गया था। वह इसे अपने साथ ले आए और अपने बेटे के समान ही पालने लगे। तब से माधव इसी परिवार का एक व्यक्ति हो गया। पार्वतीचरण और उनकी पत्नी को ही वह अपना पिता और माता समझता था। पार्वतीचरण ने माधव को गाँव के स्कूल में माइनर क्लास तक शिक्षा भी दिलाई थी। वे माँ-बाप की किसी ग्वाले की लड़की के साथ उन्होंने उसका ब्याह भी कर दिया था। माधव और उसकी पत्नी पार्वतीचरण के ही घर में रहती थीं। संध्या की सास माधव की पत्नी को बड़ी बहू कहती थीं।

जितने दिन पार्वतीचरण जीते रहे, माधव उनके साथ ही रहता था। जिस दिन वह अपने ८ वर्ष के एकमात्र पुत्र रमेन्द्र और उसकी माता को संसार में छोड़कर अकेले ही परलोक को सिधार गए, उस समय माधव ने भी समझा कि आज वह पितृहीन हो गया। तब जमींदार की नौकरी छोड़कर माधव पार्वतीचरण की

जायदाद का प्रबन्ध करने लगा। पार्वती बाबू जो संपत्ति छोड़ गए थे, उससे लगभग पाँच हजार रुपये सालाना की आमदनी अर्थात् मुनाफा होता था। कहाँ कौन जायदाद किस हालत में है, यह माधव को रत्ती-रत्ती मालूम था। अतएव पार्वतीचरण के न रहने पर कोई उनके नाबालिग लड़के या विधवा स्त्री को उनके प्राप्य से वञ्चित नहीं रख सका। माधव को सभी लोग डरते थे। उसके शरीर में अथाह बल और हृदय में असीम साहस था। कुश्ती लड़ने में, लाठी चलाने में या मामला-मुक़द्मा लड़ने में आसपास के आठ-दस गाँवों के बीच माधव की बराबरी कोई नहीं कर सकता था।

इस समय माधव की अवस्था ५८ वर्ष की होने पर भी उसके गठीले ! तने हुए और बलिष्ठ शरीर की ओर देखकर कोई उसकी अवस्था ४० वर्ष से अधिक नहीं अनुमान कर सकता था। उसके सिर का एक भी बाल सफेद नहीं हुआ था, मत्थे पर एक भी झुर्री नहीं पड़ी थी। माधव अपने हाथ से पार्वतीचरण के बाग़ में साग़-सब्जी और तरकारियाँ बोता था। वह थोड़ी बहुत खेती भी अपने हाथ ही से कर लेता था। सिर पर तरकारी की टोकरी रखकर घर लाने में या खेत में अपने हाथ से हल चलाने में वह तनिक भी झेपता नहीं था। उसके आत्मसम्मान या शान में इन कामों से तनिक भी बट्टा नहीं लगता था। कारण, वह अपने को इसी घर का बड़ा लड़का मानता था! उसके बाल-बच्चे होने की अब कोई सम्भावना नहीं थी। स्वामी और स्त्री दोनों मिलकर इस घर के छोटे-बड़े सभी तरह के काम किया करते थे। घर में दास-दासियों की भीड़ नहीं थी।

रमेन्द्र की माँ अक्सर कहती थीं कि मजदूर रखकर खेती कराने में हर्ज क्या है? माधव को इतना परिश्रम नहीं करना चाहिए। उत्तर में माधव हँसकर कहता था—माँ, तुम आशीर्वाद दो। मेरे

शरीर में अभी इतनी ताक़त है कि इस साधारण मेहनत के करने से उसका कुछ बन-बिगड़ नहीं सकता। जो पैसे मजूरों को दिये जायँगे, उन्हीं से देवतों की, अभ्यागत की सेवा होगी।

हाँ, अगर ऐसी ही जरूरत आ पड़ती थी तो वह कुछ मजदूर भी रख लेता था।

पार्वती चरण के घर से आज तक कभी कोई अतिथि अभ्यागत भूखा अथवा विमुख नहीं गया। चाहे सवेरे के सात बजे हों और चाहे आधी रात ही क्यों न हो जब कोई अतिथि अथवा भिक्षुक दरवाजे पर आ खड़ा होता था, तब माधव उसे भोजन कराए या उसका सत्कार किए बिना नहीं छोड़ता था।

माधव ज़मीदारी के काम में जैसा पक्का था, वैसा ही खेती के काम में भी होशियार था। वह हर साल घर से मिले हुए विस्तृत भू-खंड में तरह-तरह की साग-सब्जी बो देता था। लौकी, सीताफल, बैंगन, मूली, सेम, आलू, परवल, मिर्च, धनिया पोदीना, पालक वगैरह समय-समय पर अपने खेत में ही पैदा कर लेता था। इसके सिवा बाग़ में नारियल, सुपारी, केले आदि के पेड़ भी बहुत से थे। नारियलों से साल भर के खर्च के लिए तेल मिल जाता था। सुपारियाँ भी नहीं खरीदनी पड़ती थीं। खेत में जो सरसों पैदा होते थे, उन्हीं से तेल निकल आता था। बल्कि तेल इतना होता था कि कुछ बेच भी डाला जाता था। गउओं के खाने को खली भी निकल आती थी। घर में खेत जोतने के लिए जो बैल थे, उन्हीं से फ़ुरसत के वक़्त कोल्हू चलाने का काम लिया जाता था। दरवाज़े ही पर दो बड़े तालाब थे। एक में बीज के लिए मछलियाँ पाली जाती थीं और दूसरे में बढ़ने के लिए निकाल कर डाल दी जाती थीं। घर में कई दुधार गउएँ भी थीं। माधव ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि साल में कभी दूध की कमी नहीं रहती थी, एक-न-एक गऊ दूध दिया ही करती थी।

माधव घर के खर्च के लिए घी कभी मोल नहीं लेता था। गउओं से जलाने के लिए उपले, दूध, मट्ठा, मक्खन और घी सब मिल जाताथा।

इस तरह माधव की सहायता पाकर रमेंद्र की माता थोड़ी-सी आमदनी में ही अच्छी तरह गुजर-बसर कर रही थीं। बल्कि यों कहना चाहिए कि आमदनी का अधिकांश रुपया जमा ही होता जाता था। कारण गृहस्थी में खर्च होने वाली सभी वस्तुएँ माधव घर में पैदा कर लेता था, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है। माधव कुछ रोजगार भी करता था। चावल सस्ता होने के समय वह कुछ धान और चावल खरीद लेता और समय देख-कर उसे बेच डालता था।

ब्याज पर रुपए उधार देने से माधव को चिढ़ थी। उसके मालिक पार्वतीचरण बाबू कभी ब्याज नहीं लेते थे। माधव भी इस बारे में अपने न्यायनिष्ठ धर्मात्मा परोपकारपरायण स्वामी का पूरा-पूरा अनुगामी था। यद्यपि माधव कभी सूद लेने के लिए रुपए उधार नहीं देता था, लेकिन उस गाँव भर में ऐसा कोई भी आदमी नहीं था, जिसने विपत्ति के समय उससे धन की सहायता न ली हो।

स्वदेशी आंदोलन से किसी दिन माधव का साक्षात् सम्बन्ध नहीं रहा, तथापि जवानी के शुरू में ही, जब कि स्वदेशी आंदोलन का जन्म भी नहीं हुआ था, उधर किसी का ध्यान भी नहीं गया था, तभी स्वदेशी चीज़ मिलने पर वह कभी विदेशी वस्तु का व्यवहार करना नहीं चाहता था। यह सच है कि उसने अँगरेज़ी की अधिक शिक्षा नहीं पाई थी, किन्तु अँगरेज़ी अधिक न पढ़ने पर भी देश के प्रति उसके मन में जो श्रद्धा, आदर, भक्ति और विश्वास था, वैसी या उसकी आधी भी श्रद्धा, आदर, भक्ति या विश्वास देश के नेता कहलानेवाले लोगों में भी न होगा।

माधव ने तरकारी का टोकरा आँगन में उतारकर. कमर से अँगौछा खोलकर, पहले पसीना पोंछ डाला। उसके बाद रमेंद्र की माता के सामने बैठकर टोकरे से एक-एक करके सब फल-फूल और तरकारियाँ निकाल-निकाल कर रखने लगा।

बड़े-बड़े रेंड़खरबूजे जो वह पेड़ से तोड़ लाया था, उन्हें एक ओर रखकर कहा—मा, भैया (लड़के) की चिट्ठी तुमको मिली ? वह कब आवेगा ?

माधव इस समय भी रमेंद्र को भैया ही कहता था।

माता ने कहा—चार पाँच दिन हुए, रमेंद्र का एक पोस्टकार्ड आया था। उसमें आने के बारे में तो कुछ लिखा नहीं।

माधव ने कहा—उसे रेंड़खरबूजे (पपीते) बहुत अच्छे लगते हैं। इसी से मैंने इन्हें अब तक नहीं तोड़ा। ये दरख्त में ही लगे-लगे एकदम पक गए हैं। इसी से ले आया हूँ। दुर्गापूजा की छुट्टी में तो अब अधिक देर नहीं है। कब आवेगा, यह क्यों नहीं लिखा ?

माता ने कहा—इम्तहान नजदीक है। पढ़ने-लिखने में शायद लगा हुआ है। इसी से छुट्टी नहीं मिलती।

माधव ने जम्हाई लेकर चुटकी बजाते-बजाते कहा—मैं फिर खेत पर जा रहा हूँ मा। तुम आज जरा जल्दी ही रसोई बना लेना। शायद आज रमेंद्र आये।

माधव के चले जाने पर उसकी स्त्री राधारानी गोशाला का काम सानी-पानी कर चुकने के बाद रसोई की तैयारी करने लगी।

सातवाँ परिच्छेद

दोपहर को भोजन कर चुकने के बाद, रमेन्द्र की माता काशीरामदास-रचित भाषा-महाभारत (यह बंगाली कवि थे, उन्हीं का बनाया पद्य-बद्ध महाभारत) पढ़ रही थीं।

पास बैठी हुई राधारानी और संध्या वह पवित्र कथा सुन रही थी। संध्या ने अपने पिता के घर शिक्षा पाई थी। आधुनिक दृष्टि, नए जमाने की नज़र से, उसे यद्यपि सुशिक्षिता नहीं कह सकते, तथापि सुपंडित पिता के निकट शिक्षा पाकर बँगला भाषा में उसका अच्छा अधिकार हो गया था, इसमें सन्देह नहीं। चारुपाठ तृतीय भाग तक, रामवनवास, नर-नारी ग्रन्थ और भूदेव बाबू के पारिवारिक प्रबन्ध, सामाजिक प्रबन्ध आदि ग्रन्थों को उसने स्कूल के कोर्स के रूप में, व्याकरण और साहित्य की दृष्टि से, पढ़ा था। व्याकरण-कौमुदी के चारो भाग उसे कंठस्थ थे। अँगरेज़ी और संस्कृत के साहित्य में सुपंडित पिता ने सन्तान को स्वयं शिक्षा दी थी। बालिका-विद्यालय में कभी उन्होंने अपनी लड़कियों को नहीं भेजी। चाणक्य के श्लोकों के अलावा गीता के भी बहुत-से श्लोक सन्ध्या को याद थे। कालिदास के कई काव्य-ग्रन्थ भी उसने पढ़े थे। अँगरेज़ी भी वह थोड़ी-बहुत जानती थी, यद्यपि उसमें कोई परीक्षा उसने नहीं पास की थी। किन्तु स्वभाव से ही स्वल्प-भाषिणी और लज्जाशील होने के कारण कभी किसी के आगे वह अपनी विद्या अथवा बुद्धि का परिचय देने की चेष्टा नहीं करती थी। पिता की शिक्षा के कारण उसने जो भाषा-साहित्य में विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त की थी, इस बात को उसकी ससुराल में

कोई नहीं जानता था। रमेंद्र ने तो यह जानने की कभी चेष्टा ही नहीं की कि उसकी स्त्री कुछ पढ़ी-लिखी भी है या नहीं। उसने यों ही समझ लिया था कि उसकी स्त्री अन्य देहाती औरतों की तरह निरक्षर है। सन्ध्या स्वयं भी इस तरह रहती थी कि कोई यह नहीं समझ सकता था कि लिखने-पढ़ने का उसे कितना आग्रह है, अथवा वह कितनी पढ़ी-लिखी है।

हाँ, अगर कोई छिपकर उसके कपड़ों का बड़ा ट्रंक खोलता तो देख पाता कि गीता, कुमार-संभव, उत्तर-रामचरित आदि कई एक संस्कृत के ग्रन्थ और माइकेल मधुसूदन दत्त का जीवन-चरित, बाह्य वस्तु के साथ मानव प्रकृति के सम्बन्ध का विचार सामाजिक प्रबन्ध, पारिवारिक प्रबन्ध तथा बंकिम बाबू का लिखा कृष्णचरित्र आदि बँगला के कई उपादेय ग्रंथ उसमें कपड़ों के नीचे रक्खे हैं। ये पुस्तकें उसे उसके पिता ने दी थीं। अधिक रात बीते, निर्जन स्थान में, अथवा जब कभी सुनसान में अवकाश मिलता था, तब सन्ध्या उन्हें पढ़ती थी।

सास महाभारत पढ़ रही थी। बहू बड़े शौक से मन लगा-कर उसे सुन रही थी। पिता के घर में वह कितनी ही बार इस अमर ग्रन्थ को पढ़ चुकी थी। रामायण और महाभारत उसे बहुत ही प्रिय पुस्तकें हैं। इनकी वह बड़ी भक्त है। ऐसे सुन्दर ग्रन्थ और किस भाषा के साहित्य में हैं? राम की पितृ-भक्ति, लक्ष्मण का भ्रातृ-स्नेह, पृथ्वी का आदर्श सीता का पतिप्रेम और सहिष्णुता ऐसे भाव हैं, जो प्रलय काल तक प्रत्येक युग में पृथ्वी पर अमृत की वर्षा करते रहेंगे। भीष्म पितामह का जैसा देवचरित्र और किस देश में देखने को मिलता है? युधिष्ठिर की जैसी सत्य-निष्ठा, धैर्य और महत्त्व कौन कहाँ दिखा सका है? सावित्री का जैसा सतीत्व का गर्व पृथ्वी भर की स्त्रियों के लिए आदर्श हो सकता है। ध्रुव सत्य मृत्यु को कर्मफल के द्वारा—

एकनिष्ठ साधना के द्वारा कौन कब कहाँ जीत सका है ? समग्र पृथ्वी के इतिहास में ऐसा दूसरा चित्र क्या कहीं देखने को मिल सकता है ? सन्ध्या ने सुपंडित पिता के निकट इन सब तत्त्वों को अच्छी तरह समझ लिया था ।

हर रोज घर का काम काम-काज कर चुकने के बाद रमेंद्र की माता अवकाश का समय रामायण या महाभारत पढ़कर बितातीं थीं। उस समय बहू आकर उनके पास बैठती। यह उनका नित्य-कृत्य था।

तीसरे पहर की धूप पत्तों की फाँक से होकर, खुली खिड़की के रास्ते सन्ध्या के चेहरे पर पड़ रही थी। उस समय उसके चेहरे पर लंबा घूँघट नहीं था, कभी इस समय नहीं रहता था। यह उसकी सास की आज्ञा थी। बहू घर की ही लड़की है—मा के आगे बेटी का घूँघट काढ़ना अनुचित और व्यर्थ है।

सास उस समय पति की त्यागी हुई राजरानी दमयंती की असहाय अवस्था का वृत्तान्त पढ़ रही थीं। वह करुण कथा बहुत बार की सुनी और पढ़ी होने पर भी सन्ध्या के हृदय में इस समय एक अभिनव वेदना उत्पन्न कर रही थी। उसका क्षुद्र हृदय असहाय राजरानी दमयंती की दशा की कल्पना करके जैसे फटा जा रहा था। कल्पना के द्वारा संध्या उस समय जैसे वन में पति के द्वारा त्यागी हुई आधी धोती पहने सुंदरी दमयन्ती को आँखों के आगे रोती-बिलखती देख रही थी। नींद खुलने के बाद अपने एक-मात्र आश्रय स्वामी को न देख पाकर पतिगतप्राणा नारी के हृदय में कैसी यंत्रणा, कातरता और निराशा का उदय हुआ था, इसका अनुभव करना नारी के लिए—विशेषकर एक भारतीय नारी के लिए—बहुत ही सहज है।

संध्या के दोनों विशाल नेत्रों में सहानुभूति के आँसू छलक आए। सास से छिपाकर उसने आँचल से अपने आँसू पोंछ डाले।

सास का स्वर भी करुणा से आर्द्र हो उठा था। उन्होंने अन-मने भाव से पुत्रवधू की ओर देखा। वह देखना इच्छाकृत नहीं था, नज़र उधर चली ही गई। अनेक समय ऐसा होता है कि मनुष्य की दृष्टि आप से आप इधर-उधर घूम जाती है। यह सास का देखना भी वैसा ही था। करुण-शोका वह कथा सुनने या पढ़ने के समय साधारणतः अनेक लोगों का भाव बदल जाता है। सन्ध्या का भी ऐसा भाव-परिवर्तन अनेक बार सास ने देखा था। किन्तु आज सन्ध्या के आँसुओं से भीगे मुखमण्डल को देखकर उनका कोमल मातृ हृदय जैसे अकस्मात् काँप उठा। शायद इसका कोई कारण नहीं था, तथापि उनका चित्त करुणा से भर उठा। सास ने पढ़ना बंद कर दिया। कहा—समय हो गया। बस, आज यहीं तक।—बेटी, देख तो मेरे सिर में पके बाल हैं कि नहीं?

उनके सिर में सफ़ेद बालों की कमी क्या थी। सन्ध्या सफेद बाल बिनने बैठ गई।

इसी समय बाहर डाकिए ने आवाज़ दी—चिट्ठी ले जाओ।

संध्या की सास ने राधारानी से चिट्ठी ले आने के लिए कहा।

पत्र हाथ में लेकर माधव की स्त्री लौट आई। माता ने पत्र देखते ही समझ लिया, उनके पुत्र का पत्र है। यह खबर पहले ही रमेन्द्र की माता को मिल चुकी थी कि अब की अभी परीक्षा में देर है। राजकुमार (जिन्हें रमेंद्र पढ़ाता था) के साथ देश-भ्रमण के लिए जाने की ज़रूरत न होगी। शरीर अस्वस्थ होने के कारण राजकुमार दार्जिलिंग चले गए हैं, यह बात भी रमेंद्र ने पहले पत्र में लिख दी थी।

आशा से धड़कते हुए हृदय से माता पुत्र का पत्र पढ़ने लगी। पढ़ चुकने के बाद उनका चेहरा गंभीर हो उठा। रमेंद्र ने लिखा है, परीक्षा में विलम्ब होने पर भी अब की यही आख़िरी परीक्षा है।

इस समय घर आने से बी० एल० की परीक्षा में अनेक विघ्न हो सकते हैं। परीक्षा तो शायद वह पास ही कर लेगा, परन्तु उसकी इच्छा यह है कि वह प्रथम श्रेणी में पास हो। फिर रामचंद-प्रेमचंद स्कालरशिप पाने के लिए वह जो चेष्टा कर रहा है, उसमें भी बाधा पड़ने की संभावना है। इधर कई वर्षों से वह इस स्कालरशिप (वृत्ति) को पाने के लिए परिश्रम और तैयारी कर रहा है। पूरी तैयारियाँ न होने के कारण कहीं उसकी यह साधना व्यर्थ न जाय, इसी आशंका से उसने अब तक यह परीक्षा नहीं दी। किन्तु अब की वह सब परीक्षा देकर सारा झगड़ा खत्म कर देगा, यही उसने निश्चय कर रक्खा है। उसका पक्का विचार है कि अब की छात्र जीवन समाप्त करके माता की गोद में लौट कर संसार की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगा। अतएव दुर्गापूजा के समय घर न जाकर वह कलकत्ते में ही रहेगा और इसके लिए उसने माता से अनुमति माँगी है। मगर एक-दो दिन के लिए माता को प्रणाम करने के लिए, उनके श्रीचरणों के दर्शन के लिए उसका चले आना भी संभव है।

सन्ध्या के समय माधव जब खेत से लौटकर घर आया, तब रमेंद्र की माता ने उसके हाथ में पुत्र का पत्र दिया। उसने पत्र पढ़कर कहा—पूजा के समय चार-पाँच दिन के लिए घर आने से पढ़ने में क्या विघ्न पड़ सकता है मा ? यह तो कुछ मेरी समझ में नहीं आता ! साल-साल का पर्व दुर्गा-पूजा ठहरी, उसमें घर न आवेगा, यह कैसी बात है मा ?

माता ने कहा—माधव यह बात न होगी। पूजा के अवसर पर किसी साल मैंने बहू को नहीं बुलाया। अबकी बुलाया है—समझ-बूझकर ही बुलाया है, अतएव लड़के को घर आना ही पड़ेगा। अभी पूजा के कई दिन बाक़ी हैं। जाओ, तुम कलकत्ते जाकर उसे अपने साथ ही लेते आओ।

माधव ने कहा—यही ठीक है। मित्रा बाबू से धानों के पाँच सौ रुपए मिलने हैं। उन्होंने बुधवार को देने का वादा किया है। आज रविवार है। बीच में और दो दिन हैं। बुध की रात को या बृहस्पति के दिन सवेरे मैं कलकत्ते जाऊँगा।

माता ने कहा—उसे समझा देना कि अधिक दिन उसको नहीं रोक रक्खूँगी। लक्ष्मीपूजा के बाद बिदा कर दूँगी। इतने दिन न पढ़ने से ऐसी कोई हानि न होगी। लिखने-पढ़ने में विघ्न होने के खयाल से ही अब तक मैंने उसे किसी झंझट में नहीं डाला—बहू को भी अधिकतर उसके मायके में ही रख छोड़ा। लेकिन अब मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि इतने दिन यहाँ रहने से उसकी पढ़ाई को कुछ हानि नहीं पहुँचेगी। उससे कहना, मैंने ही उसे लाने के लिए तुमको भेजा है, और विशेष रूप से मेरी आज्ञा है कि वह अवश्य घर चला आवे। उसे आना ही चाहिए।

सन्ध्या उस समय तुलसी-वृक्ष के सामने सन्ध्या-दीप जला-अलक्ष्य देवता को प्रणाम करके उठ रही थी।

रमेंद्र की माता ने उसी ओर मुड़कर दृढ़ स्वर में कहा—समझे माधो, रमेंद्र की कोई भी आपत्ति या उज्र मैं न सुनूँगी—यह तुम उससे अच्छी तरह कह देना। उसे साथ जरूर लाना।

आठवाँ परिच्छेद

वाह! कैसा सुन्दर है! अत्यन्त अपूर्व है! ऐसा दृश्य मैंने जीवन में और कभी नहीं देखा!—रमेंद्र ने कहा।

"रमेंद्र बाबू, आप कवि हैं, इस सौंदर्य का रस आप तो अच्छी तरह ले ही सकते हैं। किन्तु यह दृश्य ऐसा है कि हमारे समान अरसिक जीवों का हृदय भी इसे देखकर फड़क उठा!—क्यों न भाभी?"

सरयू के प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर सीता क्षितिज की रेखा की ओर दृष्टि स्थापित किए रही। सीमाहीन समुद्र की अथाह जल-राशि प्रभातकालीन प्रकाश के स्पर्श से काँप रही थी। बाल-सूर्य जैसे नाचते-नाचते समुद्र-गर्भ से निकल रहे थे। वह देखते-देखते पूर्व-आकाश में ऊपर उठने लगे। दम-दम भर में जल-राशि का रंग बदल रहा था। असह्य पुलक से अधीर समुद्र गंभीर गर्जन के साथ सूर्य का स्वागत कर रहा था। उसकी लहरें तटभूमि पर पछाड़ खा रही थीं। दूर—बहुत दूर तक—जहाँ तक दृष्टि जा सकती है, वहाँ तक केवल जल-ही-जल था। इसका अन्त कहाँ है? इसके उस पार वह कौन राज्य है? समुद्र की छाती पर कुहेलिका की धूम्रवर्ण यवनिका हिल रही है, उसके दूसरे छोर पर वह कौन मायापुरी है?

मन्त्रमुग्ध की तरह सभी उस विचित्र रूप के आधार सागर की ओर ताक रहे थे। सुरेशचन्द्र बहुत बार समुद्र देख चुके थे। जहाज पर उन्हें अनेक दिन सागर के वक्षस्थल पर ही बिताने पड़े थे। किन्तु उनका भी हृदय इस दृश्य की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया। अनन्त रूपवैचित्र्यमय सागर सदैव नवीनता का घर है।

चिरविचित्रता ही उसकी विशेषता है। चाहे जितना देखो, तृप्ति न होगी, जी न ऊबेगा। हर दफ़े यही जान पड़ेगा, जैसे ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा। प्रति दिन नित्य नई छबि निहारिए, पल-पल भर पर वर्ण-परिवर्तन का दृश्य देखिएगा।

सूर्योदय के साथ ही वायु का वेग क्रमशः प्रबल होने लगा। मछुओं ने नावें समुद्र में छोड़ दीं। तरंगों की नृत्य-लीला के साथ-साथ वे डोंगियाँ कभी लहर के ऊपर चढ़ जातीं और कभी आँखों से छिप जाती थीं। सरयू अवाक् होकर विस्मय के साथ समुद्र-चारी मछुओं के दुस्साहस की यह लीला देख रही थी। सहसा काँपकर वह कह उठी—इन्हें डर नहीं लगता? अभी डूब जायँगे!

पास ही सुरेशचन्द्र खड़े थे। उन्होंने कहा—इसका भय इन्हें नहीं है और ये नावें सहज में डूबनेवाली भी नहीं हैं।

धीरे-धीरे धूप कड़ी होने लगी। तब प्रातःकाल की हवा खाकर सब लोग घरों की ओर लौटे। सुरेशचन्द्र का डेरा भी समुद्रतट के निकट ही था। वह भी अपने साथियों को लेकर घर की ओर चल दिए।

वह घर जो सुरेश ने लिया था, बहुत बड़ा नहीं था, बाहर की ओर एक बड़ी-सी बैठक थी। सुरेश और रमेन्द्र उसी में रहते थे। दोनों ओर दो कैम्प-पलँग पड़े थे, बीच में एक छोटा-सा टेबुल था। भीतर दो कमरे थे। जो बड़ा था, उसमें सीता और सरयू रहती थीं। दूसरा कमरा बुआजी के रहने के लिए था। रसोई की कोठरी से मिली हुई दो कोठरियों में से एक में नौकर और दूसरी में रसोई बनानेवाला ब्राह्मण रहता था। बुआजी बरामदे में एक किनारे अपनी निरामिष रसोई करती थीं। बाहर से भीतर आने का एक दरवाजा खुला और दूसरा बंद रहता था।

घर लौटकर, चाय पीकर सुरेश ने कहा—मैं ज़रा घूम-फिर

आऊँ। बाजार की तरफ भी जाऊँगा। तुम जाओगे या बैठकर लिखो-पढ़ोगे ?

रमेंद्र उस समय कविता की कापी लेकर बैठा था। उसने कहा—ना भाई, अब तो मैं कहीं न जाऊँगा। आज यह कविता समाप्त करके भेज देना जरूरी है।

"अच्छा तो तुम बैठो" कहकर छड़ी हाथ में लेकर सुरेश चल दिया।

रमेंद्र समुद्र की ओर मुख करके कविता लिखने बैठ गया।

वह कमरा उस समय खाली था। खिड़की से सीमाहीन सागर की समग्र शोभा दिखाई पड़ रही थी। अविश्रान्त तरंग-गर्जन का भैरव राग कैसा मधुर, कैसा अपूर्व था! रमेंद्र के हृदय में कल्पना का प्रवाह बहने लगा।

बहुत देर बाद रचना समाप्त हुई। स्वस्ति की एक सांस लेकर कवि ने निजरचित कविता को एक बार पढ़कर देख लिया। हृदय के भीतर जो चित्र फूट उठा था, क़लम की कूची से उसके सौंदर्य को क्या वह पूरा-पूरा प्रकट कर सका है? नहीं, यह असंभव है। ऐसा कोई भी कवि कभी नहीं कर सका! फिर वही कैसे कर सकता है?

रमेंद्र उठकर खड़ा हो गया। उसका चित्त इस समय पहले की अपेक्षा प्रसन्न था, उसका बोझा बहुत कुछ हल्का हो गया था। घड़ी की ओर देखा, दो घंटे के लगभग वह कविता देवी की आराधना करता रहा है।

आज पुरीधाम में आए उसे पाँच दिन हुए। इन दिनों के बीच रमेंद्र के जीवन ने भी जैसे एक नई राह पकड़ी है। जिसका मजा पहले कभी नहीं पाया था, ऐसे किसी रस और सौन्दर्य से भरा पात्र जैसे किसी ने उसके हृदय के पास खड़े होकर उसके होठों से लगा रक्खा है। किसी विचित्र मुहूर्त में

शायद उसे जी भर पीकर अपने को चरितार्थ कर सकता है, ऐसे ही एक भाव ने आज कई दिनों से उसके चित्त को मुग्ध कर रक्खा है।

खिड़की की राह से उसने देखा, सैकड़ों पुण्यसंचय की कामना रखनेवाले नर और नारी समुद्र में स्नान करने के लिए उसके जल में उतर रहे हैं। देखते ही समुद्र-स्नान के लिए उसका चित्त चंचल हो उठा। पहले दिन स्नान करने के लिए जल में प्रवेश करके वह बहुत ही परेशान हुआ था—उसमें उस का मन नहीं लगा था, एक प्रकार के भय ने घेर लिया था। समुद्र में स्नान करने के क़ायदे वह नहीं जानता था। अन्यान्य अनभिज्ञ लोगों की तरह तटभूमि में खड़े होकर स्नान करने की उसने भी चेष्टा की थी और लहरों की टक्कर से किनारे पर पटखनी खाई थी। उसके बाद एक दिन इधर कई दिन उसने समुद्र में स्नान करने का नाम ही नहीं लिया। आज बातों ही बातों में सुरेशचन्द्र से समुद्र स्नान का कौशल उसने मालूम कर लिया था। अथाह जल-राशि के बीच की लहरों के ऊपर चढ़कर नहाने में कैसा अपूर्व आनन्द आता है, यह जानने और उस आनन्द का उपभोग करने के लिए रमेंद्र प्रस्तुत हुआ।

तेल की मालिश करने के बाद अँगौछा लेकर वह घर से निकला। इसी समय पीछे से स्त्रियों के स्वर में किसी ने कहा—रमेंद्र बाबू, आप क्या समुद्र में नहाने जा रहे हैं?

रमेंद्र ने घूमकर देखा, सीता और सरयू दोनों थीं।

सरयू बोली—हम लोग भी चलती हैं, तनिक ठहर जाइये।

रमेंद्र ने विस्मय के साथ कहा—समुद्र में नहाना आप लोगों के समान बंगाली औरतों का काम नहीं है। बड़ी मुश्किल में पड़ जाइयेगा।

सरयू ने हँसकर कहा—आप निश्चिंत रहें, हमारे लिए कुछ

भय नहीं है। आज कोई हम पहले-पहल नहीं नहाने जा रही हैं। हम तो नित्य ही नहाती हैं। लहरें हमें कोई हानि नहीं पहुँचा सकतीं।

रमेंद्र ने एक बार दोनों की ओर देखा। फिर प्रशंसा-सूचक स्वर में कहा—शेमीज के ऊपर मोटी धोती पहन ली, यह आप लोगों ने बुद्धिमानी का काम किया।

सरयू ने कहा—स्नान के समय आप हमारी बुद्धिमत्ता का और भी परिचय पायेंगे। चलिए।

तीनों जने स्नान के घाट की ओर चले। पास ही "स्वर्गद्वार" घाट था।

नवाँ परिच्छेद

पहिले दिन रात को एक मामूली आँधी आ गई थी, किन्तु सबेरे के बाद से गत रात्रि के दुर्योग का कोई चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ता था। आकाश में बादल नहीं थे। सूर्य की उज्ज्वल आभा समुद्र के वक्षस्थल में नए-नए रंगों की छाया डाल रही थी।

पुरी के समुद्र को जिन्होंने देखा है, वे जानते हैं कि किनारे से कुछ दूर तक समुद्र का जल उतना गहरा नहीं है। चाहे जितनी दूर तक जाकर बेखटके स्नान किया जा सकता है। केवल यह करना होता है कि लहर जब जोर से गरजती हुई किनारे की ओर आती है, तब सिर झुका दो, लहर आपको कुछ भी हानि न पहुँचाकर चली जायगी, अथवा जरा ऊपर उछल जाओ लहर माता की तरह स्नेह-पूर्वक तुम्हें गोद में लेकर फिर उसी जगह खड़ा करके चली जायगी। अगर दैवसंयोग से तुम्हारा पैर फिसल भी गया, तो उसमें भी किसी विपत्ति की आशंका नहीं, दूसरी लहर आकर तुमको किनारे पहुंचा जायगी। कहा जाता है कि समुद्र किसी का दान नहीं लेता। तुम चाहे जो कुछ समुद्र को अर्पण करो, लहर उसी दम वह वस्तु लौटाकर तुम्हारे पैरों के पास डाल जायगी।

स्वर्गद्वार के घाट पर बहुत से नर-नारी स्नान कर रहे थे। रमेंद्र, सीता और सरयू वहाँ आकर उपस्थित हुए। पल-पल भर लहर किनारे की भूमि को प्लावित कर रही थी। कोई-कोई लहर थोड़ी ही दूर तक जाकर नष्ट हो जाती थी। अनभिज्ञ लोग तट-भूमि में घुटने टेककर, सिर आगे बढ़ाकर लहरों के

प्रवाह में स्नान कर रहे थे। उनमें से जो कोई तनिक भी असावधान होता था तो वह किनारे की जमीन में लुढ़क पड़ता था।

रमेंद्र ने देखा, सीता और सरयू लापरवाही के साथ समुद्र के जल में आगे बढ़ती जा रही हैं। लहरें उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पातीं। वे अपूर्व कौशल के द्वारा लहर के साथ-ही-साथ नीचे उतरती और ऊपर उठती आगे बढ़ रही थीं। उनकी देखा-देखी रमेंद्र भी समुद्र-गर्भ में उतरा। थोड़ी ही देर में उसकी समझ में आ गया कि समुद्र में स्नान करने से बड़ा आनन्द आता है। रमेंद्र की देह समुद्र की लहरों के विचित्र स्पर्श से काँप उठने लगी। बहुत दिनों तक कसरत करने के कारण उसने थोड़ी ही देर में समुद्र-स्नान के कौशल का अभ्यास कर लिया। सरयू और सीता बहुत दूर आगे बढ़ गई थीं, परन्तु वहाँ भी जल इतना गहरा नहीं था, जिसमें डूबने की कोई आशंका हो। रमेंद्र भी नाचती हुई लहरों के साथ नाचता हुआ सीता और सरयू के पास आकर खड़ा हो गया।

जिन्हें समुद्र में नहाने का अभ्यास है, अथवा समुद्र की लहरों के साथ उनके अनेक रूपों से जिनका परिचय है, वे पुरी के समुद्र में आँधी आने के दूसरे दिन स्नान करने के लिए अधिक दूर नहीं जाते। कारण, वे जानते हैं कि प्राकृतिक विपर्यय के कारण पुरी के समुद्र की लहरों में भी उस दिन एक प्रकार का परिवर्तन हो जाता है। जल के नीचे प्रवाह की गति से उलटा एक वेग उत्पन्न होता है, अर्थात् ऊपर का जल जिस ओर बहता है, उसके विपरीत दिशा में नीचे का जल बहने लगता है, और उसमें बड़ा ज़ोर होता है। उस दिन नहाते समय अगर दैवसंयोग से पैर फिसल गया तो नीचे के स्रोत के आकर्षण में पड़कर स्नान करनेवाला विपत्ति में फँस जाता है।

सरयू और सीता को यह बात मालूम न थी। रमेंद्र भी इस

तत्त्व से अनभिज्ञ ही था। किन्तु रमेंद्र तो थोड़ी ही देर में उस स्रोत के आकर्षण का अनुभव करके सचेत हो गया, उसने समझ लिया कि अधिक दूर तक जाना ठीक नहीं। वह सरयू और सीता से भी कुछ आगे बढ़ गया था। कुछ "लोनिया" जाति के बालक पास ही लहरों के ऊपर उछल कूद रहे थे। और कोई स्नान करने की इच्छा रखनेवाला साहसी मर्द या औरत वहाँ तक नहीं आया था।

सरयू और सीता को आगे बढ़ते देखकर रमेंद्र कह बैठा—इधर अब और आगे न बढ़ियेगा। नीचे के स्रोत का खिंचाव बहुत तेज है।

किन्तु उसका मना करना कौन सुनता है ? रमेंद्र अगर आज नया-नया स्नान करने आकर उस जगह जा सकता है, तो वे क्यों नहीं जा सकतीं ? किंतु सीता या सरयू यह नहीं समझ सकीं कि रमेंद्र अपनी कसरती देह और पुरुष की शक्ति की सहायता से किसी तरह जिस वेग से अपनी रक्षा कर सका है, उससे कम के समान कोमल नारी अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

सीता और सरयू जैसे रमेंद्र के पास आकर खड़ी हुईं, वैसे एक जोरदार लहर आ गई। पहले की शिक्षा के अनुसार सीता और सरयू उछलकर लहर के ऊपर हो गईं। लहर उन्हें उसी जगह छोड़कर चली गई, लेकिन अबकी वे ठीक खड़ी नहीं रह सकीं। उनके पैर डिग गए। ऊपर के स्रोत के प्रतिकूल नीचे के स्रोत के खिंचाव से उनके पैर हट गए। अब उन्हें मालूम पड़ा कि वह प्रवाह उन्हें गहरे पानी में खींचे लिये जा रहा है। भय से दोनों के मुख से एक चीख निकल पड़ी।

रमेंद्र उनकी विपत्ति को समझ गया। उसने दोनों हाथों से दोनों स्त्रियों को खींच लाना चाहा। किन्तु सरयू को वह नहीं पकड़ पाया। एक लोनिया बालक ने फुर्ती के साथ सरयू को पकड़

लिया। रमेंद्र ने सीता का हाथ पकड़कर पूरे जोर से उसे किनारे की ओर खींचा। विपत्ति के समय अक्सर आदमी घबरा जाता है, और सोच-समझकर काम नहीं करता। सीता ने उस समय क्या किया, इसका उसे कुछ होश नहीं था। कई सेकंडों के लिए उसे रमेंद्र के शरीर से लगकर आश्रय लेना पड़ा। यह उसने जान-बूझकर नहीं किया, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पल भर में ही यह सब हो गया। और किसी ने इस घटना पर लक्ष्य करने का अवकाश नहीं पाया, बहुत जल्दी, यथा-संभव तेज़ी के साथ सब जने किनारे की ओर लौट चले। उस समय भी सरयू और सीता का शरीर भय और आशंका से थर-थर काँप रहा था। किनारे पर आकर रमेंद्र ने सरयू को बचाने-वाले लोनिया लड़के को इनाम देकर बिदा किया।

रास्ते में चलते-चलते रमेश ने कहा—आप लोगों को इतनी दूर जाना नहीं चाहिए था। ओह! कैसी अलप टल गई!

सीता उस समय भी प्रकृतिस्थ नहीं हो पाई थी—उसके होश-हवाश 'दुरुस्त नहीं हो सके थे। सरयू के भी दोनों पैर काँप रहे थे।

सरयू ने कहा—हम लोग तो रोज ही इतनी दूर तक जाया करती थीं। कौन जानता था कि आज ऐसी आफ़त का सामना करना पड़ेगा।

दसवाँ परिच्छेद

समुद्र-स्नान के दिन की पूर्वोक्त घटना के बाद से ही रमेंद्र के मन के भीतर एक विशेष परिवर्तन हो गया। सीता से उसकी बहुत दिनों की जान-पहचान है। कुछ समय पहले सीता से ब्याह करने के लिए वह पागल हो रहा था, किन्तु अनेक कारणों से सीता के साथ उसका ब्याह नहीं हो सका। प्रथम यौवन की स्मृति को वह इधर एक तरह से भूल ही गया था। ऐसा बहुतों को होता है। किन्तु कलकत्ते की सड़क पर गाड़ी की दुर्घटना से सीता और सरयू की रक्षा करने के बाद उनके साथ जल्दी-जल्दी मिलने-जुलने, वार्तालाप करने और घनिष्ठता बढ़ने के कारण रमेंद्र के हृदय की सोई हुई वह पूर्व-स्मृति फिर जाग उठी। क्रमशः उसके अवलम्बहीन शून्य हृदय में (कारण, ब्याह हो जाने पर भी स्त्री के ऊपर उसकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी, प्रेम की कौन कहे) सीता की मोहिनी मूर्ति उसे अपनी ओर आकृष्ठ करने लगी थी। रमेंद्र समझता था कि सीता के ख्याल को अपने हृदय में स्थान देने का उसको कोई अधिकार नहीं है। कारण, सीता पराई स्त्री है, और उसका भी ब्याह हो चुका है। किन्तु उसका चित्त किसी तरह इस बाधा को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं होता था। अगर वह सीता के इतने निकट न रहता, उससे दूर रह सकता, तो शायद अपने मन की इस दुर्दयनीय इच्छा को बहुत कुछ दबा रख सकता। कारण, वह पढ़ा-लिखा, भला आदमी और समझदार था। इतने दिन तो वह एक तरह से सीता को भूल ही गया था। किन्तु प्रथम यौवन की स्वप्न-स्मृति फिर जब नए जोश के साथ उसके

मन में जाग उठी, जिसे अवलम्ब करके उसके तरुण हृदय से कल्पना के द्वारा मन के राज्य में एक नवीन स्वर्ग की रचना की थी, उसे अपने निकट पाकर नित्य उसके साथ बातचीत करने का, भावों के लेन-देन का मौका मिला, तब तो उस उच्छृंखल मन को रोक रखना कोई साधारण बात नहीं थी ! यदि व्याही हुई स्त्री के प्रति उसके मन में थोड़ा सा भी आकर्षण होता तो शायद उसके मन में इतनी जल्दी ऐसा आंदोलन न उपस्थित होता, ऐसी उथल-पुथल न मच जाती। किन्तु वास्तव में उसके मन में प्रायः यह धारणा ही नहीं रह जाती थी कि उसका व्याह हो चुका है। यह बात जैसे वह भूला ही रहता था। सीता, सरयू और सुरेशचन्द्र के आगे भी उसने यह बात नहीं प्रकट होने दी कि उसका व्याह हो चुका है। यह परिचय देने की अब तक कभी जरूरत भी नहीं पड़ी थी।

कलकत्ते में रहने के समय, सीता के साथ प्रतिदिन मिलने जुलने के कारण, रमेंद्र के मन में जो भाव उत्पन्न हो चुका था, वह पुरी में आने के बाद से दिन-दिन जोर पकड़ने लगा। समुद्र स्नान की घटना के बाद से तो उसका मन एकदम उसके हाथ से जाता रहा।

समुद्र के स्रोत में पड़कर सीता जब गहरे पानी की ओर बही जा रही थी, उस समय अपूर्व कौशल से रमेंद्र ने उसे लपककर पकड़ लिया था। डरी हुई सुन्दरी ने अत्यन्त असहाय भाव से कुछ सेकिंडों के लिए रमेंद्र के विशाल वक्षःस्थल का आश्रय ग्रहण किया था। उसकी उस समय की घबराई हुई नजर और मृणाल कोमल बाहु-बन्धन के स्पर्श ने रमेंद्र के हृदय में भारी हलचल मचा दी।

स्पर्श कोई तुच्छ चीज नहीं है। स्पर्श का बड़ा असर होता है। उसकी शक्ति अमोघ और अव्यर्थ है। इस सम्बन्ध में रमेंद्र

ने किताबों में बहुत कुछ पढ़ रक्खा था। किन्तु पहले कभी उसके प्रभाव का अनुभव करने का अवकाश नहीं पाया था। इस समय उसकी समझ में आया कि मानव-मनोवृत्ति की विशेषताओं का विश्लेषण करनेवाले विद्वान जो कुछ इस विषय में लिख गए हैं, सो बिलकुल ठीक है, उसमें एक अक्षर भी अतिरंजित नहीं। जिसे हम अपने मन में अपना विशेष प्रीति का पात्र मानते हैं, विश्वास करते हैं, जिसे पाने से अपने जीवन को सार्थक समझा जाता है, जिसे पाने की प्रबल इच्छा मन में है, ऐसे व्यक्ति को जब तक छुआ नहीं जाता, उसका स्पर्श नहीं प्राप्त होता, तब तक शायद आत्मदमन किया भी जा सके; किन्तु एक बार अगर वंछित व्यक्ति के अंग का स्पर्श हो जाय तो फिर सर्वनाश ही समझिए! तब शीतल स्पर्श भी प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला का रूप धारण कर लेता है। उस अवस्था में शरीर और मन को संयम के बंधन में बाँध रखना हर एक का काम नहीं। बल्कि यों कहना चाहिए कि संसार में ऐसे दृढ़चित्त नर-नारी हजार में एक भी न मिलेंगे।

रमेंद्र ने पुस्तकों में ऐसी अनेकों बातें इस सम्बन्ध में पढ़ी थीं, परन्तु उन पर उसे विश्वास नहीं था। इस समय अपने ऊपर बीतने पर उसको उनकी सच्चाई का पूर्ण अनुभव हो गया। सीता के शरीर के क्षणिक स्पर्श की स्मृति रह-रहकर उसके मन में विलव की आग को प्रज्वलित करने लगी किसी तरह वह सीता की निषिद्ध चिन्ता को अपने दिमाग से नहीं निकाल सका। जितना ही दृढ़ता के साथ वह उससे परित्राण पाने की, उसे भूलने की चेष्टा करता था, उतना ही वह प्रबल होती जाती थी।

दिन में सौ बार सीता का सामना होता है। उस समय कैसी दृढ़ता के साथ उच्छृंखल मन को रोक रखना होता है, यह क्या रमेंद्र समझता नहीं? वह कैसा भयानक संग्राम होता है!

विद्रोही हृदय नेत्र और मुख द्वारा आत्मप्रकाश करना चाहता है, किन्तु भद्रता, शिक्षाभिमान और आत्ममर्यादा का ज्ञान हृदय के इस नग्न भाव को अनेक प्रकार से ढकने की चेष्टा करता है। इस प्रकार मन को दबा कर, आत्मवञ्चना करके चलना कितना कठिन काम है, इसका अनुभव रमेंद्र को पग-पग पर होने लगा। वह समझता था कि उसका चित्त क्रमशः कमजोर होता जा रहा है, उसका हृदय वासना के प्रबल प्रवाह में बहा चला जा रहा है। किन्तु बाहर वह भाव प्रकट करने का कोई उपाय नहीं।

रमेंद्र अपनी कामना की सुन्दरी का चित्र कविता में अंकित करने लगा। सारा हृदय ढालकर वह इस नई अभिज्ञता की बातें काव्य चित्र में प्रस्फुट करने लगा। इस प्रकार उसका मन कविता के भीतर आत्मप्रकाश करने लगा। उससे कुछ-कुछ तृप्ति अवश्य होती थी, किन्तु नस नस में, रक्त के कण-कण में जो आग जलती थी, वह नहीं बुझती थी। बल्कि धौंकने पर आग की तरह वह और भी गहरी होकर जलने लगी।

रमेंद्र ने समझा, इच्छा करने पर भी सीता की स्मृति से उसके छुटकारे का उपाय नहीं। कारण, सभी अगर केवल कल्पना होता तो शायद एक दिन वह उसे भूल सकता था। किन्तु यह तो कोरी कल्पना नहीं है। शरीरिणी मानसी मूर्ति को प्रायः सभी समय वह प्रत्यक्ष देखता है, बातचीत करता है। इस प्रकार सदा पास रहने पर कैसे भूला जा सकता है? सुतरां अजगर जैसे शत वेष्टन से कस कर अपने शिकार को चूर-चूर करता है, वैसे ही रमेंद्र का चित्त भी सीता के ध्यान के फंदों में फँसकर पीड़ित होने लगा।

कभी-कभी जब वह ऊब उठता था तो अपने को छुड़ाने के लिए व्यर्थ व्याकुलता प्रकट करता था। किन्तु वैसे ही मोह

आकर उसे दबा लेता था। तब निर्जीव भाव से, स्वप्नाविष्ट की तरह वह उसी अवस्था में चलने लगता था।

सब जान-सुनकर इच्छापूर्वक ही उसने अपने को इस मानसिक अवस्था में पहुँचा दिया था। जब आत्म-रक्षा का उपाय था, तब उसने रत्ती भर भी चेष्टा नहीं की। उसके बाद जब उसने अपने मानसिक अधःपतन का यथेष्ट परिचय पाया, तब युक्ति के द्वारा मन को समझाया कि यह सामाजिक विधि-व्यवस्था के प्रतिकूल हो सकता है; किन्तु नित्य मानव के विधि-निषेध के बीच इसे नहीं स्थान दिया जा सकता। इसी युक्ति की दुहाई देकर वह आदर्श के उच्च शिखर से क्रमशः नीचे उतर आया है। रास्ते में कहाँ पर एक गहरा गढ़ा मुँह फैलाए उसे ग्रसने के लिए उसके पतन की राह देख रहा है, इधर लक्ष्य रखने का रत्ती भर भी आग्रह उसे नहीं था।

और सीता ? हाँ—रमेंद्र का साथ, उसके साथ आलाप-आलोचना, यह सब सीता के लिए प्रीतिप्रद था। यौवन के प्रथम विकास-काल तक जिसके साथ सर्वदा बिना किसी संकोच के वह मिली-जुली है, जिसके साथ बहुत दिनों तक आलाप आलोचना की है, जो सहोदर भाई का सुहृद् है, अपना भी हम जोली—खेल का साथी है, यहाँ तक कि एक दिन जो अपने जीवन का सदा का साथी निर्वाचित हुआ था, अर्थात् जिसके साथ ब्याह की बातचीत चली थी, आज चार-पाँच बरस बाद एकाएक उसे पाकर अवश्य ही सीता ने आनन्द का अनुभव किया था। उस आनन्द को वह सचमुच अपने लिए स्वाभाविक और निर्दोष समझती थी। विशेष कर एक दिन जो परम प्रीतिपात्र और श्रद्धास्पद मित्र था, वह अगर जीवन-रक्षा में सहायता करे तो उसकी ओर आप ही चित्त आकृष्ट होता है, यह मनुष्य-हृदय का स्वभाव-सिद्ध धर्म ही है। रमेंद्र के निष्कपट व्यवहार

और कवि-हृदय के उच्छ्वास-पूर्ण वार्तालाप और आलोचना ने सचमुच सीता को मुग्ध कर लिया था इस बात को वह अस्वीकार नहीं नहीं कर सकती, और उसे अस्वीकार करने की कोई जरूरत भी वह नहीं समझती थी कोई विवाहित सती नारी किसी प्रियदर्शन, प्रीतिपात्र, बाल्यबंधु को जिस श्रद्धा और प्रीति की दृष्टि से देख सकती है, सीता भी ठीक उसी भाव से रमेंद्र को देखती थी। उसमें विशुद्ध मित्रता के भाव के सिवा और कोई भाव नहीं था।

किन्तु श्रद्धा और मित्रता की राह में अगर संयम की बाधा न रहे तो वह क्रमशः और भी अधिक दूर तक अग्रसर हो सकती है, यह खयाल एक बार भी सीता के मन में नहीं आया शुरू-शुरू में अक्सर ऐसी ही ग़लती हो जाया करती है, रमेंद्र के बाहरी व्यवहार में उसे कोई ऐसा इंगित नहीं देखने को मिला, जिससे उसके मनमें कोई ऐसा प्रश्न उठता या सन्देह का उदय होता। अतएव वह अपने बाल्यसुहृद् सुकवि रमेंद्र को अज्ञात रूप से बहुत मानने लगी थी।

समुद्र-स्नान के समय उस दिन बहुत थोड़े समय के लिए सीता का शरीर रमेंद्र के विशाल वक्षःस्थल से लग गया था। किन्तु सीता के यह सोचने का कोई कारण नहीं था कि उस स्पर्श से रमेंद्र के मन में कोई कलुषित भाव उत्पन्न हो सकता है। अगर उस क्षणिक स्पर्श से स्वयं सीता के मन में किसी प्रकार का मोह उत्पन्न भी हुआ हो तो वह इतना प्रच्छन्न और अज्ञात था कि सीता की दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता था।

अतएव रमेन्द्र जान-बूझकर जिस निषिद्ध मोह में अपने को फँसा रहा था, सीता अज्ञात भाव से शायद उसी ओर बढ़ रही थी।

मनुष्य इसी तरह भटकता है ! आत्मानुशीलन और किसी निर्दिष्ट लक्ष्य से आत्मनिर्भर न होने पर मनुष्य इसी प्रकार राह कुराह में भटक जाता है और अन्त में उसे कठिन दुःख तथा यंत्रणा सहनी पड़ती है।

इसी तरह कर्मसूत्र दोनों को किधर खींचे लिये जा रहा था, यह कौन कह सकता है ?

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सन्ध्याकाल है। आकाश में चन्द्रमा हँस रहा है। समुद्र के जल में लहरों की हिलोरों में चाँदनी की अपूर्व शोभा है। भैरव गर्जन के साथ उन्मत्त उच्छ्वास प्रकट करती हुई लहरें उठ रहीं हैं। वे लहरें कहाँ से आ रही हैं, यह नहीं देख पड़ता, समझ में नहीं आता। जान पड़ता है, जैसे अनन्त रहस्य के गर्भ से उठकर, सिर पर चाँदनी का उज्ज्वल मुकुट पहन कर लहरें सामने दौड़ी चली आ रही हैं। दृष्टि अधिक दूर तक अग्रसर नहीं होती, प्रकाश की एक हल्की यवनिका जैसे क्रमशः घनी होकर समुद्र के वक्ष-स्थल को ढकती चली गई है। हवा वेग के साथ समुद्र जल को चंचल करती हुई चल रही है।

रमेंद्र को याद आया, आज नवरात्र की सप्तमी है। आज बंगाल में घर-घर शरद्लक्ष्मी की शुभ आरती में शंख, घंटा घड़ियाल बज रहे होंगे। उसने मानस नेत्रों से देख पाया कि उसके घर के आँगन में गाँव के लड़की-लड़के, नर-नारी जमा हैं, वे महामाया की पूजा देखने आए हैं। केवल वही अकेला आज उस आनन्द-उत्सव से दूर है, यहाँ पड़ा हुआ है। उसने जान-बूझकर अपने को उस आनन्द के उपभोग से वंचित कर रक्खा है। क्यों उसने ऐसा कर रक्खा है?

वायु और समुद्र के गर्जन में एक उदासी से भरी हुई गंभी-रता थी। रमेंद्र का कवि-हृदय जैसे समुद्र की असीमता का अनुभव करके थका जा रहा था—हृदय के किसी भी कोने में जैसे शान्ति का लेश भी नहीं था। सन्ध्या के पहले ही वह अकेले समुद्र के किनारे चला आया था। सरयू, सुरेश या सीता कोई भी

उस समय समुद्र के किनारे टहलने नहीं आया था। रमेंद्र का मन अशान्त हो रहा था। शान्ति पाने की आशा से ही वह अकेला अनन्त सागर की शरण में दौड़ा आया था। किनारे की बालू पर झुंड के झुंड लड़की-लड़के बड़े उत्साह के साथ इधर उधर दौड़-धूप कर रहे थे, नर-नारी इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं दो-एक आदमी गपशप लड़ा रहे थे।

अपेक्षाकृत निर्जन एकान्त स्थान में चंद्रमा की धुँधली चाँदनी से प्रकाशित तटभूमि में बैठा हुआ रमेंद्र आत्मविस्मृत भाव से क्या सोच रहा था? किस चिन्ता में डूबा हुआ था?

सहसा वह चौंक उठा। पीठ में किसी की उँगलियों के स्पर्श के साथ-साथ उसने सुना—अरे रमेंद्र, यहाँ अकेले बैठे क्या सोच रहे हो?

रमेंद्र ने घूमकर देखा, सुरेशचंद्र था। उससे कुछ फासले पर सीता और सरयू भी खड़ी थीं।

रमेंद्र चटपट उठ खड़ा हुआ।

सरयू ने हँसकर कहा—क्यों रमेन्द्र बाबू, अकेले-ही-अकेले चाँदनी और सागर की शोभा देखने चले आए? हम लोगों को नहीं बुलाया?

सरयू के प्रश्न से रमेंद्र कुछ लज्जित हो उठा। उसने कहा—आप लोग काम में लगी हुई थीं, इसी से अकेला ही चला आया। आज सप्तमी पूजा का दिन है न?

सरयू ने हँसकर कहा—आज हमारे देश में—बंगाल में—कैसा उत्सव मनाया जा रहा होगा! लेकिन यहाँ तो कुछ भी नहीं देख पड़ता। हाँ, सुना है, कुछ प्रवासी बंगाली यहाँ भी दुर्गापूजा का उत्सव चंदे से मनाते हैं।

सुरेशचंद्र चुपचाप कुछ सोच रहा था। वह कह उठा—शरद लक्ष्मी की यह पूजा बड़ी सुन्दर है। मुझे तो यह उत्सव बहुत

भला लगता है। जिन्होंने इस ऋतु में शक्ति-पूजा का प्रचार किया था, वे बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने प्रकृति के संपूर्ण रहस्य और तत्व को बहुत अच्छी तरह समझ लिया था। शक्ति के उद्बोधन की आवश्यकता को हिंदू जाति खूब जानती थी। इसी से हमारे पूर्वजों ने हर साल महाशक्ति की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करने की पद्धति चलाई।

सीता अब तक चुपचाप खड़ी थी, उसने पुकारा—दादा!

सुरेशचंद्र ने भावमग्न दृष्टि उसकी ओर घुमाकर कहा—सीता, तुझे शायद मेरे मुख से प्रतिमा-पूजा की प्रशंसा सुनकर आश्चर्य हो रहा है। बहन जब तक मैं भारतवर्ष में था, तब तक इस रहस्य को नहीं समझ सका था। किन्तु शक्ति के लीला निकेतन विलायत में जाने के बाद मुझे इस अपूर्व तत्व का ज्ञान हुआ मेरी आँखें खुल गईं। देख बहन जब तक मनुष्य कूप-मंडूक बना रहता है, अपना घर छोड़कर बाहर की सैर नहीं करता, तब तक उसका ज्ञान कभी सम्पूर्ण नहीं हो सकता। हिन्दू जाति कितनी बड़ी उदार थी, यह विलायत की सैर करने पर मुझे मालूम हुआ।

हँसी के स्वर में सरयू ने कहा—लेकिन सुरेश बाबू आपके इस मत को सुनकर हमारे समाज के लोग आपको श्रद्धा की पुष्पाँजलि नहीं अर्पण करेंगे। आप हमारे प्रचलित धर्म विश्वास के विरोधी मत का प्रचार कर रहे हैं।

सुरेशचंद्र ने भी मुसकिराकर कहा—लोकमत को मानकर चलना मैंने कभी नहीं सीखा। भविष्य में भी अपनी बुद्धि से उपलब्ध विश्वास को ही मैं मानूँगा! अंधों की तरह स्वयं अपनी आँखों से कुछ न देखकर लकीर के फकीर होना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है।

रमेन्द्र इस आलोचना में शामिल नहीं हुआ। वह अपने

सामने खड़ी हुई सीता की ओर कभी-कभी देख लेता था, और उसके शरीर के सौन्दर्य का विकास उसे मुग्ध किए हुए था। हल्की चाँदनी के प्रकाश में सीता की अपूर्व शोभा दिखलाई पड़ रही थी। सीता एक बसंती रंग की धोती पहने थी। रूप की चाँदनी पर चन्द्रमा की चाँदनी पड़ने से ऐसी शोभा की लहर उठ रही थी कि उसमें सीता स्वर्गीय अप्सरा जान पड़ती थी। रमेंद्र सहसा अपनी मुग्ध दृष्टि को उसकी ओर से हटाने में असमर्थ हो रहा था।

किन्तु सीता की दृष्टि जैसे रमेन्द्र के ऊपर पड़ी, वैसेही रमेन्द्र ने अपनी दृष्टि उस पर से हटा ली। उस समय अज्ञात भाव से एक लंबी साँस रमेंद्र के मुख से निकल पड़ी।

सीता ने कहा—कविता की सामग्री खोज रहे हैं क्या रमेंद्र बाबू? समुद्र में चाँदनी की शोभा के विषय को लेकर एक कविता लिखिए न!

रमेंद्र ने मुसकराकर कहा—आपका कहना कुछ झूठ नहीं है। मगर अनन्त सौन्दर्य के पास बैठकर यदि उस सौन्दर्य की उपलब्धि न हो सके तो उससे बढ़कर दुःख या दुर्भाग्य और नहीं हो सकता।

सुरेशचन्द्र भी रमेशचन्द्र के साथ उसी जगह बैठ गए। बैठ कर सुरेश ने कहा—सचमुच इस समय यहाँ बैठकर सोचने में ही आनन्द आता है। सीता, तुम भी सरयू के साथ उस जगह बैठ जाओ। आज की रात बड़ी सुन्दर है, क्यों न रमेंद्र?

रमेन्द्र ने कहा—बेशक! प्राकृति का ऐसा सुन्दर रूप मैंने इस जन्म में और कभी नहीं देखा था। जिसने समुद्र में चन्द्रमा का उदय नहीं देखा, वह कभी इस सौन्दर्य की कल्पना भी नहीं कर सकता।

सीता और सरयू भी पास ही बैठ गईं। कुछ देर तक सब

चुप रहे। उस विचित्र सौन्दर्य के आकार समुद्र की शोभा निहारते रहे। रमेन्द्र की दृष्टि एक बार सीता की ओर चली गई। उसे जान पड़ा, सीता के मुख में ऐसी एक विषादपूर्ण अथच मधुर शोभा झलक रही है, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा।

हल्के चाँदनी के प्रकाश में सीता का मुखमंडल और उसकी वह श्री सुस्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ती, जैसे कुछ छाया से आच्छन्न है, कुछ अस्पष्ट है! रमेन्द्र ने क्या समझा, यह वही जाने, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सीता के मुखचद्र को देखकर उसका हृदय भी सामने के समुद्र के समान ही चंचल हो उठा उसमें वैसी ही हलचल मची हुई थी।

सहसा सरयू कह उठी—मनुष्य का मन क्या समुद्र के ही समान है? रमेंद्र बाबू, आप तो कवि हैं, मानव-मन के विशेषज्ञ हैं, सदा उसी की आलोचना किया करते हैं। बताइए, इस बारे में आप की क्या राय है?

रमेंद्र ने कहा—जान पड़ता है, इस विषय में किसी की दो सम्मतियाँ नहीं हो सकतीं। हाँ, मनुष्य का हृदय समुद्र ही की तरह अथाह और अनन्त है। वह कभी विक्षुब्ध, भीषण और संहार-शक्ति-संपन्न होता है और किसी समय स्थिर, धीर, सौम्य और प्रशान्त बन जाता है।

उत्साहित होकर सरयू कह उठी—समुद्र के भीतर सीपी, शंख, मोती पाए जाते हैं, यह भी तो कहिए। इसके सिवा मगर आदि जीव भी तो होते हैं। मनुष्य का मन भी ठीक ऐसे ही भावों से भरा है, क्यों न रमेन बाबू?

जी हाँ" कहकर ही रमेन्द्र चुप हो गया। उपमा शायद उसके मन में चुभ गई थी।

सीता ने अब तक एक बात भी नहीं कही थी। वह चुप-चाप बैठे-बैठे समुद्र की ओर ताकती हुई न जाने क्या सोच रही

थी। चन्द्रमा की किरणों से उच्छ्वसित समुद्र की लहरों में जो सुर, ताल और लय थी, उनके साथ क्या वह अपने हृदय के भावों की तुलना कर रही थी ? लहर किसी रहस्य के गर्भ से उठकर प्रबल उच्छ्वास के साथ दौड़ी आती है, बालुकामय तट पर आहत होकर टकराकर टूक-टूक हो जाती है और फिर समुद्र-गर्भ में जाकर विलीन हो जाती है। यह सब ठीक ताल, लय, की संगति के साथ हो रहा था। सीता क्या यही देख रही थी ?

थोड़ी ही दूर पर—रमेंद्र की दाहनी बगल में सीता बैठी हुई थी। सीता को इस तरह गुमशुम होकर बैठते रमेन्द्र ने और कभी नहीं देखा था। रमेंद्र को जान पड़ने लगा कि सीता के मुख पर कुछ चिन्ता की जो छाप पड़ रही है, वह उसके सौन्दर्य को और भी लुभावना बना रही है।

रमेंद्र ने कहा—तुम आज इस तरह चुपचाप क्यों बैठी हो सीता ?

इधर पुरी में आने के बाद से सीता के बार-बार प्रतिवाद करने के कारण रमेंद्र ने उसे आप कहना छोड़ दिया था। चार वर्ष पहले रमेंद्र जैसे सहज स्वच्छन्द भाव से सीता के साथ बात-चीत करता था, अनेक विषयों की आलोचना जी खोलकर करता था, इस समय चेष्टा करके उसी बेतक़ल्लुफी की अवस्था को वह लौटा लाना चाहता था। किन्तु पग-पग पर उसे यह अनुभव हो रहा था कि ठीक उसी अवस्था में लौट जाना बहुत ही कठिन काम है।

जैसे कोई सोते से जाग पड़े, इस तरह चौंक कर सीता कह उठी—यहाँ आने पर बातचीत का सिलसिला आप ही थम जाता है। जहाँ कान लगाने से हर घड़ी अनन्त वार्ता की ध्वनि सुनाई देती है, वहाँ चुप रहने के सिवा बोलने को किसका जी चाहेगा ?

रमेंद्र ने सिर हिलाकर समर्थन के स्वर में कहा—बिलकुल ठीक कहती हो। समुद्र के किनारे आने पर जान पड़ता है, अनन्त के साथ हमारे मन के मिलने में कुछ भी आड़ नहीं है। तब केवल यही जी चाहता है कि इस अनन्त जलराशि में अपने अस्तित्व को लीन कर दिया जाय।

सरयू ने हँसकर कहा—यह उक्ति कवि की-सी अवश्य है, किन्तु आपके मन का यह भाव कुछ आशाजनक नहीं है रमेन बाबू! समुद्र के किनारे आने पर अगर आत्महत्या या संसार-त्याग की कल्पना प्रबल हो उठी तो जल्दी चलिए—कहा ही है, स्थानत्यागेन दुर्जनः।

दिल्लगीबाज़ सरयू की इस बात पर तीनों जने जी खोलकर हँसने लगे।

रमेंद्र ने कहा—आपका जैसा सहज, सरल, उन्मुक्त, उच्छ्वास-पूर्ण, सदानन्द हृदय अगर मेरा होता मिस मित्र!

सीता ने सरयू को लक्ष्य करके कहा—यह तो कुछ झूठ नहीं है बहन! मैंने आज तक कभी तुम्हारे लिए मन में चिंता की छाया पड़ते नहीं देखी! तुम्हारे लिए जैसे सभी कुछ मधुर, सुन्दर और अच्छा है!

सुरेशचन्द्र ने कहा—रात बहुत अधिक हो गई है, अब तो मेरी समझ में मिस मित्र की ही सलाह माननी चाहिए।—चलो रमेन, डेरे पर चला जाय। तुम्हें तो आधीरात के सन्नाटे में कविता-सुन्दरी का ध्यान भी करना है।

सभी उठकर खड़े हो गए। चलते-चलते मंद गति से चल रही सीता की लालायित देहलता का सौन्दर्य देखकर रमेंद्र ने शायद फिर एक बार लंबी साँस ली।

❀ ❀ ❀

सबेरे उठकर ही सीता अपने स्वामी सुनीलचन्द्र को पत्र

लिखने बैठी। सुनील बाबू ने उसे पत्र में लिखा था कि उनका काम अभी समाप्त नहीं हुआ। अगर वह काम खतम करके छुट्टी पा सके तो अवश्य आकर इन सबके आनन्द में शामिल होंगे। सीता स्वामी के इसी अन्तिम पत्र का उत्तर लिख रही थी।

सीता का स्वभाव था कि पत्र में वह कभी गहरा आवेग नहीं प्रकट करती थी। किन्तु आज प्रातःकाल उठकर वह अपने हृदय के भीतर ऐसे एक भाव की तेजी का अनुभव कर रही थी, जो रोककर रक्खा नहीं जा सकता। ऐसा अनुभव पहले उसे कभी नहीं हुआ था। जैसे हृदय के तट पर अशान्त की लहरें पूरे वेग से टक्कर ले रही थीं और वह तट-भूमि उस आघात से जैसे काँप-काँप उठती थी। इस प्रकार की अनुभूति का ही यह फल था कि उसका चित्त जैसे सुनीलचन्द्र को अपने पास देखने तथा उनका आश्रय पाने के लिए और भी व्याकुल हो उठा था।

लंबे पत्र के अन्त में सीता ने लिखा—अजी, तुम आओ, जल्दी चले आओ। तुम्हारा अभाव आज मुझे चारों ओर से पीड़ा पहुँचा रहा है। तुम न आओगे तो मेरा चित्त किसी तरह शान्त न हो पावेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे बार-बार रह-रहकर रुलाई क्यों आती है। कितने दिनों में तुम्हारी पुस्तक समाप्त होगी? और कितने दिनों तक तुम शुष्क, नीरस विज्ञान की पुस्तकों और कापियों की आड़ में अपने को निर्वासित रक्खोगे? तुम शीघ्र आओ, तुम्हें देखने के लिए मेरा हृदय आकुल हो रहा है।

इसी तरह की बहुत-सी बातें लिखकर उसने चिट्ठी डाक में डाल दी।

बारहवाँ परिच्छेद

तीसरे पहर जलपान के साथ चाय पी चुकने के बाद दरवाज़ा भेड़कर सीता बिस्तरे पर लेट रही। अकस्मात् उसके सिर में दर्द उठा और वह धीरे-धीरे बढ़कर उसे बहुत कष्ट देने लगा। पलँग पर लेटकर आखें मूँदकर वह चुप-चाप पड़े रहने की चेष्टा करने लगी।

कुछ देर बाद दरवाज़ा ठेलकर सरयू भीतर आई। उसने पुकारा, भाभी!

कुछ क्लेश-सूचक स्वर में सीता ने कहा—क्या है?

सरयू ने कहा—तुम आज बेवक़ पड़ क्यों रहीं? कुछ तबियत ख़राब है क्या?

करवट बदलकर सरयू की ओर ताककर सीता ने कहा—एकाएक सिर में बड़ा दर्द उठ खड़ा हुआ। बैठने में भी तकलीफ़ होती है बहन।

धीर गति से आगे बढ़कर सीता के पास जाकर सरयू ने उसके मस्तक पर अपना शीतल और कोमल हाथ रखकर देखा। सीता के मुख से एक आराम की सूचना देनेवाला शब्द निकला।

उस समय तीसरा पहर ढल चुका था। सरयू ने पश्चिम की खिड़की खोल दी। जलकण-मिश्रित हवा का झोंका आ गया।

सरयू के सदा प्रसन्न हँसते चेहरे पर आशंका और उद्वेग की एक मलिन रेखा जैसे दिखाई पड़ी

सरयू ने कहा—क्या बात है भाभी, तुम्हारी तबियत आज फर क्यों ख़राब हो गई?

नंद की घबराहट देखकर सीता के मुख में हँसी की रेखा फूट उठी। उसने कहा—इतने से दर्द के लिए क्यों इतनी चिन्ता करती हो बहन ? दोपहर को कच्ची नींद टूट जाने से ही सिर दर्द पैदा हो गया है। कोई डर की बात नहीं है, तनिक देर अच्छी तरह सो लेने से आपही आप दर्द अच्छा हो जायगा।

सरयू ने कहा—अभी लीला आती होगी भाभी। आज उसके यहाँ मेरी और तुम्हारी दावत है, सो तो तुम जानती ही हो। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है, इस लिए मेरा भी जाना नहीं हो सकेगा। उसे मना....

बीच में रोककर सीता ने कहा—यह नहीं हो सकता बहन। हम दोनों में से अगर एक भी वहाँ न गया तो लीला की मा को बड़ा दुःख होगा। देखो न, कई दिनों से वह अपनी दासी को भेज रही हैं, उनकी बड़ी इच्छा है कि हम लोग उनके निमंत्रण को मंजूर कर लें। आज खुद लीला ने ही आने को लिखा है। कम से कम तुम को तो जरूर ही उसके साथ जाना चाहिए।

सरयू ने कहा—लेकिन तुम को इस अवस्था में छोड़कर मैं कैसे जा सकती हूँ ?

माथे में दर्द रहने पर भी सीता से हँसे बिना नहीं रहा गया उसने कहा—क्यों, मुझे हुआ क्या है जी ? सिर्फ सिर में दर्द ही हो रहा है न ? और जाती तो मैं इस लिए नहीं हूँ कि अगर कहीं जाकर हँसी-खुशी में शामिल न हो सकी, सिर पकड़े बैठी रही तो उस जाने से लाभ ही क्या ? तुम तो जानती हो कि सर-दर्द होने पर लेट रहने के सिवा मुझसे बैठे भी नहीं रहा जाता। आज तुम चली जाना। फिर किसी दिन मैं भी चलूँगी। लीला तुम्हारी मीतिन है। न जाओगी तो वह बुरा मानेगी। खासकर आज उन्होंने हमारे खाने-पीने का, आदर-सत्कार का प्रबन्ध भी कर डाला, इसलिए तुम्हें अवश्य जाना पड़ेगा।

सरयू इसके प्रतिवाद में कुछ कहने जा रही थी, इसी समय एक सुन्दरी किशोरी ने भीतर प्रवेश किया।

आओ सखी! कहकर हँसती हुई सरयू उस किशोरी की ओर अग्रसर हुई। सीता भी पलँग पर उठकर बैठ गई।

हास्यमयी नवागत रमणी ने—जिसका नाम लीला था—कहा—खूब! अभी तक आप लोगों ने कपड़े-लत्ते भी नहीं पहने। मैं समझती थी, आप तैयार बैठी होंगी, इसीलिए एकदम गाड़ी लेकर हाजिर हुई हूँ।—उठो भाभी, चलो।

सीता ने संक्षेप में अपने अस्वस्थ होने का हाल कह सुनाया। नवागत किशोरी का चेहरा कुछ उदास हो गया।

सीता उसके मन का भाव समझ गई। बोली—सरयू तुम्हारे साथ जा रही है लीला। मैं और एक दिन खुद आऊँगी, जरूर आऊँगी। मा से मेरा प्रणाम कहकर कहना कि सिर का दर्द अगर असह्य न होता, मामूली होता तो मैं जरूर आती।

दोनों हाथों से सिर दबाकर सीता फिर पलँग पर लेट रही।

तब लीला ने सरयू से कहा—तो फिर सखी, तुम जल्दी कपड़े पहन लो। फिर सीता से कहा—सरयू के लौटने में मुम-किन है, कुछ रात हो जाय भाभी। अगर कुछ देर हो जाय तो चिन्ता न करना। मैं खुद उसे पहुँचा जाऊँगी। घर में कुछ आमोद आह्लाद का भी आयोजन है। लेकिन आप नहीं चल सकीं भाभी, इसका मुझे बड़ा दुःख है।

सीता ने फिर उसे समझाया कि सिर में दर्द होने पर वह बहुत ही व्याकुल हो उठती है, सिर की पीड़ा उससे बरदाश्त नहीं होती। दर्द उठने पर उसे कुछ नहीं सोहाता। ऐसी अवस्था में जाने से औरों का आमोद-आह्लाद मिट्टी में मिल जायगा।

लीला और सरयू एक विद्यालय की छात्रा थीं! दोनों के के घर पास ही पास थे। अभी हाल ही में लीला के पिता की

बदली पुरी को हो गई थी। उनका निवास-स्थान समुद्र तट पर नहीं, शहर के भीतर था। एक दिन समुद्र-स्नान के समय सरयू और बाल्य सखी लीला की अचानक भेंट हो गई। लीला का व्याह हो गया था। उसके पिता सनातनी हिन्दू थे ; लेकिन उन्होंने अपनी लड़की का व्याह बिलकुल बचपन ही में नहीं, उसके सयाने होने पर किया था।

कपड़े-लत्ते पहनकर सरयू लीला के साथ उसके घर गई।

बुआ जी को इधर जूड़ी आने लगी थी। उस दिन उनकी बारी थी। जूड़ी का जोर शुरू हो चला था। वह एक रजाई लपेटे भतीजी के पास आकर पूछने लगी—तू नहीं गई सीता !

सीता ने कहा—सिर में बड़ी पीड़ा हो रही है। बुआजी ! बीमारी लेकर किसी के घर जाना ठीक नहीं होगा। अपने को भी तकलीफ होती है और दूसरों को भी असुविधा हुआ करती है। इसी से नहीं गई। तुम तो जानती ही हो बुआ जी कि सिर-दर्द होने पर मुझसे बैठा तक नहीं जाता, सिर उठाना भी भारू हो जाता है।

अच्छा तो लेटी रहो बेटी, मैं किंवाड़े उँढ़काए जाती हूँ। मुझे भी तो जूड़ी चढ़ रही है।—यों कहकर, किंवाड़े भेड़कर बुआजी भीतर की ओर चल दीं।

तेरहवाँ परिच्छेद

अजी कवीश जी, पाँच बज गए; चलो न, जरा घूम-फिर आवें। संध्या के बाद फिर आकर लिखना शुरू कर देना। इस समय तो अब कविता-सुन्दरी का ध्यान बंद करो भाई!—सुरेश ने रमेंद्र से कहा।

रमेंद्र ने मृदु हास्य के साथ मित्र की ओर एक बार आँख उठाकर देखा। फिर कहा—इसे समाप्त किए बिना तो मैं उठता नहीं भाई! तुम तब तक चलो, रास्ते में मैं भी मिल जाऊँगा। किधर घूमने जाओगे?

सुरेश ने रूमाल से अपनी छड़ी का सिरा साफ करते-करते कहा—जरा शहर के भीतर घूम आने का विचार है। बड़ी सड़क होकर जाऊँगा। वहीं मुझसे भेंट होगी। वहाँ न हो तो सीधे स्टेशन की ओर आना। आज तो सरयू वगैरह न्योते में गई हैं। कोई तुम्हारे साथ घूमनेवाला भी नहीं है।

सुरेश या रमेंद्र दोनों में से कोई नहीं जानता था कि सीता सिर की पीड़ा के मारे घर ही में पड़ी हुई है। उन्होंने सोचा था, लीला के साथ सरयू और सीता दोनों ही गई हैं। लीला जब आई थी, उस समय दोनों मित्र बाहर के कमरे का दरवाजा बंद किए हुए थे, अतएव कौन गया और कौन घर में रहा, यह खबर उनको नहीं थी। लीला की गाड़ी चली जाने के बाद सुरेशचंद्र टहलने जाने को तैयार हुए थे।

कापी से सिर उठाए बिना ही अन्यमनस्क भाव से रमेंद्र ने कहा—अच्छा। और सुरेश घूमने चले गए।

रमेंद्र एकाग्र मन से "मानसी" शीर्षक अपनी कविता को पूरा करने में लगा गया वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति और योग्यता खर्च करके यह कविता लिख रहा था। कविता लंबी थी। नए छंद में ललित पद विन्यास और भाव की माधुरी से वह कविता को सर्वांगसुन्दर बनाने की चेष्टा में लगा हुआ था। दिन का प्रकाश कब बुझ गया और रात का अंधकार कब छा गया, इधर ध्यान देने की उसे फ़ुरसत ही नहीं थी। वह उस समय अपनी मानसी प्रतिमा को पृथ्वी भर के सौन्दर्य से विभूषित करके कल्पना के नेत्रों से उसकी रूप-सुधा पी रहा था। हृदय की भाषा उस विजयिनी मानसी मोहिनी की पूजा में कविता के आकार में काग़ज़ के ऊपर अंकित होती जा रही थी। मुग्ध कवि अपनी रचना पढ़कर आप ही पुलकित हो रहा था—भाव के आवेग से वह अपने सारे शरीर में स्पंदन का अनुभव कर रहा था।

किस स्वप्न-लोक की रानी तुम मूर्तिमती होकर पृथ्वीतल में अवतीर्ण हुई हो? यदि आई ही हो तो शरीर, मन में सर्वत्र तुम्हारे स्पर्श का अनुभव क्यों नहीं होता? तुम्हारी मुग्ध दृष्टि की उज्ज्वल मधुर प्रकाश-रेखा दृष्टि को अनन्त काल के लिए पवित्र क्यों नहीं कर देती? तुम्हारी अलौकिक वर्णनातीत सौन्दर्य की लहरों में अनन्त काल के लिए डूब जाना क्यों नहीं होता? मैं अनादि काल से तुम्हारे ही पीछे घूमता हूँ। रहस्यमयी तुम पास आकर जैसे पकड़ाई देते-देते फिर किस सुदूर राज्य में भाग जाती हो? तुम्हें हाथ में करके भी फिर मैं पकड़ नहीं पाता—तुम पकड़ में नहीं आती हो। हे लीलामयी! इस अपनी विचित्र लीला की भूलभुलइया में मुझे कब तक भटकाती रहोगी? मेरी सहनशीलता धीरे धीरे नष्ट होती जा रही है। अब और इस तरह अनिश्चित की माया में न परेशान करो।—इसी तरह के उच्छ्वास रमेंद्र की कविता में जगह-जगह प्रकट हो रहे थे।

आत्मविस्मृत कवि देश-काल को भूलकर उसी में मग्न हो गया है ।

कविता की अंतिम पंक्ति लिखकर, उसे समाप्त करके, अत्यन्त आनन्द और पुलक के साथ रमेंद्र ने एक बार आदि से अन्त तक उसे पढ़ा और फिर कापी बंद कर दी। वैसे ही सुरेश की याद आ गई। उसने चटपट चादर उठाकर कंधे पर डाल ली और घर से निकलकर बाहर खड़ा हो गया, देखा थोड़ी ही दूर पर सागर है और उसके जल पर संध्या का अन्धकार छा गया है। दिन के प्रकाश की अंतिम रेखा क्षितिज में न जाने कब लीन हो गई थी। ऊपर आँख उठाकर देखा, आकाश में घने बादल छा रहे हैं। हवा बिलकुल बंद है। समुद्र-तट पर कोई मनुष्य नहीं देख पड़ता। शीघ्र ही आने वाली आँधी और वर्षा की आशंका से टहलने के लिए आनेवाले लोग समुद्र-तट छोड़कर अपने निवास-स्थानों को चले गए हैं। जो एक-आध रह गए थे, वे भी तेजी के साथ लौट रहे हैं।

वही तो, अब वह क्या करे ? सुरेश से उसने वादा कर लिया था, वह उसकी राह देखेगा !

"जाऊँ या न जाऊँ" का भाव मन में लिए हुए रमेंद्र धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ सड़क पर आ पहुँचा। बार-बार आकाश की ओर देखकर उसने यही निश्चय किया कि इस समय घर के आश्रय को छोड़कर बाहर निकलना बुद्धिमानी का काम नहीं है। लेकिन घर में अकेले बैठना भी तो कष्टकर होगा। इस समय घर में बैठकर कविता रचने या कोई पुस्तक पढ़ने के लिए उसके मन में उत्साह भी नहीं था।

कुछ दूर समुद्र-तट की ओर आगे बढ़ने के उपरान्त न जाने क्या सोचकर रमेंद्र ने शहर का रास्ता पकड़ा। लेकिन दस-पाँच क़दम आगे बढ़ते ही आँधी का साँय-साँयशब्द उठा। दूर पर

बालुकामय समुद्रतट पर बालू के बवंडर उड़ते देखकर रमेंद्र ने समझ लिया कि अब घर के बाहर रहना ठीक नहीं।

वह तेजी से डेरे की ओर लौट पड़ा। आकाश के बादलों में बिजली कड़क उठी। बार-बार बिजली की चमक होने लगी। रमेंद्र मुश्किल से डेरे के दरवाजे तक पहुँचा होगा कि प्रबल वेग से आँधी सिर पर आ गई।

चटपट बाहर की बैठक के बरामदे में चढ़कर खड़े होते ही नौकर से भेंट हो गई। वह कमरे के भीतर लैंप जलाकर चारों ओर की खिड़की और दरवाज़े बंद कर रहा था।

उसका नाम सनातन था। सनातन ने कहा—आज आपका घूमना नहीं हो सका बाबू जी!

रमेन्द्र—नहीं; कहाँ जा सका।

सना०—आज देखता हूँ, भैया साहब को बड़ा कष्ट होगा।

रमेन्द्र—केवल यही क्या, तुम्हारी दोनों बिटिया रानियों का भी तो घर लौटना मुश्किल है।

सामने का दरवाजा बंद करते हुए सनातन ने कहा—बड़ी बिटिया तो गई ही नहीं है। हाँ, छोटी बिटिया को जरूर तकलीफ़ होगी।

विस्मय के साथ रमेन्द्र ने कहा—सीता निमंत्रण में नहीं गई?

सना०—जी नहीं, उनके सिर में दर्द है। छोटी बिटिया अकेली ही गई हैं।

रमेन्द्र कमरे के भीतर कुर्सी के ऊपर बैठ गया।

चौदहवाँ परिच्छेद

सुरेशचंद्र टहलते-टहलते बहुत दूर निकल गया। जगन्नाथजी के मन्दिर में अनेक बार वह हो आया था। सभी मनुष्यों—सभी जातियों के मिलने की जगह यह पवित्र तीर्थ सुरेश को बहुत अच्छा लगता था। धर्ममत के सम्बन्ध में सुरेश के मन में कुछ भी कट्टरपना नहीं था। वह अंध धर्म-विश्वास का विरोधी था। इसी कारण समाज के अनेक लोगों के साथ उसका मत नहीं मिलता था। जिसकी ओर मनुष्य का मन स्वयं आकृष्ट होता है, जो संपूर्ण पापों से और नीचता से मनुष्यों की रक्षा करता है, उसी को वह धर्म मानता था। अतएव धर्म-विश्वास के लिए किसी से झगड़ने के प्रति सुरेश की तनिक भी सहानुभूति न थी। उसका मत यही था कि जिसे जिसमें सुविधा जान पड़े, वह उसी मार्ग से चले। उसके लिए इस प्रकार बैर-विरोध बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं।

मंदिर की प्रदक्षिणा करके सुरेशचंद्र चौड़ी सड़क पर आया और उत्तर की ओर चलने लगा। रास्ते में बहुत से लोग जा रहे थे। उनमें से अधिकांश के कपड़े-लत्ते फटे-पुराने थे, चेहरा उदास और शरीर दुर्बल था। यही तो भारतवर्ष का यथार्थ रूप है! देश का ऐश्वर्य देशवासियों में ही देख पड़ता है।

हड्डी के ढाँचे भूखे बालक-बालिका आकर सुरेश के सामने हाथ फैलाकर खड़े हो गए, उड़िया भाषा में वे अपने दुःख-दारिद्रय का हाल कहने लगे। सुरेश ने जेब से कुछ पैसे निकालकर उन्हें बाँट दिए। वे कृतज्ञता प्रकट करते और आशीर्वाद देते चले गए।

सुरेश अपने मन में सोचने लगा, यही भारतवर्ष है, यही वह भारत-भूमि है, जिसके सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला होने का हम बखान करते हैं ! यदि सचमुच भारत में जल, फल, अन्न-वस्त्र आदि का अभाव नहीं है तो फिर इस देश के बालकों की ऐसी दशा क्यों है ? ये भूखों क्यों मर रहे हैं ? वह योरप हो आया है, उसने अमेरिका के गाँवों की भी सैर की है, किन्तु वहाँ तो ऐसा घोर दारिद्र्य उसे कहीं नहीं देख पड़ा ! सड़क पर चलते समय ऐसा एक भी आदमी नहीं देख पड़ा, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो उठे, मन प्रफुल्ल हो उठे। वह जो युवक बैल-गाड़ी हाँकता जा रहा है, उसकी अवस्था तो अभी पूरे पचीस साल की भी न हुई होगी ; किन्तु उसके मुख पर जवानी का स्वास्थ्य, उत्साह, आशा या प्रफुल्लता कहाँ है ? एक पचीस बरस के अंग्रेज अथवा अमेरिकन युवक के साथ क्या इसकी तुलना हो सकती है ? ये जो रास्ते में औरतें जा रही हैं, जवान, प्रौढ़ा, बूढ़ी, बालिका, इनमें से किसी के भी मुख पर उत्साह की चमक क्यों नहीं है ? सभी जैसे उत्साहहीन, स्वास्थ्यहीन हैं। युवती के शरीर में जवानी की प्रफुल्लता, सहज सरल चाल नहीं है। सभी जैसे चिन्ता के बोझ से दबी हुई हैं। जिस देश में बहुत सहज में जीविका चलाई जा सकती है, उसमें अधिक आडम्बर या खर्चीलापन नहीं है, उस देश के नर-नारी मृत्यु-मार्ग के यात्री क्यों जान पड़ते हैं ? उन्हें देखकर मन निरानन्द क्यों हो जाता है ?

चिन्ता के मारे सुरेशचंद्र के माथे में बल पड़ गए। वह अन्य-मनस्क भाव से क्रमशः आगे ही बढ़ता गया। क्रमशः मकानों की संख्या कम होने लगी, वह बस्ती के बाहर पहुँच गया।

सहसा किसी के पुकारने से वह रुककर खड़ा हो गया। देखा, एक बाग के फाटक पर एक पुरुष खड़ा है, जिसका सिर

मुड़ा हुआ है और शरीर पर गेरुए कपड़े शोभायमान हैं। देखते ही, पहचानते ही, सुरेश का मुखमण्डल आनन्द के प्रकाश से चमक उठा। वह तेजी से उसी मनुष्य की ओर अग्रसर हुआ। पास पहुँचते ही उसने सन्यासी के चरणों में सिर रख दिया।

सुरेश—आप यहाँ कब आए ?

दोनों हाथों से सुरेश को उठाकर संन्यासी ने प्रसन्न हास्य के साथ कहा—हाँ, यहाँ आए मुझे आज दो दिन हुए। तुम कब आए ?

सुरेश—आज पाँच दिन हुए स्वामी जी !

संन्यासी—चलो, भीतर चलें। तुम्हारे प्रेमानन्द भी हैं।

दोनों जने बाग़ के भीतर दाखिल हुए।

स्वामीजीने कहा—पुरी के राजा ने यह बाग़ हम लोगों को रहने के लिए दिया है। समुद्र के किनारे हम लोगों के रहने का जो स्थान है, वह बहुत छोटा है, इसलिए हम लोग यहाँ आगए हैं।

सुरेश जब बंबई प्रदेश में भ्रमण कर रहा था, उसी समय इन स्वामीजी के साथ पहलेपहल उसकी भेंट हुई थी। स्वामीजी की विद्वता और सतता पर मुग्ध होकर सुरेश उनका शिष्य हो गया। किंतु यह बात उसके किसी भी आत्मीय-स्वजन या बन्धु-बान्धव को मालूम न थी। सुरेशचंद्र को यह बात किसी से कहने का कुछ आग्रह भी नहीं था। इन परम पंडित, तत्त्वदर्शी, महानुभाव स्वामी जी के साथ आलाप-आलोचना होने के बाद सुरेश के जीवन में जो नया अध्याय खुला था, उसका इतिहास इन स्वामी जी के सिवा और कोई भी नहीं जानता था।

गुरु के साथ शिष्य ने बाग़ के अंदर लंबे चौड़े हाल में पहुँच कर वहाँ अनेक ब्रह्मचारियों को देखा। उनमें से तीन-चार ब्रह्मचारी उसके सुपरिचित थे। प्रेमानन्द ने उठकर सुरेश को गले से लगा लिया। सभी हृदयों में एक निर्मल आनन्द का प्रवाह बहने लगा।

अनेक विषयों की आलोचना में उत्साह के साथ लग जाने के कारण सुरेशचन्द्र स्थान, काल, पात्र सब भूल गया। रमेंद्र उसकी खोज में आवेगा, इसका ख्याल ही उसे न रहा। इधर बादल घिरने लगे। उधर देश की अवस्था, राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति की आलोचना में सब डूब गए। इसी बीच में आकाश में जोर से बिजली कड़क उठी। तेजी के साथ आँधी चलने लगी।

तब सब चौंक पड़े। सुरेश को ख्याल आया कि घर लौट कर जाना होगा। किन्तु आँधी इतने जोर से चल रही थी कि कोई आदमी घर के बाहर पैर निकालने का साहस नहीं कर सकता था।

बंगोप सागर में—पुरी से लगभग दो सौ मील दूर पर समुद्र के भीतर जो तूफान कई दिन पहले से ही अपने चिन्ह दिखा रहा था और कलकत्ते के सरकारी दफ्तर से जिस तूफान के आने का समाचार दो दिन पहले ही दैनिक पत्रों में प्रकाशित कराया जा चुका था, वही तूफ़ान आज तुरन्त दानव के समान वेग से समुद्र की सीमा को नाँघकर पुरी के ऊपर अपना प्रकोप दिखा रहा था।

सुरेश की घबराहट समझकर स्वामी जी ने कहा—देख पड़ता है, आज की रात तुमको यहीं बितानी पड़ेगी। इस भयानक तूफान में मैं तुमको बाहर नहीं निकलने दूँगा। जल्दी इसके थमने के लक्षण भी नहीं दिखाई देते।

चिन्तित भाव से सुरेश ने कहा—यही देख पड़ता है।

डेरे पर कौन-कौन है, यह स्वामीजी ने बातों-ही-बातों में जान लिया। सुरेश ने सोचा, इस तूफ़ानी आँधी और पानी में जैसे वह यहाँ अटक गया है, वैसे ही सीता और सरयू भी घर न आ सकेंगी। कारण, शाम होने के साथ ही तूफ़ान शुरू हो गया है

इसलिए वे भी न लौट सकी होंगी। चिंता केवल बुआ और रमेंद्र के लिए है। सो नौकर चाकर सब हैं, रमेंद्र को कोई असुविधा न होगी। हाँ, उसके लिए रमेंद्र और बुआ अवश्य चिन्तित होंगी। उपाय क्या है? मनुष्य के तो वश की बात नहीं है।

आँधी-पानी का प्रचंड शब्द और बिजली की कड़क क्रमशः भयानक रूप धारण करने लगी। रात के ९ बज गए, मगर आँधी-पानी के रुकने का कोई चिह्न दिखाई पड़ने की कौन कहे, उनका वेग और भी अधिक बढ़ने लगा। तब सुरेश को डेरे में लौटने का इरादा बिलकुल ही छोड़ देना पड़ा।

स्वामीजी के निकट बैठकर सुरेश शास्त्र की चर्चा कर रहा था; किन्तु उसमें भी बाधा पड़ने लगी। जोर की आँधी के झटके लगने से खिड़कियाँ और दरवाजे भड़भड़ा रहे थे। आँधी और तूफ़ान के रुकने की कोई संभावना न देखकर रात्रि का भोजन करके सुरेश भी एक कम्मल बिछाकर लेट रहा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

क्यों साहब, रमेंद्र बाबू कहाँ हैं ?

पूजा की छुट्टियों में मेस के अनेक विद्यार्थी अपने घरों को चले गए थे। जो अभी तक नहीं जा सके थे, वे भी आज बाजार से सौदा-सुलुफ़ खरीद लाकर अपने-अपने घर जाने की तैयारी कर रहे थे। इसी समय एक दिन बहुत तड़के एक प्रौढ़ व्यक्ति ने रमेन्द्र के मेस में दाखिल होकर ऊपर लिखा प्रश्न किया।

प्रश्न के उत्तर में एक युवक ने कहा—रमेंद्र बाबू तो यहाँ नहीं हैं।

फिर प्रश्न हुआ—क्यों, कहाँ गए ?

युवक ने कहा—आज उनको गए तो तीन दिन हुए।

उस प्रौढ़ व्यक्ति ने विस्मय के साथ कहा—तीन दिन हुए ! आप बतला सकते हैं, कहाँ गए हैं ?

जो युवक उत्तर दे रहा था, उसने सहसा सिर उठाकर प्रश्न-कर्त्ता को एक बार देख लिया। फिर पूछा—आप कहाँ से आ रहे हैं ?

आनेवाला और कोई नहीं, माधव था। उसे रमेन्द्र की माता ने पुत्र को साथ लिवा लाने के लिए भेजा था।

माधव ने कहा—मैं उनके गाँव का आदमी हूँ। वह कहाँ गए हैं, आप जानते हैं क्या ?

युवक—सो तो नहीं जानता। शायद अपने घर ही गए होंगे। और कहाँ जायँगे ?

माधव विस्मित हुआ। रमेंद्र ने तो पत्र में यही लिखा था कि वह घर नहीं आवेगा। उसके बाद कौन ऐसी बात हो गई कि

उसका मन बदल गया। और अगर तीन दिन पहले वह गया है तो उसे माधव के रवाना होने के पहले ही घर पहुँच जाना चाहिए था। ना, वह घर तो कभी नहीं गया। फिर कहाँ गया? दम भर सोचने के उपरान्त माधव ने पूछा—अच्छा, आप यह बतला सकते हैं कि यहाँ उनका कोई खास जिगरी दोस्त रहता है?

युवक ने कुछ सोचकर कहा—हाँ, इन दिनों वह अपने एक पुराने सहपाठी मित्र के घर बहुत आते-जाते थे।

माधव ने आग्रह के साथ कहा—किस मुहल्ले में? उस मित्र का नाम भी क्या आप जानते हैं?

बकस बन्द करते-करते युवक ने कहा—सुरेश नाम के एक मित्र के यहाँ जाते-आते थे।

सुरेश बाबू?—कौन सुरेश बाबू?—अकस्मात् माधव ने जैसे प्रकाश की एक रेखा देख पाई। उसने कहा—मित्र का पूरा नाम और घर का पता अगर अनुग्रह करके आप बता दें तो बहुत अच्छा हो।

युवक ने कहा—घर का नम्बर तो मैं जानता नहीं। सुकीया स्ट्रीट में कई घरों के बाद ही जो फाटकवाला बड़ा मकान है, वही घर है। एक दिन रमेन बाबू को उसी घर में जाते मैंने देखा था। उनके मित्र का पूरा नाम सुरेशचन्द्र घोष है।

माधव फिर वहाँ नहीं ठहरा, युवक को प्रणाम करके मेस से चल दिया।

सुरेशचन्द्र का नाम उसके लिए सुपरिचित था। इसी युवक की बहन सीता से ब्याह करने के लिए रमेन्द्र एक दिन पागल हो रहा था। सुरेश बाबू को माधव ने कभी नहीं देखा, सीता का भी प्रत्यक्ष परिचय पाने की कभी नौबत नहीं आई। किन्तु एक दिन उसके स्वामी के परिवार के सरल ग्राम्य जीवन में जिस अनर्थ का सूत्रपात हुआ था, उससे संबंध रखनेवाले नर-नारी का नाम-

धाम वह कभी न भूलेगा। रमेन्द्र की मा ने कैसी चातुरी और बुद्धिमानी के साथ उस बार अपने पुत्र का धर्म बचाया था, सो माधव से छिपा नहीं। उस मामले में माधव को भी तो कम हैरानी नहीं उठानी पड़ी थी!

रास्ते में चलते-चलते ये सब बातें माधव को याद आने लगीं। उसकी आँखों का तारा रमेन्द्र जब एम्. ए. में पढ़ता था, उसी समय सीता के असाधारण रूप-लावण्य को देखकर उस पर वह मुग्ध हो गया था। समाज, धर्म और सर्वस्व खोकर भी वह अपनी पसंद की हुई सुन्दरी को पाने के लिए कैसा व्यग्र हो उठा था! किन्तु सीता का बड़ा भाई सुरेश रमेन्द्र के प्रस्ताव करते ही उसके लिए राजी नहीं हुआ। उसने कह दिया कि माता की अनुमति लेकर अगर रमेंद्र ब्याह कर सके तो उसे इस सम्बन्ध में कुछ आपत्ति न होगी। पुत्र का पत्र पाकर माता की जो दशा हुई थी, उसे माधव अभी तक नहीं भूला था। उसके बाद अनेक कौशल करके रमेंद्र को घर लिवा ले जाने में माधव को क्या कुछ कम दौड़ धूप करनी पड़ी थी? मातृभक्त सन्तान ने अन्त को माता के आँसू और मलिन मुख देखकर अपने मन को रास्ते पर लगा लिया और अन्य स्थान में विवाह करना स्वीकार कर लिया।

बायस्कोप के चित्रों की तरह सब घटनाएँ जैसे फिर नए सिरे से माधव की आँखों के आगे नाच गईं। माधव तेजी के साथ सुकीया स्ट्रीट की ओर चला। पूछताछ करके थोड़े ही परिश्रम के बाद वह सुरेशचन्द्र के घर के सामने आ खड़ा हुआ। किन्तु यहाँ भी उसे हताश होना पड़ा। कारण, उसने देखा, घर के सब दर्वाजे और खिड़कियाँ बन्द हैं। फाटक के पास ही दरवान की कोठरी थी। दरवान रसोई चढ़ाई की तैयारी में लगा था।

पूछने पर मालूम हुआ कि रमेंद्र अपने मित्र के साथ पुरी

गया है। साथ में बूढ़ी माई जी और सुरेश की बहन मय अपनी नंद के गई है। सीता का व्याह हो जाने का समाचार माधव को मालूम न था। अतएव उसने समझा, सीता अभी तक क्वाँरी ही है।

यह खबर पाते ही माधव के सिर पर जैसे गाज गिर पड़ी। आईन पढ़ने में विघ्न होने की बात कहकर जो रमेंद्र माता के पास न जा सका, वह इनके साथ पुरी घूमने क्यों गया; इससे क्या उसकी पढ़ाई का हर्ज न होगा। माधव से यह तो छिपा नहीं है कि रमेंद्र अपनी मा को कितना चाहता है, माता पर कितनी भक्ति और श्रद्धा रखता है। फिर उस माता के पास न जाकर इस तरह छिपाकर पुरी भागने का कारण क्या है। इसे भागने के सिवा और क्या कहा जा सकता है। घर में सुन्दर जवान जोरू मौजूद है। उसका आकर्षण क्या कुछ भी नहीं ठहरा? *विद्योपार्जन के लिए तो खैर सब कुछ त्याग किया जा* सकता है, मन मारा जा सकता है, लेकिन पुरी की सैर कोई इतने प्रबल आकर्षण की वस्तु नहीं हो सकती!

माधव किसी प्रकार इस गुत्थी को नहीं सुलझा सका। पुरी जाना कुछ दोष की बात नहीं। किन्तु पढ़ना छोड़कर—खासकर जिस पढ़ने के लिए वह माता और स्त्री से मिलने नहीं गया—वही पढ़ना छोड़कर उसने आनन्द-भ्रमण क्यों करना चाहा? और—ना, और बात वह सोच भी नहीं सकता।

पुरी का पता पूछकर माधव स्टेशन की ओर चल दिया। रात ही को गाड़ी मिल सकती थी, इसलिए माधव ने पास ही के एक होटल में जाकर स्नान-भोजन कर लिया। उसके बाद रात की गाड़ी से गांव को रवाना हुआ।

मा जब देखेंगी कि माधव अकेला ही लौट आया है, तब उन्हें कितना दुःख होगा! मा ने कह दिया था कि माधव, रमेंद्र

को लेकर ही आना। अब वह कौन मुँह लकर उनके सामने खड़ा होगा। अवश्य ही वह सीधा पुरी को जा सकता था। किन्तु आज पंचमी है, कल छठ। मा से वह कह आया था कि छठ की शाम को वह रमेन के साथ घर आ जायगा। पुरी जाकर वहाँ से रमेंद्र को घर ले जाने में पूजा का अवसर निकल जायगा। कोई खबर दिये बिना अगर वह सीधा पुरी चला जाता तो रमेंद्र की मा ठीक समय उसे न लौटते देखकर और भी अधिक व्याकुल और चिन्तित हो उठेंगी। और अगर वह यहाँ से पत्र या तार भेजकर यह सूचना दे दे कि मैं रमेंद्र को पुरी लेने जा रहा हूँ तो भी ठीक नहीं, एक अनिर्दिष्ट आशंका से मा और शायद बहू का भी बुरा हाल हो जायगा। यह सब सोच-विचार कर माधव ने पहले रमेन की मा के पास जाने का ही निश्चय किया। वहाँ जो कुछ सलाह ठहरेगी, सो किया जायगा।

माधव छठ की रात को जब बहुत ही उदास भाव से आकर रमेन की मा के सामने अकेला खड़ा हुआ, उस समय उसका शरीर जैसे काँप रहा था। उसे अकेले देखकर रमेंद्र की मा को बड़ा विस्मय हुआ। उनके चेहरे पर जैसे एक आतंक का आर्त-नाद मूर्तिमान होकर झलकने लगा।

कौशल से माता को निराले में ले जाकर माधव ने सारा हाल कह सुनाया। सब सुनकर कुछ देर तक तो वह पत्थर की मूर्ति बन गई। हृदय के भीतर जैसे एक संदेह की आँधी उठ खड़ी हुई। किन्तु उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और धैर्य भी असाधारण था, इसलिए उन्होंने उस सन्देह का आभास भी मुख के ऊपर प्रकट नहीं होने दिया। वहाँ से उठकर घर के भीतर अपने काम में लग गईं। उनका मुख देखकर कोई कुछ अनुमान नहीं कर सका।

सबका खाना-पीना समाप्त हो जाने पर बहू को अपनी

छाती से लगाकर कोमल और मधुर स्वर में उन्होंने पूछा—बेटी, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। उसका ठीक-ठीक जवाब देना। शरमाना नहीं।

सास के कलेजे की धड़कन बहू को स्पष्ट सुनाई दे रही थी। विस्मय-पूर्ण दृष्टि से सन्ध्या ने आँख उठा कर सास के उद्वेग-व्याकुल नयनों की ओर देखा और फिर कहा—क्या पूछती हो माँ?

सास ने कहा—रमेन तुमको चिट्ठी लिखता है? सच कहना बेटी! तुमको मैं अपनी बेटी के समान समझती हूँ, शरमाना नहीं। माँ के आगे बेटी को शरमाने की जरूरत नहीं।

किन्तु तो भी लज्जा की लाली सन्ध्या के मुखमण्डल में दौड़ आई। धीरे-धीरे उसका सिर झुक गया। माँ भी अच्छा प्रश्न करती हैं! छिः, कैसी लज्जा की बात है!

स्नेह और आग्रह के साथ बहू का मुख दोनों हाथों से ऊपर उठाकर सास ने कहा—इसमें लजाने की क्या बात है बहू? सच बात कह दो, रमेन तुमको कभी चिट्ठी लिखता है या नहीं?

उत्तर न देने से माँ को दुख होगा। वह मुझे अवाध्य समझेंगी। और इसका उत्तर देना भी सहज नहीं है। सन्ध्या बड़े असमंजस में पड़ गई। उसका हृदय जोर से धड़कने लगा। कैसी लज्जा की बात है! लज्जा ने जैसे उसकी ज़बान पकड़ ली।

सास के तिबारा पूछने पर संध्या चुप न रह सकी, उसे बोलना ही पड़ा। अस्फुट अस्पष्ट स्वर में उसने कहा—ना!

सास ने आश्चर्य के साथ पूछा—इतने दिनों में एक भी पत्र नहीं लिखा? अच्छा, तुमने कोई पत्र कभी लिखा था?

सिर हिलाकर संध्या ने किसी तरह यह बतलाया कि हाँ, उसने पत्र लिखा था।

रमेन्द्र ने उत्तर नहीं दिया? नीची नजर, मलिन-मुख के

ऊपर लज्जानम्र संकोच की छाप—स्त्री के लिए स्त्री के मनका भाव समझने को इतना ही क्या यथेष्ट नहीं था ?

तो भी गृहिणी ने दीपक के प्रकाश में बहू के शान्त, मधुर, सुन्दर मुख को ऊपर उठाया। सन्ध्या के लज्जा से काँप रहे नयन-पल्लव मुँद गए। होठों में कुछ मलिन हँसी थी। गहरे स्नेह और सहानुभूति के साथ सास ने बहू को छाती से लगा लिया। उस मुख पर शायद बहुत कुछ अलिखित इतिहास अंकित हो रहा था।

दूसरे दिन सबेरे ही माधव को बुलाकर रमेन्द्र की माँ ने कहा—मैंने पूजा की मनौती कर रक्खी है। हम लोग पुरी जायँगी। जल्दी प्रबन्ध करो।

माधव बुद्धिमान् था। मालकिन का इशारा समझने में उसे देर नहीं लगी। उसने कहा—कब चलोगी माँ ?

माँ ने कहा—आज ही। यहाँ हमारे यहाँ, पूजा तो होगी ही नहीं। कोई काम भी जरूरी नहीं यहाँ है। मैं, राधारानी और बहू, सब जनी चलेंगी।

माधव ने कहा—बहुत अच्छा।

वह यात्रा की तैयारी करने में लग गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

उस दिन रात का वह तूफ़ान जैसे मृत्यु का दूत होकर ही आया था। ऐसी भयानक आँधी और वर्षा रमेन्द्र ने और कभी नहीं देखी थी। हर घड़ी यही जान पड़ता था कि एक विराट्काय दैत्य अपने हजार हाथों से मकानों की खिड़कियाँ और दर्वाजे तोड़कर, चूर-चूर करके उड़ा ले जायगा। सन्ध्या के समय आँधी की अवस्था देखकर घर के सभी लोगों ने जल्दी ही खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया था। और दिनों की तरह सीता आज रमेंद्र के भोजन के समय उसके सामने उपस्थित नहीं रह सकी। यद्यपि उसके सिर का दर्द बहुत कुछ कम हो गया था, तो भी एक तरह की शिथिलता बनी हुई थी, इसीलिए वह उस समय भी पलँग पर पड़ी ही रही।

सन्ध्या के समय से ही बुआ की जूड़ी ने जोर पकड़ लिया था। इतनी आँधी चली, ऐसा तूफ़ान आया, पर उन्हें उसकी कुछ खबर नहीं हुई। बीच-बीच में उन्हें इसी तरह का बुखार चढ़ आता था। किंतु वह एक दिन से अधिक नहीं ठहरता था। सात-आठ घण्टे बेहोश रहने के बाद बुखार उतर जाता था। पुरानी दासी सैरभी बुआ के पास रहती थी। आज भी वह उनके पलँग के पास बैठी थी।

थोड़ा-सा खा-पी कर सीता एक बार बुआ की खबर लेने गई। उनके ज्वर के लिए किसी को विशेष चिंता नहीं रहती थी। कारण, सभी को उनके ज्वर की प्रकृति मालूम थी कि वह ७-८ घण्टे के बाद आपही उतर जाया करता है। दमभर बुआ के पलँग पर बैठे रहने के बाद सैरभी को बुआजी के संबंध में सतर्क रहने

का उपदेश देकर सीता शिथिल शरीर से अपनी सोने की कोठरी में लौट आई। उसके सिर का दर्द बिलकुल जाता रहा था। किंतु शिथिल शरीर में नींद भी नहीं आ रही थी।

उसने छोटे टेबिल के किनारे छोटी कुर्सी खींच ली और उस पर बैठ गई। खिड़कियाँ और दरवाजे सब बंद थे। आँधी का वेग और शब्द क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। आँधी के झकोरे और पानी के झोंके रह-रह कर प्रचंड वेग से किवाड़ों से टकरा रहे थे।

नींद की इच्छा रत्ती भर न थी। विप्लवमयी रजनी के साथ उसके हृदय की हलचल का कोई संबंध है कि नहीं, यही बैठे-बैठे क्या वह सोच रही थी?

रात्रि के समय सरयू के घर लौटने की अब कोई संभावना न थी। ऐसे दुर्योग में लीला कभी उसे नहीं छोड़ेगी? कौन छोड़ सकता है? और दादा? वह भी क्या कहीं अटक गए? शायद उन्होंने भी कहीं आश्रय ग्रहण किया होगा। इस रात को घर लौट आना उनके लिए भी सर्वथा असंभव है। अगर आँधी का वेग कम हो जाय, तो शायद वह लौट भी आवें। भाई के लिए घबराई हुई सीता ने उठकर बाहर की एक खिड़की खोल दी और प्रकृति की अवस्था देखने की चेष्टा की। खुली खिड़की की राह प्रचण्ड वायु का झोंका इतने वेग से भीतर आया कि सीता ने फौरन फुर्ती से खिड़की बंद कर दी। पल भर के दृष्टि-पात में उसने आकाश की जो अवस्था देख पाई, उससे उसे मालूम हो गया कि जल्दी इस दुर्योग का अन्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। चिंतित भाव से वह कुर्सी पर बैठ गई।

टेबिल के ऊपर दाहिना हाथ रखकर वह जैसे कुछ सोचने लगी। प्रलय का संदेश लेकर ही आज जैसे यह आँधी-पानी का तूफ़ान आया है। कैसा उद्दाम इसका वेग है, कैसा दुर्दमनीय

इसका प्रभाव है! मनुष्य के मन के साथ क्या इसकी तुलना की जा सकती है? क्षुद्र हृदय के भीतर भी समय-समय पर जो अनेक भावों का तूफ़ान आया करता है, वह भी तो ऐसा ही प्रचण्ड, ऐसा ही प्रलय का अग्रदूत होता है!

सोचते-सोचते उसका चित्त प्रवासी स्वामी की ओर दौड़ा गया। इस आँधी-पानी के समय वह क्या कर रहे होंगे। पुरी के आकाश में जो जल और बिजली से भरे बादल देख पड़ते हैं, वे क्या प्रयाग के आकाश में दल के दल न पहुंचे होंगे। यह उन्मत्त वायु क्या वहाँ यह क्षुब्ध श्वाँस नहीं छोड़ रही होगी। बंगोपसागर के अकूल जलधि-गर्भ से उठा हुआ जो सहस्र शीर्षा दानव भयानक हुँकार के से दिग्वलय को कँपाकर, आकाश की नीलिमा को ढककर दौड़ा चला आ रहा है, उसकी करालमूर्ति क्या सुदूर प्रयाग के ऊपर अपनी छाया न फैला रही होगी? यदि वहाँ भी ऐसी ही दुर्योग की दारुण रात्रि दिखाई दी होगी, तो इस समय उसके स्वामी क्या कर रहे होंगे? विज्ञान के गंभीर तत्त्व की आलोचना में क्या यह तूफ़ान की गरज बाधा न डाल रही होगी। स्वामी के स्वभाव का जितना कुछ परिचय उसने पाया है, उससे वह अच्छी तरह जानती है कि पृथ्वी का कोई भी विप्लव उनके चित्त की तन्मयता को विचलित नहीं कर सकेगा। विज्ञान की आलोचना में उन्हें जितना आनन्द मिलता है, उतना और किसी में नहीं। जब वह किसी तथ्य के आविष्कार में डूबे रहते हैं, तब चाहे यह विश्व-ब्रह्माण्ड उलट-पलट भी जाय तो उन्हें उसकी खबर नहीं हो सकती। उसके विवाहित जीवन के ये चार वर्ष तो इसी तरह कटे हैं। उसे वह प्यार अवश्य करते हैं, किन्तु वह प्यार यथेष्ट रूप से प्रकट करने का अवकाश उन्हें कहाँ है? यौवन की उद्दाम विलास-लालसा इस शान्त प्रकृति, संयत-चरित्र, ऋषि तुल्य साधना में निरत वैज्ञानिक की

सहिष्णुता को रत्ती भर भी डिगा नहीं सकती। इसके लिए सीता उन्हें बहुत ही श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। वह परम सुन्दर युवक हैं और वह भी नवीना सुन्दरी है। इस अवस्था में अबाध-रूप से प्रेम-चर्चा में अगर वे दोनों लगे रहें तो कोई उन्हें दोष नहीं दे सकता। किन्तु साधनानिरत वैज्ञानिक उसके स्वामी इस विषय में बिलकुल उदासीन हैं। मन-ही-मन सीता क्या इसके लिए स्वामी के गर्व से गौरव का अनुभव नहीं करती।

चिन्ता की धारा एक सूत्र के बाद दूसरे सूत्र को पकड़कर कहाँ से कहाँ जा पहुंचती है, इसका कोई सिलसिलेवार इतिहास अब तक मानव-मनोवृत्ति के शास्त्र में भी नहीं लिखा जा सका। सीता की चिन्ता का सूत्र उसी तरह सूक्ष्म जाल बुनते-बुनते जवानी से किशोरावस्था में, किशोरावस्था से बाल्यावस्था में, और फिर घूम-फिरकर बाल्यावस्था से जवानी की अतीत स्मृति में, कहाँ से कहाँ किस तरह जाने लगा, यह स्वयं सीता भी समझने में असमर्थ थी।

आकाश में कभी तीव्र और कभी अपेक्षाकृत धीमे शब्द से बिजली कड़क जाती थी। खिड़कियों और दरवाजों की दराजों से बिजली की चमक बीच-बीच में कमरे के भीतर दिखाई पड़ जाती थी। सीता ने आँख उठाकर देखा, टेबिल के ऊपर रक्खी हुई टाइमपीस घड़ी में ११ बज गये हैं। आंधी का वेग उस समय भी वैसा ही था, बल्कि कुछ बढ़ ही रहा था। अब सीता को सुरेश के लौटने की बिलकुल आशा नहीं रही। उन पर कोई विपत्ति तो नहीं आई। इस बात को सोचने में भी उसका हृदय जैसे कोई जोर से मसलने लगा।

कुर्सी छोड़ कर सीता उस कमरे में इधर-उधर टहलने लगी। नां, उसका भाई मूर्ख नहीं है। आँधी पानी आने के पहले ही उन्होंने अवश्य ही किसी गृहस्थ के घर में आश्रय लिया होगा।

उसके हृदय के भीतर किसी ने जैसे कह दिया कि सुरेश के लिए कोई चिन्ता नहीं है।

अपेक्षाकृत निश्चिन्त मन से सीता पलंग पर जा बैठी। उस समय भी सोने को जी नहीं चाहता था। उसने टेबिल की दराज खोलकर उससे एक पुस्तक निकाली। दो चार लाइन पढ़ने के बाद ही उसने किताब बन्द करके रख दी। एक कागज लेकर चिट्ठी लिखने बैठ गई। दो चार लाइन लिखने के बाद न जाने क्या सोचकर उसने उस चिट्ठी को भी फाड़ डाला। वह लिखना चाहती थी, पर कलम आगे बढ़ना ही जैसे न चाहती थी। मन के भीतर जो विश्रृंखल अस्त व्यस्त रूप से भावों का ढेर लग गया था, वह सब जैसे एक साथ कलम से निकलना चाहता था। किन्तु भाषा ऐसा करने में असमर्थ हो रही थी।

हताश भाव से दाहिनी हथेली में सिर रखकर सीता फिर सोचने लगी।

सत्रहवाँ परिच्छेद

और रमेंद्र ? उस विप्लवमयी रात्रि में अकेले सुनसान कमरे में बैठा हुआ रमेंद्र क्या कर रहा था ? भोजन करने के बाद आज वह कुछ गम्भीर भाव से ही सोने के कमरे में लौटा था। वह उस समय क्या यह सोच रहा था ? कि अगर इस आंधी के साथ हृदय को उड़ा दिया जाय, इस बल-विद्युत्कंपित प्रकृति की गोद में अपने शरीर को सौंप दिया जाय तो कैसा हो ! समुद्र की लहरों में क्या आज मृत्यु बड़े आनन्द से ताण्डव नृत्य नहीं कर रही है। मृत्यु की मूर्ति कैसी है। उसका रूप कैसा है। ऐसे ही भैरव गर्जन के साथ क्या वह प्रकट हुआ करती है। देह पर कब्जा करने के पहले क्या वह मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा करती है। दर्शन शास्त्र ने इस सम्बन्ध में क्या अभ्रान्त सत्य बतलाता है।

किन्तु अकस्मात रमेंद्र को अत्यन्त विस्मय मालूम हुआ। मृत्यु का खयाल आज अतर्कित भाव से इस प्रकार उसके मनमें क्यों उठा ? जब मनुष्य के मन में सुख या सुख की लालसा परिपूर्ण भाव से राजत्व करती है, तब क्या मृत्यु की दुःखमयी चिन्ता उसके हृदय में रत्ती भर भी अपना प्रभाव डाल सकती है ? तो क्या उसकी आज यह चरम अवस्था उपस्थित है ? यह परिपूर्ण यौवन सुस्थ और सबल शरीर, कल्पनापूर्ण हृदय, यश और कृतित्व पाने की दुर्दमनीय आकांक्षा, इन सबके मौजूद रहते भी उसके हृदय में मृत्यु का ख्याल क्यों जाग उठा ?

क्यों, इसका उत्तर तो कुछ भी रमेंद्र को न सूझ पड़ा। वह फिर सोचने लगा। उसके तो सभी कुछ है, फिर उसे यह शून्यता

क्यों जान पड़ती है ? खरा सोना, हीरा, मोती, किसी चीज का अभाव नहीं है। केवल कारीगर के निपुण हाथों ने उस सोने को अलंकार के रूप में ढाला नहीं है ? उसका कौन है ? उसका घर कहाँ है ?

रमेंद्र ने आँखें मूँदकर अपने अन्तःकरण में देखना शुरू किया। लेकिन कहाँ, वहाँ कुछ भी तो नहीं दिखलाई पड़ता।

अतीत जीवन की घटनाएँ आज नए सिरे से याद आने लगीं। आँखें मूँदकर रमेंद्र जीवन के इतिहास के अतीत अध्यायों को जैसे खोलकर पढ़ने लगा। साध, आशा, वासना के कितने ही रक्त के लेख उसके पृष्ठों में भरे पड़े हैं।

कमरे के भीतर गहरा अन्धकार था। रमेंद्र ने लैंप बुझा दिया था। अन्धकार में सोचने का एक मोह और उन्मादना होती है। चिन्ता की रेखा मुख पर प्रतिफलित होने पर उसे औरों की नजर से छिपा रखने की सुविधा होती है, इसीलिए नहीं, बल्कि अन्धकार में चिन्ता अधिक गम्भीर होती है। एकाग्र भाव से चिन्ता के विषय की धारणा करने की—उपभोग करने की सुविधा उसमें यथेष्ट हुआ करती है। लोक-चक्षु से बचने की अपेक्षा आत्मवंचना करने की चेष्टा जो अधिक करते हैं, उनके लिए अन्धकार का आश्रय क्या अधिकतर लोभनीय नहीं है।

बाहर का विप्लव घर के भीतर जैसे और भी घना हो उठा और उसने रमेंद्र की अनुभूति को और भी प्रचंड कर दिया। पलंग पर लेट कर वह अर्थहीन अनेक चिन्ताओं के गोरखधन्धे में अपने मन को घुमाने लगा। नींद आज किसी तरह उसकी आँखों में आती ही न थी।

अन्त को रमेंद्र पलंग के ऊपर उठ बैठा। खिड़कियों और दरवाजों की दराजों से होकर आँधी की टकराती हुई लहरें कभी-कभी घर के भीतर घुस आती थीं। सहसा अन्धकार को

चीरकर कमरे के भीतर प्रकाश की किरणों का आविर्भाव देखकर वह चौंक उठा। गौर करके उसने देखा, सुरेशचन्द्र की खाट जिधर पड़ी हुई थी, उधर का दरवाजा कुछ खुला हुआ है। उसी के भीतर से पास के कमरे की रोशनी उसके कमरे में आ रही है।

सीता वग़ैरह के कमरे और इस कमरे के बीच का दरवाजा तो अब तक बन्द ही रहता था। आज वह खुल कैसे गया। जान पड़ता है, किसी समय नौकर ने कमरा साफ करने के समय जंजीर खोली होगी, बाद को शायद उसे बन्द करना वह भूल गया। इस समय हवा के झोंके से किंवाड़े कुछ खुल गये।

चुपचाप उठकर रमेंद्र वह दरवाजा बन्द करने के लिए गया। किन्तु दरवाज़े के पास आकर ही सहसा स्तब्ध भाव से वह खड़ा हो गया। उसने देखा, लैंप के पास दाहिनी हथेली में सिर रखकर सीता बैठी हुई है। उसके सिर के भ्रमर-कृष्ण केश खुले और बिखरे हुये हैं, पीठ पर छिटके पड़े हैं। मुख का कुछ हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। रमेंद्र समझ गया, सुन्दरी सीता किसी गहरी चिन्ता में डूबी हुई है।

कुछ खुला हुआ द्वार खुला ही रह गया। रमेंद्र एकटक उस ख्याल में डूबी हुई रमणी की ओर ताकता खड़ा रह गया। काम भले आदमियों का नहीं है अत्यंत अनुचित है, यह बात रमेंद्र के संस्कार ने उसे बतला दी; किन्तु तो भी वह अपने को सँभाल नहीं सका। उस रूप की अग्नि के प्रकाश की ओर वह जैसे मंत्रमुग्ध पतंग की तरह आकृष्ट होने लगा। उसकी छाती के भीतर भयानक रुद्रताल से रक्त दौड़ने लगा। रमेंद्र स्थान और समय को भूल गया। अपने को भूल गया। जिस सौंदर्यमयी नारी की मानसी प्रतिमा के रूप में कल्पना करके उसने कविता बनाना शुरू किया है, जिसकी याद उसके गोपन अन्तःपुर में सदा जागती रहती है, जिसके विषय में सोचने से भी मन

आनन्द से खिल उठता है, उसी सुन्दरी को ऐसे विप्लव और दुर्योग की रात में निकट ही अकेली बैठे देख पाकर उसका चित्त जैसे पंख फैलाकर उसी की ओर दौड़ पड़ा।

अजगर की मुग्ध दृष्टि के सामने उधर खिंच रहा जीव जैसे इच्छा रहने पर भी वहाँ से भागने में असमर्थ होता है, रमेन्द्र की दशा भी ठीक वही हो गई। चुम्बक पत्थर का पहाड़ जैसे लोहे को अपनी ओर खींचता है, सीता की निश्चल मूर्ति ठीक उसी तरह रमेन्द्र को खींचने लगी। अज्ञात रूप से पग-पग करके रमेन्द्र सीता की ओर अग्रसर होने लगा, और इसका उसे होश ही नहीं था। स्वप्नाविष्ट की तरह वह धीरे-धीरे उसी ओर जाने लगा।

आँधी का गर्जन, बिजली की कड़क, कुछ भी उस समय रमेन्द्र को सुनाई नहीं पड़ रहा था। उसकी दृष्टि के सामने केवल सीता की मूर्ति थी। मतवाले की तरह लड़खड़ाता हुआ वह सीता के पास जाकर उपस्थित हुआ। सीता उस समय एकाग्र मन से कुछ सोच रही थी। उसे रमेन्द्र का आना बिलकुल नहीं मालूम पड़ा।

कई सेकेंडों तक उस निश्चल सौन्दर्य प्रतिमा की ओर ताकते रहने से रमेन्द्र के मस्तिष्क का सारा रूप जैसे उत्तेजना से चंचल हो उठा। एक प्रचण्ड नशे की अधिकता से उसका सारा शरीर थर-थर करके काँप उठा। संयम का बाँध अब तक जिस विपुल बढ़िया के वेग को रोक रहा था, सहसा उसने उस बाँध को तोड़ डाला।

मूढ़ की भाँति रमेन्द्र ने सहसा सीता के शिथिल बाँए हाथ को अपने जलते हुए गरम दाहिने हाथ में जोर से पकड़ लिया। वैसे ही उसके सारे शरीर में जैसे एक असह्य बिजली का प्रवाह दौड़ गया। उसकी सब इन्द्रियों की हरकतें जैसे घड़ी भर के लिए रुक गईं -- जैसे एक उल्कापिण्ड पल भर में उसके वक्षःस्थल को मथकर मस्तिष्क से टकरा गया।

उस आकस्मिक स्पर्श से सीता का भी ध्यान उचट गया। उसने विस्मय के साथ आँख उठाकर देखा तो रमेन्द्र को इस दशा में देख कर उसकी जीभ भी जैसे तालू से सट गई। उस स्पर्श के ऐंद्रजालिक प्रभाव ने क्या कुछ देर के लिए उसे भी अभिभूत कर दिया था।

रमेन्द्र उस समय उन्मत्त की तरह अनर्गल भाव से जो कुछ मुँह में आया सो बकने लगा। ज्वालामुखी पर्वत के मुख को फोड़ कर उत्तप्त अग्नि धारा जैसे प्रचण्ड भाव से चारों ओर बरसने लगी। रमेन्द्र के मुख से इतने दिनों से रुँधे हुए भावों का प्रवाह उसी तरह वेग से अपने को प्रकट करने लगा। वह कैसी वासना की उत्कट अग्नि-वर्षा थी। सिर झुकाए स्तब्धभाव से सीता बैठी रही।

रमेन्द्र का वक्तव्य समाप्त हुआ। ठीक उसी घड़ी अपने प्रचंड शब्द से दिशाओं को विदीर्ण करती हुई बिजली कहीं पास ही गरज उठी।

दुःस्वप्न-पूर्ण नींद के उचटने पर मनुष्य जैसे भय से चौंक पड़ता है, सीता भी सहसा वैसे ही उठ खड़ी हुई। जोर से झिटका मारकर उसने रमेन्द्र की काँपती हुई मुट्ठी से अपना हाथ छुड़ा लिया। उसके बाद स्थिर दृष्टि से रमेन्द्र की ओर ताक कर दृढ़ अकंपित स्वर में उसने कहा—आप—रमेन्द्र बाबू आप? छी!

सीता की भौंहें टेढ़ी हो गईं; किंतु स्वर में तनिक भी उत्तेजना नहीं थी। रमेन्द्र विह्वल भाव से उस आत्मस्थ (सँभली हुई) रमणी की ओर देखकर दो पग पीछे हट गया। उसका कंठ जैसे रुँध गया।

रानी की तरह सिर उठाए खड़ी हुई सीता दृढ़ स्वर में कहने लगी—आपके ऊपर मुझे यथेष्ट विश्वास था। वही आप ऐसे निकले? छीः!

इस संक्षिप्त धिक्कार ने रमेंद्र के सिर पर जैसे वज्र गिरा दिया। वह संकोच से जैसे मर गया। उसने समझा कि वह बहुत ही गहरे गढ़े के मुँह पर खड़ा है! उसने बड़ा भयानक अपराध किया है, जो क्षमा ही नहीं किया जा सकता। वह भले आदमी का लड़का है। उसने सुशिक्षा भी पाई है। उसने पराई स्त्री के सोने के कमरे में चोर की तरह घुसकर उसका हाथ पकड़ा— निन्दनीय बातें मुँह से निकालीं। यही क्या प्रेम है? या यह जघन्य लालसा है, कुत्सित कामना की अभिव्यक्ति है?

रमेंद्र से अधिक सहा नहीं गया। मतवाले की तरह अस्तव्यस्त पैर रखता हुआ, विवर्ण मुख से यथासंभव जल्दी ही वह उस कमरे में चला आया।

भागो रमेंद्र, भागो। नारी की मर्यादा को जो पापिष्ठ वाणी से भी अपवित्र करना चाहता है, मनुष्य-समाज में उसके लिए स्थान नहीं रह सकता। जहाँ मनुष्य है, जहाँ नारी स्वामी और पुत्र के साथ रहती है, अथवा स्वामी की पवित्र भक्ति को हृदय में धारण करके जीवन बिताती है, वहाँ तुम जैसे अभागे की परछाहीं भी न पड़े।

अठारहवाँ परिच्छेद

पिष्ट अभिशप्त जीव की तरह अवसन्न भाव से रमेंद्र ने बाहर के कमरे में जाकर दरवाजा बंद कर लिया। उसके बाद निर्जीव भाव से पलँग के ऊपर पड़ रहा। बाहर उस समय भी आँधी वैसी ही चल रही थी। किन्तु बाहर का विभव या हलचल रमेंद्र के मन के किसी अंश को भी स्पर्श नहीं कर सकी। उसके हृदय में उस समय बड़े जोर से गरजती हुई प्रलय की आँधी चल रही थी, उसके आगे प्रकृति का विप्लव अत्यन्त तुच्छ था।

इतने दिनों वह जैसे हिमालय के ऊँचे शिखर के ऊपर ऊँची चोटी पर बैठा हुआ था। आज पल ही भर में वह कैसे पाताल-सदृश अन्धकारमय गढ़े में जा गिरा! इतने दिनों की शिक्षा, ज्ञान, कुलीनता का गर्व, शालीनता, यह सभी क्या घड़ी भर की दुर्बलता से चूर्ण होकर अणु-परमाणु रूप से मिट्टी में नहीं मिल गया? वह कवि है? यही जघन्य मनोवृत्ति क्या उसके हृदय में दिन-दिन पुष्ट होती रही है? उसने दूसरे की धर्मपत्नी के आगे जो भाव प्रकट किया है, उसके प्रायश्चित्त का विधान क्या किसी धर्मशास्त्र में पाया जा सकता है? वह स्वयं विवाहित है, उसकी स्त्री मौजूद है। किन्तु वह ऐसा पापिष्ठ है कि ये सब बातें भूल-कर, पवित्र दाम्पत्य जीवन के कर्तव्य को विस्मृत होकर, दूसरे के दाम्पत्य जीवन को बिगाड़ना चाहता था! इतने बड़े अपराध का प्रायश्चित्त क्या है? सुरेश उसका मित्र है, सीता उसकी बहन है। जिस सीता को वह हृदय से प्यार करता था, और उसे विधि-पूर्वक अपने जीवन की संगिनी बनाने को भी उद्यत हुआ था।

उसी सीता को आज वह कहाँ, कितना नीचे गिराने गया था ? भीतर के गोपनतम मंदिर में मानसी प्रतिमा के रूप से जिसे स्थापित करके वह अब तक स्नेह, प्रेम और श्रद्धा का अर्घ्य देता आया है, आज उसे कैसे निर्मम भाव से अपवित्र करने को वह उद्यत हुआ था ! ना, ऐसे महापाप का प्रायश्चित्त नहीं है ! सुरेशचन्द्र को जब इसकी खबर होगी तो वह क्या ख़याल करेगा ? कल सबेरे वह अपना मुँह कैसे दिखावेगा ?

सहसा रमेंद्र चौंक उठा। कोई नहीं जान सका, यह ठीक है; किन्तु उसके इस अपवित्र व्यवहार की कथा इस अनन्त विश्व में क्या नहीं लिखी गई ? किसी कार्य को कौन कहे, किसी विचार को भी छिपा रखने की शक्ति क्या किसी में है ? मनुष्य-समाज भले ही न जान पाया हो, लेकिन ईथर में, आकाश में, चिरकाल के लिए मुद्रित होकर उसकी यह काली करतूत क्या लोक-लोकान्तर में सचल पदार्थ की तरह संचालित न होगी ?

रमेंद्र के सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। उसने जो कुछ कर डाला, उसे मिटा डालने का कोई उपाय नहीं है—नहीं है ! कैसा दुर्भाग्य ! प्रवृत्ति ने—हीन, कलुषित मनोवृत्ति ने उसे किस कीचड़ से भरे गढ़े में गिरा दिया ! मनुष्यत्व का स्वर्णचूड़ा युक्त महल पल भर की दुर्बलता से धूल में मिल गया ! यह मुख सबको वह कैसे दिखावेगा ?

मानसिक यन्त्रणा और उत्तेजना की अधिकता से रमेंद्र उठ बैठा। काँपते हुए हाथों से लैम्प जलाकर उसने चटपट एक काग़ज निकाला। उसके बाद उसमें लिखा—

"सुरेश, मेरा मन घर जाने के लिए एकाएक अत्यंत उत्कंठित हो उठा है। तुम्हारे लौटकर आने तक अपेक्षा नहीं कर सका। सबेरे जो गाड़ी छूटेगी, उसी में जा रहा हूँ। मेरे इस अप्रत्याशित परू से चले जाने के लिए अगर हो सके तो क्षमा करना। ट्रंक

बिछौना वगैरह यहीं छोड़े जाता हूँ। कारण इस दुर्योग में कोई कुली मिल नहीं सकता। हो सके तो यह सब मेरे मेस में भेज देना। सब लोग सो रहे हैं, इसलिए किसी से मिलकर, कहकर जाना नहीं हो सका। हो सके तो मुझे क्षमा करना। --इति रमेंद्र।"

"स्नेहाभिलाषी" लिखने में कलम रुक गई। उसका सारा अन्तःकरण जैसे विद्रोही होकर कहने लगा—"खबरदार, मित्रता का अभिनय अब नहीं सोहता।" सच है, मित्रता का जो परिचय उसने दिया, वह इतिहास में चिरस्मरणीय होने के योग्य है।

लिखे हुए पत्र को टेबिल के ऊपर दबाकर रमेंद्र ने अपना ग्लाडस्टोन बेग खोला। दो-एक कुर्ते और कविता की कापी उसके भीतर रख ली रमेंद्र ने अपना मनीबेग देखा। उसमें तीन सौ-सौ रुपये के और कुछ दस-दस रुपये के नोटों के अलावा कुछ फुटकर रुपये भी थे।

कोट पहनकर रमेंद्र ने घड़ी की ओर देखा—पाँच बजकर दस मिनट हुए थे। खिड़की खोलकर देखा, आँधी का वेग बहुत कम हो गया था, पानी गिरना भी बंद हो चला था। बेग हाथ में लेकर दरवाजा खोलकर चुपचाप वह बाहर निकल आया।

समुद्र की क्षुब्ध मूर्ति ने सहसा उसकी दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट किया। उद्दाम, उत्ताल तरंगें प्रचंड शब्द के साथ तट-भूमि से टकरा रही थीं। उषा का प्रथम प्रकाश रेखा-मेघ-मण्डित आकाश में अपने को प्रकट कर रही थी। उस अस्पष्ट प्रकाश में समुद्र के काले वक्षःस्थल के बीच, फेनिल लहरों की शोभा भीषण—भयावह थी

उस समय रमेंद्र के मन की अवस्था उस भीषण और मधुर के सम्मिलन का दृश्य देखने के लायक नहीं थी। वह सड़क पर दाखिल हुआ। दो-एक बूँदें उस समय भी पड़ती थीं; रमेंद्र ने उन पर ध्यान नहीं दिया। उसे भागना होगा, घर के किसी भी

आदमी के जागने के पहले ही बहुत दूर चले जाना होगा। सुरेश से भेंट होने की आशंका भी पूर्णरूप से बनी हुई थी। रात भर दुर्योग होने से नहीं आया, अब मौका पाते ही वह निश्चय डेरे पर आवेगा। अतएव उसके पहले ही रमेंद्र को स्टेशन पहुँच जाना चाहिए। सुरेश को वह किसी तरह मुँह नहीं दिखा सकेगा।

प्राणपण वेग से रमेंद्र चलने लगा। सदर रास्ता छोड़कर उसने टेढ़ी राह पकड़ी। रास्ते में अनेक जगह जल जमा था, कहीं कहीं बड़े-बड़े पेड़ जड़ से उखड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े थे। इस समय रमेंद्र किसी ओर ताक नहीं सकता था। रास्ते में जगह-जगह कीचड़ थी, पैर फिसलता था, किन्तु बाहर की किसी सुविधा या असुविधा की ओर उसका ध्यान ही नहीं था। वह उस समय केवल सुरेश, सीता वगैरह से दूर रहना चाहता था। दूर—बहुत दूर पर, जहाँ पर जाने से ये लोग उसकी कुछ भी खबर न पावें, ऐसी जगह वह जाना चाहता है। अगर आदमियों की बस्ती छोड़ देना संभव होता तो शायद वह मनुष्य समाज में अपना मुँह न दिखाता।

उस समय भी सड़क पर अँधेरा छाया था। मेघों के भीतर से उषा के हल्के प्रकाश ने अन्धकार को कुछ यों ही-सा हटा दिया था। हवा उस समय भी साँय-साँय चल रही थी। रास्ते में कहीं मनुष्य की कौन कहे, पशु-पक्षी तक नहीं था। उस निर्जन मार्ग में आँधी के ही समान वेग से—शराबी की तरह लड़खड़ाता हुआ रमेंद्र चला जाता था।

स्टेशन में पहुँचकर रमेंद्र ने देखा, प्लेटफार्म पर एक भी आदमी नहीं था। एक मालगाड़ी खड़ी थी, जो जरा देर में ही छूटनेवाली थी। स्टेशनमास्टर गार्ड को उसका चार्ज दे रहे थे। पूछने से मालूम हुआ कि साढ़े सात के पहले कोई पैसिंजर गाड़ी नहीं जायगी। उसे तब तक वहाँ प्रतीक्षा करनी ही होगी।

रमेंद्र ने सोचा, सब किया-धरा मिट्टी में मिला जाता है। उस समय साढ़े पाँच बजे के लगभग समय था। उस समय से साढ़े सात बजे तक स्टेशन में ठहरने से निश्चय ही सुरेश उसे खोजता हुआ वहाँ आवेगा। अगर सीता इस समय कोई बात प्रकट न भी करे तो भी सुरेशचंद्र जब उसके यों चले आने का कारण पूछेगा तो वह क्या उत्तर देगा? इस पर तो कोई बच्चा भी विश्वास नहीं करेगा कि केवल घर के लिए चित्त अचानक उत्कण्ठित हो उठने के कारण वह इस तरह भागा जा रहा है सुरेश यदि उसकी कोई आपत्ति न सुने और उसे फिर पुरी के डेरे में लौटा ले जाना चाहे तो वह किस तरह सीता के सामने उपस्थित होगा? ना, ना, यह बिलकुल गैरमुमकिन है।

पल भर में ही ये सब विचार बिजली की तरह रमेंद्र के दिमाग में चक्कर खा गए। निराशा के कारण एक आर्तनाद उसके हृदय में ध्वनित हो उठा। दोनों हाथों से छाती को दबा कर वह प्लेटफार्म के ऊपर चलने लगा। सहसा उसके दिमाग में एक युक्ति आ गई। तेजी से बंगाली स्टेशन मास्टर के पास जा कर उसने बतलाया कि वह बड़ी ही मुसीबत में है। साक्षीगोपाल स्टेशन में उसका एक मित्र है। देवदर्शन के लिए उसका मित्र वहाँ गया था, सो एकाएक बीमार पड़ गया कल रात्रि को उसे मित्र का तार मिला है। दुर्योग के कारण कल रात को उसका जाना नहीं हो सका। पैसिंजर गाड़ी छूटने में अभी बहुत देर है। अगर मेहरबानी करके उसे मालगाड़ी से जाने दिया जाय तो वह विशेष उपकृत होगा। इसके लिए वह उपयुक्त रक़म खर्च करने के लिए तैयार है।

इतनी एकदम झूठ बातें कहने में उसकी आत्मा को क्षोभ अवश्य हुआ; किन्तु उसने युक्ति द्वारा अपने मन को समझाया कि सुरेशचन्द्र से भेंट होने की तुलना में इस तरह की झूठ बोलने को वह हजार बार प्रस्तुत है।

स्टेशन मास्टर ने विस्मय के साथ रमेंद्र के मुख की ओर देखा। उसकी वेश-भूषा भले आदमी की सी थी; मुख पर उद्वेग और दुश्चिंतता के चिह्न सुस्पष्ट थे। देखकर उनका मन नरम पड़ा। भद्र भाव से उन्होंने कहा—मालगाड़ी में तो यात्रियों के जाने का नियम नहीं है जनाब!

रमेंद्र ने कहा—जी हाँ, मैं यह सब जानता हूँ। अगर आप दया करके मेरे लिए विशेष प्रबंध कर सकें तो निश्चय ही आप को पुण्य होगा, मेरे मित्र की जान बच जायगी, आप बंगाली हैं, मेरी मुसीबत का ख़याल करके मुझ पर दया कीजिए।

अच्छा, आप ठहरिए कहकर स्टेशन मास्टर तेज़ी से क़दम बढ़ाते हुए गार्ड के पास गए। दम भर में ही वहाँ से लौटकर बोले—आप जा सकते हैं। मैंने गार्ड से कह दिया है। एक फ़र्स्टक्लास के टिकट के दाम दीजिएगा, और उसे कुछ बख़शिश भी चाहिए।

कृतज्ञ भाव से रमेंद्र ने स्टेशन मास्टर को धन्यवाद किया। उसके बाद एक दस रुपए का नोट निकालकर स्टेशन मास्टर को देते हुए कहा—अपने बाल-बच्चों को मिठाई मँगा दीजिएगा।

हाथ जोड़कर प्रतिनमस्कार करके स्टेशनमास्टर ने मुसकराते हुए कहा—माफ़ कीजिएगा। यह सच है कि हम लोग तरह-तरह से रुपया पाया करते हैं; लेकिन आप बंगाली और विदेश में विपत्ति में पड़ गए हैं; ऐसे समय हम जैसा अर्थ पिशाच भी रुपया नहीं ले सकता। धन्यवाद। आप गाड़ी पर चढ़िए। गाड़ी छोड़ने का समय हो गया।

रमेंद्र ने सोचा, स्टेशनमास्टर चाहे जैसा आदमी हो, लेकिन मनुष्यत्व से एकदम शून्य नहीं है। अधिक आग्रह न करके वह सवार हो गया। गार्ड ने आदर और यत्न के साथ उसे बिठलाया।

वैसे ही गाड़ी का भोंपू बजा, गाड़ी चल खड़ी हुई। रमेंद्र ने स्वस्ति की साँस ली।

ठीक उसी समय मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

अच्छी तरह एक झीला पानी बरस जाने बाद आकाश स्वच्छ हो गया। उस समय सात बजे थे। सूर्य के प्रकाश में भीगी हुई प्रकृति हँस उठी। सुरेशचन्द्र लाचार होकर अब तक संन्यासियों से बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। सबेरे चाय पीने का काम नित्य की तरह सुसंपन्न हो चुका था। ब्रह्मचारियों को चाय पीने का अभ्यास था, उसे उन्होंने छोड़ा न था।

वर्षा बंद होते ही स्वामीजी को प्रणाम करके सुरेशचंद्र तेजी के साथ डेरे की ओर चला। घर की दशा जानने के लिए उसका चित्त चंचल हो रहा था। रास्ते में चलते-चलते उसने देखा, रात का तूफान साधारण नहीं था। रास्ते में बड़े-बड़े पेड़ उखड़े पड़े थे, अनेक कच्चे घर गिरकर मिट्टी में मिल गए थे। समुद्र के वक्षःस्थल में इस समय भी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं। तट-भूमि में दर्शकों का जमाव होने लगा था। किन्तु बड़े से बड़ा दुःसाहसी भी इस समय समुद्र में स्नान करने का साहस नहीं कर सकता था। विक्षुब्ध समुद्र के भयानक सौंदर्य को देखने का अवकाश उस समय सुरेशचन्द्र को नहीं था। घर लौटकर सब की खैर खबर जब तक नहीं मालूम होती, तब तक चित्त को स्थिर कर सकना उसके लिए असंभव था। वह तेजी से जा रहा था। समुद्र के किनारे था। घर अगर आँधी-पानी के प्रयोग को सहन करके टिका रहा हो, तभी कुशल है!

डेरे के पास आकर सुरेशचंद्र ने स्वस्ति की साँस ली। पास ही उनका एक मंज़िल का मकान वैसा ही खड़ा था। उस समय नवोदित सूर्य के प्रकाश की लहरें फेनिल लहरों के ऊपर क्रीड़ा कर रही थीं।

सदर दरवाजे के पास आकर सुरेशचंद्र ने देखा, उनका नौकर सनातन झाड़ू लिये सफ़ाई कर रहा है। वह सीधा बुआ की कोठरी की ओर चला गया।

दरवाजे के सामने बुआ के पास सीता को बैठे देखकर सुरेश कह उठा—तुम कब आईं सीता ?

पिछले पहर रात को बुआ का ज्वर उतर गया था। वह कह उठी—वह तो दावत में गई नहीं थी। सिर में बड़ा दर्द था, इस लिए नहीं गई। अकेली सरयू ही गई थी।

सुरेशचंद्र ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से बहन की ओर देखा। वास्तव में सिर के दर्द के कारण होनेवाले कष्ट और उससे उत्पन्न शिथिलता के चिह्न सीता के मुख पर स्पष्ट दिखलाई दे रहे थे। उसकी बहन कभी-कभी इस पीड़ा की यंत्रणा से अत्यन्त कष्ट भोगा करती है, यह बात सुरेशचंद्र को मालूम थी। उसने स्नेह के स्वर में बहन से कहा—तो कल तुम को बड़ा कष्ट मिला ? क्यों ?

सीता ने नज़र नीची किए हुए ही कहा—अब तबियत अच्छी है दादा।

उत्तर यद्यपि असंलग्न था, तथापि सुरेश को जी में संतोष हो गया। उसके बाद वह कल की आँधी और तूफ़ान की चर्चा करने लगा। रात भर सबके लिए उसे कैसी दुर्भावना रही, यह भी उसने बतलाया।

सीता ने कोमल स्वर में पूछा—कल तुम कहाँ रहे दादा ?

सुरेश ने संक्षेप में कह दिया—उसके एक परिचित संन्यासी यहाँ रहते हैं। उन्हीं के आश्रम में वह रात को रहा था। संन्यासी के साथ उसका क्या और कैसा संबंध है, इसकी छाँह भी उसने बहन को नहीं दी। केवल इतना ही बतलाया कि रात भर वह वहाँ बड़े मजे में रहा, उसे कोई असुविधा नहीं होने पाई।

कपड़े बदलने के लिए सुरेश बाहर की बैठक में गया। नौकर

वहाँ की सफाई कर चुका था, उसने खिड़कियाँ खोल दी थीं। सुरेश ने सोचा था, रमेंद्र शायद उसे कमरे के भीतर ही कविता की चर्चा में निमग्न देख पड़ेगा। किंतु कमरा खाली था। यह देखकर उसने सोचा, शायद रमेंद्र समुद्र के किनारे टहलने गया होगा। अभी तक लौटा नहीं।

धोती बदलकर सुरेश ने चिलम भर लाने के लिए नौकर को हुक्म दिया। रात भर आश्रम में तमाखू पीने की सुविधा नहीं हुई थी।

नल मुँह में दबाकर आँखें मूँदे सुरेशचंद्र उस समय तमाखू देवी की आराधना में लग गया। घड़ी में टन-टन करके ८ बजे वह चौंक उठा। इतनी देर तक तो रमेंद्र कभी बाहर नहीं रहता था। वह नल छोड़कर उठ खड़ा हुआ। सहसा उसकी नजर एक बार आप-ही-आप कमरे में चारो ओर घूम गई। परिचित ग्लाडस्टोन बेग भी अपनी जगह पर न देख पड़ा। उत्कण्ठित चित्त से टेबिल के किनारे आकर खड़े होते ही एक खुली हुई चिट्ठी ने उसकी नजर अपनी ओर खींची।

कौतूहलवश उसे उठाकर सुरेशचंद्र पढ़ने लगा। रमेंद्र की अनुपस्थिति का कारण सुस्पष्ट हो गया। किन्तु इतनी जल्दी चले जाने का क्या कारण है।

खुली खिड़की से समुद्र का दृश्य बहुत अच्छी तरह देख पड़ता था। नजर जमाकर सुरेशचंद्र उधर ही देखता हुआ विचार करने लगा। सोचते-सोचते सहसा उसके मत्थे पर बल पड़ गए।

एक साँस छोड़कर सुरेश ने वह चिट्ठी लपेटकर जेब में रख ली। इसी समय एक गाड़ी आकर घर के सामने रुक गई। हास्यमयी, सदा प्रसन्नमूर्ति सरयू ने गाड़ी से उतरते ही सामने सुरेश को देख पाया। छोटे-छोटे कोमल दोनों हाथ जोड़कर एक छोटा-सा नमस्कार करने के बाद मुस्कराती हुई वह भीतर चली गई।

बुआ के सामने खड़ी होकर सरयू गत रात्रि के दुर्योग और सखी के घर के आतिथ्य-सत्कार की बातें करने लगी। सीता आग्रह के साथ उसकी बातें सुन रही थी। सुरेश को देखकर सरयू ने अपने स्वर को अपेक्षाकृत धीमा कर लिया।

बातचीत पूरी होने पर सुरेशचन्द्र ने कहा—रमेंद्र आज तड़के ही उठकर घर चला गया। समझ में नहीं आता कि वह मुझसे मिले बिना ही इस तरह क्यों चला गया!

विस्मित भाव से सरयू ने कहा—किसी से बिना कहे-सुने रमेन बाबू चले गए? क्यों? क्या हुआ?

सीता ने भी अपने दादा की ओर प्रश्नसूचक दृष्टिपात किया।

अन्यमनस्क भाव से सुरेश ने कहा—ताज्जुब की बात है। वह सदा का सनकी है! जब जो जी में आया, कर डाला।

बुआ ने कहा—रमेंद्र चला गया; कहा भी नहीं और चल दिया!

कुछ देर चुप रहकर सरयू ने कहा—कोई चिट्ठी भी लिखकर रख नहीं गए?

सुरेश ने कहा—हाँ, चिट्ठी तो लिखकर रख गया है; लेकिन जाने का कारण जो उसमें लिखा है, वह बिलकुल ही लड़कपन-सा है। एकाएक घर जाने के लिए जो घबरा उठा—यह भी कोई कारण है भला?

बुआ ने कहा—लड़कपन नहीं, यह ठीक हो सकता है भैया। मा से बहुत दिन का बिछड़ा हुआ था; हो सकता है, कल एकाएक मा को देखने के लिए चित्त चंचल हो उठा हो।

सुरेशचन्द्र कुछ न कहकर बाहर चला गया।

सीता ने एक बार नजर नीची करके फिर सरयू की ओर देखकर कहा—चलो, कपड़े बदलो।

दोनों कमरे में चली गईं।

बीसवा परिच्छेद

धूप तेज हो उठी थी। किन्तु सुरेश का उधर ध्यान ही न था। वह उस समय समुद्र-तट के मार्ग के ऊपर अन्यमनस्क भाव से टहल रहा था। स्नान का समय नहीं हुआ था। स्वर्गघाट पर आज स्नान करनेवालों की भीड़ नहीं थी। कारण, समुद्र की चंचलता उस समय भी कम नहीं हो पाई थी।

"महाशय, सुनिये तो!"

सुरेशचन्द्र ने घूमकर देखा। देखा, एक लंबे-चौड़े डील-डौल का बलिष्ठ बंगाली उसी की ओर तेजी से आ रहा है। वह अर्द्ध-मलिन मोटी धोती और मोटे खद्दर की एक मिर्ज़ई पहने था। कंधे पर एक खद्दर की ही चद्दर पड़ी थी। पैरों में चट्टियाँ थीं।

सुरेशचन्द्र उत्सुक भाव से खड़ा हो गया। आगन्तुक ने पास पहुँचकर उसे नमस्कार किया। सुरेश ने भी उसे प्रतिनमस्कार किया। नवागत ने कहा—आप क्या बतला सकते हैं कि रमेन बाबू यहाँ किस घर में रहते हैं? स्वर्गद्वार घाट के पास ही उनका डेरा है। थोड़े ही दिन हुए, कलकत्ते से यहाँ आए हैं। अपने मित्र सुरेश बाबू के ही डेरे में ठहरे हैं।

सुरेशचन्द्र ने एक बार उस मनुष्य को सिर से पैर तक देखकर कहा—आप रमेन बाबू की खोज क्यों कर रहे हैं? उनसे आपका क्या काम है?

नवागत ने कहा—तो आप उन्हें जानते हैं? हमारा घर एक ही गाँव में है! महाप्रभु के दर्शन करने के लिए आते समय मैंने सुना था कि वह यहीं हैं, इसीसे उनसे मुलाकात करने आया हूँ। आपके साथ शायद उनकी जान पहिचान है, क्यों न?

स्वस्ति की साँस लेकर सुरेश ने कहा—मैं उन्हें खूब अच्छी तरह जानता हूँ। वह हमारे बचपन के मित्र हैं; मेरा ही नाम सुरेशचन्द्र है।

सुरेश की ओर कौतूहल के भाव से देखते हुए आगन्तुक ने कहा—ओह, आप ही सुरेश बाबू हैं? रमेन डेरे पर हैं न? मुलाक़ात—

बीच में बाधा देकर सुरेश ने कहा—वह तो यहाँ नहीं हैं। आज ही तड़के की गाड़ी से चले गए।

"चले गए!"—विस्मय-विमूढ़ भाव से आगन्तुक इतना कह-कर क्षण भर चुप रहा। उसके बाद सहसा कह उठा—क्यों, इतनी जल्दी चले गए?

सुरेशचन्द्र ने उस आदमी के स्वर में जैसे आशा-भंग के स्पन्दन का अनुभव किया। किन्तु उसके लिए कुछ भी कौतूहल प्रकट न करके उसने कहा—सो तो ठीक नहीं जानता कि इतनी जल्दी क्यों चले गए, लेकिन हाँ, तबियत एकाएक उचाट होने से ही चले गए हैं।

उस आदमी ने पूछा—कहाँ गए, यह आप कुछ जानते हैं?

सुरेश—घर के लिए चित्त उचाट होरहा था, घर ही गये होंगे।

आगन्तुक एक क्षुद्र "हूँ" कहकर कुछ देर चुप रहा उसके बाद बोला—सोचा था, यहाँ भेंट होगी, सो जब वह यहाँ हैं ही नहा तब लाचारी है। आपको कष्ट दिया, इसके लिए क्षमा कीजिएगा।

सुरेशचन्द्र ने कुंठित भाव से कहा—यह आप क्या कहते हैं; इसमें क्षमा करने की बात क्या है? अच्छा हाँ, आप यहाँ ठहरे कहाँ हैं?

आगन्तुक ने कहा—पण्डे के घर में।

सुरेश—रमेन को मैं अपने सगे भाई की तरह मानता हूँ। आप उसके गाँव के आदमी ठहरे, आप भी मेरे आत्मीय ही हैं। अगर कुछ ख्याल न कीजिए तो मेरे ही डेरे में—

बाधा देकर आगन्तुक ने विनयपूर्वक कहा—जी, इसकी कुछ ज़रूरत न होगी। मैं जहाँ उतरा हूँ, वहाँ कोई असुविधा नहीं। दो-एक दिन के लिए आपको कष्ट देने की इच्छा नहीं है। नमस्कार।

आगन्तुक लम्बे लम्बे डग रखता हुआ चला गया। सुरेशचन्द्र कई सेकिंडों तक स्थिर दृष्टि से उस जा रहे लम्बे-चौड़े डीलडौल के बंगाली की ओर देखता रहा, उसके बाद अपने डेरे की ओर लौटा।

इधर आगन्तुक भद्रपुरुष तेजी के साथ शहर की ओर लौट चला। जगदीश के मंदिर के पास आकर एक प्रकाश और वायु से हीन दुमंज़िले घर के सामने आकर दरवाज़ा खोलकर वह भीतर घुसा। सीढ़ियों ऊपर चढ़कर उसने एक कमरे में प्रवेश किया। वहाँ एक वृद्धा विधवा बैठी थीं। उनके पास ही कुछ घूँघट निकाले एक नारी ट्रंक खोलकर कपड़े बाहर निकाल रही थी।

आगंतुक ने पुकारा— माँ!

वृद्धा ने आग्रह के साथ कहा—कौन, माधव? क्या खबर है? रमेन से भेंट हुई?

चद्दर कंधे से उतारते हुए माधव ने कहा—नहीं माँ, खोका यहाँ नहीं है।

वृद्धा—नहीं है? कहाँ गया?

माधव ने कहा—सुरेश बाबू से मुलाक़ात हुई थी। उन्होंने कहा कि आज तड़के ही एकाएक वह अपने गाँव चला गया।

माता का मुख गंभीर हो उठा। वह कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं। उसके बाद बोलीं—तो फिर यहाँ देर करने की ज़रूरत नहीं। चलो, आज ही लौट चलें। रात को गाड़ी जाती है न?

माधव ने सिर हिलाकर कहा—आज जाना नहीं हो सकता माँ। इधर कई दिन से लगातार राह चलने का कष्ट उठा रही हो। आज विश्राम करके कल सबेरे ही की गाड़ी से चल देंगे। खोका पहले कलकत्ते में जरूर उतरेगा, उसके बाद गाँव जायगा। साथ ही साथ हम लोग भी पहुँच जायँगे।

रमेन की माँ ने कहा—अच्छा यही सही, आज चलो, महाप्रभु के दर्शन कर आवें।

माधव ने कहा—बड़ी बहू कहाँ है? चूल्हा वग़ैरह बनाकर ठीक न कर रक्खे।

गृहिणी ने कहा—रसोई बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यहाँ प्रसाद मोल मिलता है, पण्डा कहता था। उसी से हमारा काम चल जायगा।

तब माधव ने कुर्ता उतार कर कहा—तो तुम लोग स्नान कर डालो। इस वक्त महाप्रभु के दर्शन और पूजा से निबट लेना होगा।

थोड़ी देर में स्नान समाप्त करके सब जने देव-दर्शन के लिए चले। पण्डा साथ चला। एक दिन में जहाँ तक संभव हो, दर्शन कर लेना है।

जगन्नाथदेव के मंदिर में दर्शनार्थी लोगों की भीड़ कम न थी। मंदिर के सिपाही दर्शकों के एक-एक दल को भीतर जाने देते थे, बाक़ी जनता को रोक रखते थे।

सास के पीछे-पीछे संध्या चली। वह बार-बार विस्मय के साथ बहुत बड़े मंदिर की चूड़ा और बिशाल आँगन की ओर देखती थी। इस मंदिर का विवरण उसके लिए अज्ञात नहीं था। वह इसका वर्णन अनेक बार पढ़ चुकी थी; किन्तु भीड़ के बीच सब बातों को, वर्णन के साथ मिलाकर, देखने का सुयोग नहीं मिलता।

क्रमशः माधव और पण्डे की सहायता से तीनों स्त्रियों ने मंदिर के भीतर प्रवेश किया। पहले तो कुछ दिखलाई नहीं

दिया। दर्शनार्थी लोगों के कुछ संयत और एकाग्र होने पर उन्हें सामने देव-मूर्तियों के आकार दिखलाई दिए।

सन्ध्या ने श्रद्धा के साथ त्रिमूर्ति की ओर देखा। दोनों ओर श्रीकृष्ण और बलराम उनके बीच में बहन सुभद्रा। ऐसा कल्पना का मूर्तिमान् प्रकाश सम्पूर्ण भारत भर में और कहीं नहीं है। हिन्दुओं ने सर्वत्र ही प्रकृति और पुरुष को स्वामी और स्त्री के रूप में कल्पना करके विग्रह-मूर्तियों को गढ़ रक्खा है, किन्तु भ्राता और भगिनी को देवता के आसन में बिठाकर पूजा करने की पद्धति इस श्रीक्षेत्र पुरीधाम को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं है। सन्ध्या मुग्ध और विस्मित होकर तीनों मूर्तियों की ओर ताकने लगी। शिल्पी का निपुण-चातुर्य इन तीनों मूर्तियों में नहीं है। किन्तु भक्त का चित्त बाहर के रूप में कब मुग्ध हुआ है? सैकड़ों वर्षों से करोड़ों भक्त इन तीनों मूर्तियों के चरणों में सिर नवाकर भक्ति का अर्घ्य निवेदन करते आरहे हैं। वे बाहर के रूप से मुग्ध होकर कभी यहाँ नहीं आए। अन्तर्निहित भक्ति को ही निवेदन करने के लिए भक्तजन यहाँ आया करते हैं।

प्रौढ़ा विधवा ने ध्यान-स्तिमित नेत्रों से जगन्नाथ की मूर्ति की ओर देखकर क्या प्रार्थना की, यह वही जानें, अथवा जो सबके मन की बात जानते हैं, वह अन्तर्यामी जानें। सन्ध्या भक्ति-पुलक और विस्मय के साथ एकटक त्रिमूर्ति को निहारती रही। उसके चारों ओर के दर्शकगण ऊँचे स्वर से भगवान् जगन्नाथ की महिमा घोषत कर रहे थे। सन्ध्या के भी अन्तरतम प्रदेश से वही वाणी जैसे उठने लगी। नन्हें-नन्हें कोमल दोनों हाथ जोड़कर वह त्रिभुवननाथ के निकट हृदय की प्रार्थना निवेदन कर रही थी। उस निवेदन में स्वामी के कल्याण की कामना भी थी, बल्कि आज देवता को प्रत्यक्ष करके वह सारे संशय और संदेह से विमुक्त हृदय से कह उठी—"भगवन्, उन्हें सुखी करो; शांति दो!"

संध्या के हृदय से निकले हुए इस संक्षिप्त निवेदन ने विश्वनाथ के चरणों में स्थान पाया या नहीं, यह कौन जाने। किंतु उसका हृदय अकस्मात् हलका हो गया। वह समग्र प्राणशक्ति को नयनों में केन्द्रीभूत करके कुछ देर तक देव-मूर्ति की ओर ताकती रही। श्रीजगन्नाथ जी के मस्तक में एक उज्ज्वल हीरा चमक रहा था। सहसा आनंद की लहर संध्या के सारे शरीर में जैसे दौड़ गई। देव-मूर्ति के मुखमंडल में यह क्या आनन्द की ज्योत्स्ना धारा बह रही है?

चारों ओर दर्शकों की रेल पेल वहाँ इतनी थी कि मन एकाग्र नहीं हो सकता। ये स्त्रियाँ भी अधिक देर तक देवता की पूजा नहीं कर सकीं। पंडे की सहायता से माधव स्त्रियों को बाहर ले आया। मन्दिर के आँगन में आकर राधारानी हर्ष और आनन्द से कह उठी—अम्मा जी, मैंने बड़े पुण्य किये थे, इसी से आज महाप्रभु के दर्शन पा गई, सैकड़ों जन्मों के पाप आज दूर हो गए?

यह बात संध्या के कानों में पहुँचकर हृदय में जाकर जैसे अंकित हो गई। तो क्या उसके भी अनिच्छाकृत, अज्ञेय, अपरिचित पापों की राशि इस पुण्य दर्शन के फल से नष्ट हो गई! उसने फिर किसी के उद्देश्य से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक में लगाए।

माधव-पत्नी राधारानी की बात सुनकर रमेन की माता कुछ हस दी। उनका हृदय भी आज बहुत कुछ स्निग्ध हो उठा था। केवल बीच-बीच में रमेंद्र की याद करके उनके हृदय में जैसे एक काँटा-सा रह-रहकर खटक जाता था।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

ना सचमुच अब उससे और सहा नहीं जाता। ओह कैसी भयानक यह जलन है। हृदय जैसे जलकर खाक हुआ जाता है। क्यों, यह जलन क्यों है? यह अनुभूति इतने दिन कहाँ थी? उसी के अन्तरतम प्रदेश में नहीं थी क्या? हाँ, थी, इसमें सन्देह नहीं। मन को आँख दिखाकर रोका नहीं जाता। अपने मन को ही धोका नहीं दिया जा सकता।

रमेन्द्र उसका कौन है? कोई नहीं। तो फिर आज उसके अन्तरतम प्रदेश में उसकी मूर्ति जब देखो तब सहसा क्यों जाग उठती है? वह तो प्राणपण से भूलने की चेष्टा करती है, तो भी जलते हुए अंगारे की तरह उसके स्पर्श की याद उसके शरीर में, मन में यह कैसा गहरा, यंत्रणादायक घाव क्यों करती चली जाती है।

उसने तो उसकी कामना नहीं की, अपवित्र भाव से कभी उसकी ओर देखा भी नहीं, भूलकर भी नहीं देखा। यह क्या सच नहीं है? यह बात अवश्य ही यथार्थ है। सीता अपने मन में इसी तरह के विचार करने लगी।

किसी दिन क्या उसने रमेन्द्र की सुन्दर मूर्ति को अपने मन के मन्दिर में स्थापित नहीं किया? सुदूर अतीत में? ना, ना, यह बात नहीं है। विवाहित जीवन के पहले जब रमेन्द्र की किशोर मूर्ति निरन्तर उसकी आँखों के आगे रहती थी, जवानी ने जब उसके शरीर में झलकना शुरू किया था, उस समय तो रमेन्द्र को जीवन-सखा के रूप में पाने की आशा उसके लिए असम्भव नहीं थी, उस समय उसके किशोर हृदय में रमेन्द्र

के रूप का छायापात अवश्य हुआ था। यह सत्य तो अस्वीकार किया ही नहीं जा सकता। किन्तु आकाश-कुसुम की तरह वह स्वप्न जब टूट गया, इन्द्र धनुष की तरह हृदयाकाश में दिखाई देकर ही जब गायब हो गया, तभी से वह यत्न के साथ उस किशोरावस्था के चित्र को मिटाने की चेष्टा करती आ रही है। उसे विश्वास था कि उस युग की याद अभिशाप की तरह आइंदा—भविष्य में—कभी उसे यंत्रणा नहीं देगी, उसका पीछा नहीं करेगी। उसके बाद महादेव की तरह स्थिर धीर, कामदेव के समान रूपवान युवक के साथ उसका ब्याह हो गया। रमेन्द्र की याद बाकी नहीं रही, उसका चिन्ह तक उसके मानस पट से पुँछ गया।

अगर उसका चिन्ह तक नहीं रहा था, तो आज वह उस रात की घटना की बात, उस स्पर्श की ज्वाला को वह क्यों नहीं भूल पाती? स्वामी के अपरिमेय प्रेम के प्रवाह में तो उसने अपने अस्तित्व तक को विलीन कर दिया है। फिर?

आधीरात को पलँग पर उठ बैठकर सीता इसी तरह सोच रही थी। घर के भीतर लैंप जल रहा था। शय्या पर दूसरी ओर सरयू गहरी नींद में पड़ी सो रही थी। सीता लड़खड़ाते पैरों से उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। खिड़की खोलते ही चंद्रमा की चाँदनी से प्रकाशित समुद्र का दृश्य उसे देख पड़ा। फेने से सुशोभित लहरें तटभूमि पर पछाड़े खा रही थीं। सीमाहीन समुद्र के आधीरात के गाँभीर्य से मन मुग्ध और अभिभूत हो पड़ता है, किन्तु सीता के मन में वह शायद कुछ भी अपना प्रभाव नहीं डाल पाता था। वह देख अवश्य रही थी, किन्तु उसकी वह दृष्टि लक्ष्यहीन थी।

वह उस समय अपने हृदय को विश्लेषण करके देख रही थी। उसका मन, उसका हास्य क्या चाहता है? नयन मूँद कर वह

अपनी दृष्टि शक्ति को जैसे अपने हृदय के गोपनतम पर्दे तक पहुँचा रही थी। उसने वहाँ क्या देखा ? सभी क्या महाशून्य से परिपूर्ण न था ? उसके स्वामी के स्निग्ध गंभीर मुख का रेखाचित्र तक वहाँ क्यों नहीं देख पड़ता ? उसके हृदय के आसन पर उन्हीं का तो स्थान होना चाहिए! वहाँ उनके सिवा और किसी की स्मृति रहना तो उचित नहीं। जिसे प्यार किया जाता है, हृदय केवल जिसकी स्मृति का ध्यान करके परितृप्त होना चाहता है, उसी का चित्र मानसपट में अंकित—चिर मुद्रित हो जाता है, यह क्या सत्य नहीं ? तो फिर हृदय में उसी सत्य का आभास आज उसने क्यों नहीं पाया ? तो क्या वह अपने स्वामी को प्यार नहीं करती, भक्ति नहीं करती ? श्रद्धा की पुष्पाँजलि उसने क्या उन्हें अर्पण नहीं की ? ना, ना; की क्यों नहीं। इतनी भक्ति आज तक उसने किसी पर नहीं रक्खी, इतनी श्रद्धा उसने और किसी मनुष्य को अर्पण नहीं की। किन्तु प्यार ? हाँ, यह ठीक है, जान पड़ता है, वह आत्मविस्मृत होकर स्वामी को प्यार नहीं कर सकी। नहीं तो—यह क्या, घने अन्धकार के भीतर वह किसकी मूर्ति प्रकट हो रही है ?

काँपकर, आतंक से विह्वल होकर सीता ने आँखें खोल दीं। ना, वह मूर्ति देखना नहीं चाहती, कभी नहीं।

उसका नारीत्व, शिक्षाभिमान, आत्ममर्यादा का ज्ञान और संयम, सब मिलकर भौंह टेढ़ी करके कह उठे—खबरदार !

किन्तु प्रकृति संस्कार को जैसे व्यंग्य कर उठी। सीता ने दोनों हाथों से अपना सिर दबा लिया। यह कैसी प्रचण्ड अग्नि परीक्षा है ! यह कैसा दारुण दुर्दैव है ! किस तरह वह इसके प्रभाव को निरस्त करेगी ?

आकुल भाव से सीता अपने मन में पुकारने लगी—अजी तुम आओ, तुम मेरे समग्र हृदय को अपनी पवित्र स्मृति से परि-

पूर्ण कर दो। मैं सिर्फ तुमको चाहती हूँ—अपने आसन में आकर तुम बैठो।

सत्य ही सीता क्या अब तक आत्मवञ्चना करती आ रही थी? अपने को धोका दे रही थी? दुर्दमनीय मन को केवल शिक्षा और नारीत्व के आवरण से उसने अब तक क्या ढक रक्खा था? जिस साधना और संयम के बल से मनुष्य असाध्य-साधन कर डालता है, उसने किसी दिन उसका आश्रय नहीं लिया। जिसकी स्मृति को भूल जाने की बात अब तक उसने सोच रक्खी थी, वास्तव में क्या वह इतने दिन अपने गोपनतम प्रदेश में प्रच्छन्न भाव से उसी को स्थापित किये हुए थी? उस दिन के अंग स्पर्श की ऐन्द्रजालिक शक्ति का प्रभाव इस समय क्या आवरण मुक्त होकर अपने नग्न रूप में दिखलाई दिया है?

पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव, पाश्चात्य भाव की अनुप्रेरणा सीता के हृदय में यथेष्ट मात्रा में विद्यमान थी, किन्तु भारतीय नारी के रक्त से ही उसका जन्म है। जिस देश में सीता, सती और सावित्री उत्पन्न हुई हैं, उसी महामहिमामयी नारियों के देश में, उनके पदरज:पूत पीठ-स्थान में उसने भी जन्म लिया है। तो फिर उनकी-सी चित्तवृत्ति, उसके से सौभाग्य के लाभ से वह क्यों वंचित है?

सहसा सीता को ख्याल आया, एक दिन सरयू ने कहा था—दायरे के—सीमा के बाहर जाना या न जाना क्या मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है? इसके साथ ही उसने अदृष्ट का भी उल्लेख किया था। उत्तर में सीता ने कहा था कि वह अदृष्ट को नहीं मानती। आज जो उसके हृदय में विप्लव की आँधी चल रही है, सो क्या उसकी अदृष्ट का खेल है? अथवा उसके हृदय की दुर्बलता है?

सीता फिर सोचने लगी, किन्तु कुछ भी निर्णय न कर सकी। उसने सोचा, अगर अदृष्टि ही उसे इस मार्ग में खींचे लिए जाता है, तो क्या उसके निवृत्त करने का कोई उपाय नहीं है ?

इस तरह दिन-रात मन के साथ संग्राम करते चलना असंभव है ! वास्तव में अब वह रोकने में, युद्ध करने में असमर्थ हो रही है।

कौन उसे रास्ता दिखा देगा ? इस आत्मग्लानि से, मन की अपवित्र अवस्था से उद्धार पाने का उपाय क्या है ? स्पर्श की ज्वालामयी स्मृति को दफ़नाए बिना वह किसी तरह स्थिर नहीं हो पाती।

सीता बारम्बार स्वामी को याद करने लगी, मन-मन्दिर में उसके जगाने की चेष्टा करने लगी। किन्तु भीतर से वह जैसे किसी शक्ति या उत्साह के संचार का अनुभव नहीं कर पाती थी।

रमेंद्र और उसके स्पर्श की स्मृति अभिशाप की तरह सदा क्या उसका पीछा करती ही रहेगी ?

बाइसवाँ परिच्छेद

मालगाड़ी साक्षीगोपाल स्टेशन पर रमेंद्र को उतार कर चली गई। उस समय पानी बरसना बंद हो गया था। बेग हाथ में ले कर रमेंद्र स्टेशन के बाहर गया। जाने के पहले उसने यह जान लिया था कि पैसिंजर गाड़ी किसी समय खुर्दा स्टेशन की ओर जायगी।

रमेंद्र मंदिर की ओर चला। उधर जाने का प्रयोजन कुछ भी न था। किंतु जिस पार्ट का अभिनय उसने शुरू किया है, उसे बाहर से तो बनाए रखना ही होगा।

मंदिर के देवता के दर्शन करने लायक उसके मन की दशा उस समय नहीं थी, तो भी रमेंद्र उसी ओर चला। पैसिंजर गाड़ी के आने में अभी देर थी। थोड़ी दूर इधर-उधर घूम-फिरकर कुछ समय पहले ही वह स्टेशन पर लौट आया। खुर्दा स्टेशन तक का एक सेकिंड क्लास का टिकट खरीदकर वह गाड़ी आने की प्रतीक्षा करने लगा।

ठीक समय पर ट्रेन आई और वह चटपट सेकिंड क्लास के एक डिब्बे में चढ़ गया। उसमें दूसरा कोई यात्री न था। रमेंद्र जैसे कुछ निश्चिन्त हुआ। उसके हृदय में उस समय भी प्रलय की आँधी प्रबल वेग से चल रही थी। अब तक भविष्य जैसे उसके आगे से हट गया था। दूर—बहुत दूर जाकर वह अपने को छिपाना चाहता है।

सहसा रमेंद्र को याद आया वह कहाँ जाता है, कलकत्ते? वैसे ही उसका सारा हृदय जैसे विद्रोही हो उठा। कलकत्ते में परिचित लोगों के सामने वह इस समय किसी तरह जाना नहीं चाहता था। तो क्या वह अपने गाँव, माँ के पास जायगा?

मा !—जननी की स्मृति मन में आते ही रमेंद्र काँप उठा। सरला, पुत्रगतप्राणा, अगाधस्नेह-शालिनी जननी! वह किस तरह जाकर उनकी पवित्र मूर्ति के पास खड़ा होगा? कितने यत्न से, कितना कष्ट स्वीकार करके, शैशव में पितृहीन संतान को उन्होंने पालपोसकर इतना बड़ा किया! साधुता, सच्चरित्रता की शिक्षा देने के लिए उन्हें कैसा गहरा आग्रह था! उनकी उस चरम चेष्टा का कैसा उपयुक्त पुरस्कार उसने दिया! शारीरिक अधः पतन यथार्थ में न होने पर भी उसका मानसिक अधःपतन कैसा शोचनीय और निन्दनीय हुआ है, यह तो अस्वीकार करने का उपाय नहीं। उसने ब्याही हुई पराई स्त्री के प्रति जैसा बुरा मन का भाव प्रकट कर डाला है, उसका उपयुक्त प्रायश्चित जब तक न होले, तब तक वह माता के सामने जाकर खड़ा नहीं हो सकेगा। वह अधिकार इस समय उसे नहीं है। हाँ, माता को एक पत्र लिख देना होगा कि फ़िलहाल वह कुछ दिन पछाँह की सैर करेगा, वह उसके लिए चिन्ता न करें। रेल की डाक में ही, ठिकाना न देकर पत्र डाल देगा।

गत रात्रि की बात हर घड़ी रमेंद्र के चित्त को कष्ट पहुँचाने लगी। बहुत दिनों से वह अपने मन के भीतर सीता के सम्बन्ध में इस गोपन लंपटता को रक्खे था, पुष्ट करता चला आता था, यह अस्वीकार नहीं किया जासकता। समुद्र-स्नान के समय सीता के अंग का स्पर्श ही उसके लिए काल हो गया। स्पर्श की दुर्दमनीय शक्ति को वह किसी तरह प्रतिहत नहीं कर सका।

रमेंद्र सोचने लगा। क्यों नहीं वह ऐसा कर सका? इसके लिए क्या उसने यथेष्ट चेष्टा की थी? लोभ तो मनुष्य को पगी पग पर मुग्ध और अभिभूत करना चाहता है, किन्तु उन्नत आत्मा साधना के प्रभाव से लोभ को पराजित, पदानत और पिष्ट करके विजय-माल्य प्राप्त करे, यही तो जीवन की शिक्षा और

धर्मतत्त्व का मूल सिद्धान्त है। किन्तु उसने क्या मन-वाणी-काया से एक बार भी यह चेष्टा की थी ?

ना, रमेन्द्र ने यह चेष्टा नहीं की, कभी नहीं की। बल्कि वह मन-ही मन कामना को यथेष्ट आश्रय देता चला आ रहा था। परिमार्जित व्यवहार की नक़ाब डालकर वह भद्र-परिवार में सम्मिलित हुआ था। हृदय में पर-स्त्री के प्रति गंदी लालसा धौंकी जा रही आग की तरह जल उठकर अपनी लपकती हुई ज्वालाओं को चारों ओर फैला रही थी वह मिथ्या बातों से अपने मन को समझाने की चेष्टा कर रहा था कि वह सीता को केवल प्यार करता है।

रमेन्द्र की सारी देह फिर काँप उठी। इसी का नाम क्या प्यार है ? कवि ने कहा है—प्यार का अर्थ है आत्मविसर्जन की अकांक्षा। किन्तु उसने तो आत्मसंभोग ही करना चाहा था। यदि सत्य ही वह सीता को प्यार करता तो आत्मग्लानि की प्रचंड अग्नि में आज वह जल क्यों रहा है ? वह तो तब दूर ही से सीता को देखकर, उसका सुख और आनंद देखकर तृप्ति प्राप्त कर सकता।

किन्तु एक बात है, सीता के प्रति उसका यह उद्दण्ड आकर्षण सच है या झूठ ? यदि सत्य ही है, तो उसका अपराध क्या ऐसा भारी है ? सत्य को कोई कब रोक सका है ? अस्वीकार कर सका है ?

रमेन्द्र के हृदय के भीतर जो देवता जाग उठा था, वह इस युक्ति के विरुद्ध कह उठा—मूर्ख, पृथ्वी पर जो कुछ घटित होता है, वह सभी सत्य है, मिथ्या कहाँ है ? किन्तु जो कुछ अन्य को या किसी भी जीव को कष्टदायक है, उसे अवश्य ही छोड़ देना चाहिए। यही मानव-जीवन का लक्ष्य है। और के घर में मणि-मोती आदि रत्न हैं, उन्हे देखते ही लोभ उत्पन्न हुआ। यह झूठ नहीं है। किंतु उस लोभ के वशवर्ती होना ही तो

मिथ्या को स्वीकार करना है। और लोभ का दमन कर सकने का नाम ही सत्य के अनुवर्ती होना है। सीता तेरी नहीं है। लौकिक हिसाब से भी वह दूसरे की ब्याही स्त्री है। उसके ऊपर लोभ पाप है। उस घृणित इच्छा का दमन करना लौकिक व्यवहार के हिसाब से और धर्म की दृष्टि से भी उचित था। तूने ऐसा किया नहीं अतएव मिथ्या को आश्रय दिया। इससे खुद तेरे मन में अशांति हुई, सीता के मन में अशान्ति होगी। घटना अगर प्रकट हुई तो सीता के और तेरे आत्मीय-स्वजनों के मन में भी घोर अशान्ति पैदा होगी। अतएव तूने महापाप किया।

इस प्रबल युक्ति के सामने रमेंद्र का सिर झुक गया। जंकशन स्टेशन पर गाड़ी रुकी हुई थी। बेग हाथ में लेकर रमेंद्र वहीं उतर पड़ा। अन्तर्जगत् से उसे बहिर्जगत् में लौट आना पड़ा। वह अब क्या करेगा? कहाँ जायगा?

प्लेटफ़ार्म के ऊपर कुछ देर टहलने के बाद रमेंद्र टिकट-घर की ओर चला। उस समय टिकट का बिकना बंद था। स्टेशन के एक कर्मचारी से पूछने पर मालूम हुआ कि शाम को एक गाड़ी मिलेगी। रमेंद्र चाहे तो आद्रा और गोमो होकर ग्रैंड कर्ड लाइन की कोई भी गाड़ी पा सकता है।

तब रमेंद्र धीरे-धीरे वेटिंग रूम की ओर चला गया।

तेईसवाँ परिच्छेद

संसार के सहज सरल मार्ग में चलते-चलते जो सब नर-नारी कुछ-कुछ अनजान में पहला अपराध करते हैं, उन्हें आत्म-वंचना-जनित आघात, अनुताप और अनुशोचना की ज्वाला संपूर्ण रूप से अभिभूत कर लेती है। विशेषकर जो भावप्रवण होते हैं, वे उस अघात का कठिन रूप से ही अनुभव करते हैं। अभ्यास से फिर क्रमशः उसकी प्रखरता कम होती है। यही जगत् का साधारण नियम है।

रमेंद्र का हृदय पश्चात्ताप की आग में जलकर खाक हुआ जा रहा था। जीवन में इसके पहले उसने कभी ऐसा निंदित काम नहीं किया था। माता की सुशिक्षा के प्रभाव से वह सदा से सत्य, न्याय और महत्त्व की ही पूजा करता आया है। पहले भ्रम से भी कोई अनुचित काम करके उसने अपने जीवन के पृष्ठ में कलंक की रेखा पड़ने का अवकाश नहीं दिया था।

रेलगाड़ी के कमरे में बैठा हुआ रमेंद्र अतीत जीवन का पुंखानुपुंख रूप से विश्लेषण करके देख रहा था। किसी से बातचीत करने को उसका जी ही नहीं चाहता था।

आज दो दिन और तीन रातें रमेंद्र को रेलगाड़ी में ही बीती थीं। एंजिन की गति से भी उसके मन की गति का वेग प्रचंड हो रहा था। घड़ी भर के लिए भी चिंता ने उसे नहीं छोड़ा।

जिसे एक दिन वह धर्मपत्नी के आसन पर बिठानेवाला था, उसी अपापविद्धा नारी से, पर स्त्री से उसने जो बातें उस रात कही थीं, उनका स्मरण करके भी रमेंद्र का हृदय घृणा से संकुचित हुआ जा रहा था। जिसके निकट उसने इतने दिन श्रद्धा

और सम्मान पाया, वह क्या उसे अब कपटी, नीच चरित्र का नारकी कहकर धिक्कार न दे रही होगी ? बचपन का मित्र सुरेशचन्द्र उसके इस नीच, अक्षम्य अपराध का परिचय पाकर उसे क्या समझ रहा होगा ? मित्र कहकर भद्र-परिवार में प्रवेश करने का अधिकार पाने के बाद यदि सभी इसी तरह मित्रता का बदला चुकाने लगें तो पृथ्वी पर मनुष्य कैसे रह सकेंगे ?

शिक्षा का अभिमान ही रमेंद्र का कहाँ रहा ? शिक्षा का फल चरित्र का गठन है। उसने पूर्ण मात्रा में शिक्षा पाई है। तब फिर स्वर्ग से रसातल में उसका यह घोर पतन क्यों हुआ ? इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? माता ? निश्चय ही नहीं।

माँ की याद आते ही रमेंद्र फिर काँप उठा। माता की प्रशांत स्नेह-गंभीर पवित्र मूर्ति उसके मानस नेत्रों के आगे आ खड़ी हुई उसे जान पड़ा, माता के स्नेह-व्याकुल नेत्रों से जैसे आँसू बरस रहे हैं।

असह्य यंत्रणा के कारण रमेन्द्र का सिर चकराने लगा।

बड़े स्टेशन में उस समय बांबे-मेल स्थिर रूप से खड़ी थी। यात्री लोग उतर-चढ़ रहे थे। उस समय प्रातःकाल के सूर्य की किरणें चारों ओर संसार को प्रकाशित कर रही थीं।

गाड़ी की खिड़की से सिर निकालकर रमेन्द्र ने चारों ओर दृष्टिपात किया। यह तो मुग़लसराय स्टेशन है ! यहाँ से उसे दूसरी गाड़ी बदलनी होगी। अवध-रुहेलखंड-रेलवे की गाड़ी यहीं से छूटती है।

बेग हाथ में लेकर रमेंद्र गाड़ी से उतर पड़ा। पूछने से मालूम हुआ, लखनऊ जानेवाली गाड़ी दो घण्टे में छूटेगी। रमेंद्र ने लखनऊ का टिकट ख़रीदा था। इतनी जगहें रहते लखनऊ ही वह क्यों जा रहा था, इसका कोई विशेष कारण नहीं था। पछाँह के किसी बड़े शहर में जाने का उसका विचार था। टिकट ख़रीदते

समय लखनऊ का ही ख़याल आ गया और वहीं का टिकट उसने ख़रीद लिया। कुछ लखनऊ के दर्शनीय स्थानों को देखने की इच्छा से वह वहाँ नहीं जा रहा था। बल्कि शायद लखनऊ में अपना कोई परिचित व्यक्ति न होने के कारण ही वह वहाँ जा रहा था। वह संपूर्ण रूप से अपरिचित स्थान में अपने को निर्वासित करना चाहता था।

कई दिन से उसे जैसे भूख या प्यास कुछ भी नहीं थी। आज भी कुछ विशेष इच्छा नहीं थी। केवल जीवन-रक्षा के लिए कुछ खाना-पीना ज़रूरी समझकर कुछ फल और मिठाई उसने ख़रीदी और अपनी गाड़ी पर सवार हो लिया।

उसके कमरे में केवल एक यूरोपियन यात्री बैठा था। वह एकाग्रचित्त से अख़बार पढ़ रहा था। रमेंद्र एक बेंच पर बैठ गया। खिड़की के पास बैठकर फल खाकर उसने क्षुधा की ज्वाला शांत की। ट्रेन चल खड़ी हुई।

प्रकृति के प्रभाव से किसी का छुटकारा नहीं। अनिवार्य को कौन रोक सकता है? इधर कई दिनों की दुश्चिन्ता और उत्तेजना से रमेंद्र का शरीर थककर शिथिल पड़ गया था। नसें और पट्ठे काम करना नहीं चाहते थे। कुछ भोजन करने के उपरांत उसका शरीर पहले की अपेक्षा ठण्डा हो चुका था। बाहर की ठण्डी हवा ने उसके गर्म मस्तिष्क को स्निग्ध कर दिया। थकी हुई उसकी देह कब निद्रादेवी की गोद में विश्राम करने लगी, यह रमेंद्र को मालूम नहीं हो सका। वह बेख़बर सोने लगा।

मालूम नहीं; कब तक वह इस तरह सोता रहता। सहसा कमरे का दरवाज़ा खुलने, बन्द होने के शब्द और गाड़ी चलने के धक्के ने उसकी नींद उचटा दी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। देखा, पास का यूरोपियन यात्री उतर गया है; किन्तु और हृष्ट-पुष्ट, कोट-पतलून पहने बंगाली सज्जन खड़े हुए अपना सामान सहेज रहे हैं।

उनके साथ सामान कुछ बहुत नहीं था। कुछ फल के झाबे, एक ग्लैडस्टोन बेग, एक छोटा-सा बिस्तर, यही सामान था।

उस भद्रपुरुष ने सहसा रमेंद्र से प्रश्न किया—आप कहाँ जाइएगा?

रमेंद्र ने कहा—लखनऊ। यह कौन स्टेशन है?

वह—परताबगढ़। आप खूब बेखबर सो रहे थे!

कुछ लज्जित भाव से रमेंद्र ने कहा—रात को अच्छी तरह सोया नहीं था।

आगन्तुक भद्रपुरुष की अवस्था अधिक न थी। सम्भवतः ३० या ३२ साल की होगी। मुँह पर हँसी की छाप थी। दाढ़ी फ्रेंचकट थी। सुन्दर चेहरा और ललाट में प्रतिभा की चमक थी। उसके उज्ज्वल दोनों नेत्र ही कहे देते थे कि वह विशेष बुद्धिमान् है।

आगन्तुक ने तीक्ष्ण दृष्टि से सिर से पैर तक रमेंद्र को देखकर कहा—आप कहाँ से आ रहे हैं?

दम भर सोच कर रमेंद्र कह उठा—पुरी से।

वह—लखनऊ में कहाँ उतरेंगे?

लक्ष्यहीन भाव से रमेंद्र ने कहा—इसका कुछ ठीक नहीं। शायद वहाँ रहने लायक होटल मिल जायगा।

कुछ कौतुक की हँसी हँसकर आगन्तुक ने कहा—ओ! आप शायद देश-पर्यटन करने निकले हैं?

रमेंद्र ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। किन्तु भ्रमण के लिए उपयोगी बिस्तर तक उसके पास न था; केवल एक बेग उसके पास था, इससे वह पर्यटक नहीं जान पड़ता था, यही सोचकर रमेंद्र कुछ चंचल हो उठा।

इधर-उधर ताककर आगन्तुक ने प्रश्न किया—मगर देखता हूँ, आपके साथ कोई बिस्तर भी नहीं है।

एकदम अपरिचित के लिए यह प्रश्न अत्यन्त अशोभन था। शायद यही सोचकर आगन्तुक एकदम उठकर हँस पड़ा और बोला—आप कुछ खयाल न कीजिएगा। हम लोग डाक्टर हैं न! आपका चेहरा देखने से जान पड़ता है, आप स्वाभाविक अवस्था में नहीं हैं। इसी से अशोभन होने पर भी मैं यह प्रश्न कर बैठा। विदेश में बंगाली को देख पाकर शिष्टाचार की मात्रा बनाए रखकर चलने का अभ्यास मुझे नहीं है, यही मुझमें बड़ा दोष है। क्षमा कीजिएगा।

रमेंद्र ने हँसते-हँसते कहा—ना, ना, बुरा क्यों मानूँगा? इसमें बुरा मानने की बात ही क्या है? एकाएक लखनऊ की सैर करने को जी चाहा और चटपट चल दिया। सुना है, लखनऊ खूब बड़ा शहर है। जरूरत पड़ने पर हर एक चीज वहाँ खरीदी जा सकती है।

डाक्टर ने हँसते-हँसते कहा—आपका अनुमान मिथ्या नहीं है। लखनऊ बेशक बड़ा शहर है। आप जो खरीदना चाहें, खरीद सकते हैं।

रेलगाड़ी तेजी से चली जा रही थी; सब स्टेशनों में नहीं ठहरती थी।

डाक्टर बाबू चुरुट सुलगाकर खिड़की के पास बैठकर बोले—आप बहुत थके हुए देख पड़ते हैं। अपना बिस्तर बिछा दूँ? आप सो रहिए।

रमेंद्र जम्हाई ले रहा था। बोला—कुछ जरूरत नहीं। रहने दीजिए।

डाक्टर ने बँधा हुआ बिस्तर रमेंद्र की बेंच पर रख कर कहा—अच्छी बात है, बिस्तर खोलकर उस पर सोना न चाहें तो इसे तकिए की जगह सिरहाने रखकर जरा सो रहिए। अभी बहुत दूर जाना है।

रमेंद्र बहुत बात-चीत करना न चाहता था, इस कारण अपनी जान बचाने के लिए उसने ऐसा ही किया।

चौबीसवाँ परिच्छेद

"उठिए, स्टेशन आ गया !"

रमेंद्र बेखबर सो रहा था। डाक्टर बाबू के जगाने पर वह चटपट उठ बैठा।

बड़ा भारी स्टेशन था। यात्री लोग अपना असबाब उतारने में व्यस्त थे। रमेंद्र ने लज्जा कुण्ठितकण्ठ से कहा—बहुत सो गया।

ऊँची हँसी के साथ डाक्टर ने कहा—तो उसमें शरमाने की क्या बात है ? चलिए, उतरिए।

वर्दी पहने हुए एक नौकर ने डाक्टर बाबू को सलाम किया।

"जी हुजूर !" कहकर नौकर ने फुर्ती के साथ डाक्टर का सब सामान गाड़ी के नीचे उतार लिया।

साथ ही रमेंद्र भी गाड़ी से उतर पड़ा।

प्रशांत दृष्टि से उसकी ओर देखकर डाक्टर ने कहा—होटल जाकर व्यर्थ क्यों कष्ट उठाइएगा ? गरीब के घर चलिए, कोई असुविधा न होगी। मैं आपको नहीं छोड़ूँगा, समझे ?

रमेंद्र ने कहा—ना, ना, माफ़ कीजिए, मैं होटल ही जाऊँगा। आपको—

बाधा देकर डाक्टर ने कहा—यह विदेश है। स्वजाति के आदमी को पाकर कोई भला आदमी उसे न छोड़ेगा। आपका कोई उज्र मैं नहीं सुनूँगा जनाब ! मेरे यहाँ काफी जगह है; आपके कारण मुझे कुछ भी असुविधा न होगी। आइए, चलिए।

डाक्टर बाबू ने रमेंद्र का हाथ पकड़ लिया और चल खड़े हुए।

रमेंद्र उस अपरिचित भले आदमी के सरल निष्कपट व्यवहार

से मुग्ध हो गया था; उसे आपत्ति करने का कोई कारण न खोजे मिला।

स्टेशन के बाहर एक पालकी-गाड़ी के ऊपर साईस सामान रख रहा था। डाक्टर बाबू को आते देखकर वर्दी पहने हुए साईस ने गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। रमेंद्र को पहले चढ़ाकर डाक्टर भी उस गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी तेज़ी के साथ स्टेशन रोड नाँघकर अमीनाबाद की ओर चली।

डाक्टर बड़े ही खुशमिज़ाज और भले आदमी थे। घड़ी भर भी चुप बैठना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। वह रास्ते में पड़नेवाले दर्शनीय पदार्थों का परिचय देते हुए चले। नवाब आसफुद्दौला की मूर्खता का परिचय देनेवाली गहरी नहर दिखाकर उन्होंने रमेंद्र को समझा दिया कि गंगा के जल का स्रोत गोमती में लाने के लिए नवाब ने यह नहर खुदवाई थी। फल यह हुआ कि गंगा का जल गोमती में आकर गिरने की अपेक्षा गोमती का ही जल गंगा में जाकर गिरने का संभावना अधिक देख पड़ी।

अमीनाबाद की भीड़ को चीरती हुई गाड़ी कैसरबाग़ की ओर चली। रमेंद्र विस्मय-विस्फारित नेत्रों से नवाबी अमल की इमारतों से शोभित लखनऊ नगर की शोभा देखता हुआ जा रहा था। अपरिचित नए शहर में आकर उस समय वह सचमुच ही जैसे अपने को भूल-सा गया था।

अन्त को गाड़ी एक फाटक पार होकर एक छोटे-से बाग़ के भीतर बनी हुई कंकड़ की सड़क से चलकर एक इकहरे मकान के गाड़ी-बरामदे में आकर ठहर गई। डाक्टर बाबू ने पहले गाड़ी से उतरकर आदरपूर्वक रमेंद्र से उतरने के लिए कहा। नौकर लोग सामान उतार ले गए। दोनों सामने के हाल में पहुँचे।

डाक्टर के अनुरोध से रमेंद्र एक कुर्सी खींचकर उसपर बैठ

गया। नौकर आकर डाक्टर साहब की पोशाक उतारने की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। रमेंद्र को अकस्मात् जान पड़ा, उसका जीवन जैसे ठीक आख्योपन्यास का एक अध्याय है। घड़ी भर पहले तक जिनकी उसने कल्पना नहीं की थी, वैसी ही घटनाएँ इस समय उसकी आँखों के सामने गुज़र रही हैं।

डाक्टर साहब का कण्ठस्वर फिर उसको इस लोक में खींच लाया। डाक्टर पूछ रहे थे—आप हुक्क़ा पीते हैं क्या ?

रमेंद्र ने मुस्किराकर सूचित किया कि वह इस रस से वंचित है।

डाक्टर ने कहा—तो आप प्रेमी पुरुष नहीं हैं।

जोर की हँसी से उस हाल को गुँजाते हुए डाक्टर बाबू ने तमाखू पीना शुरू कर दिया। बढ़िया तमाखू की सुगन्ध कमरे में छा गई।

डाक्टर ने तमाखू पीते-पीते कहा—आपने अभी तक स्नान नहीं किया। जाइए, इस वक़्त अच्छी तरह हाथ-पैर धो डालिए, और साबुन लगाकर खूब मलकर नहा लीजिए।

रमेंद्र को इसमें कुछ आपत्ति नहीं थी। सचमुच आज कई दिन से उसने नहाया न था। तमाखू पीने के बाद डाक्टर बाबू रमेंद्र को साथ लेकर पास के कमरे से मिले हुए बाथरूम (स्नानागार) में ले गए।

डाक्टर यह कहकर चले गए कि "अच्छी तरह नहा डालिए, तबियत ख़राब न होगी। साबुन, तेल, तौलिया सब है। हाँ, वह धोती आपके लिए है। कुण्ठित होने की कोई जरूरत नहीं। मैं बाहर ही हूँ; दरवाजा बंद कर लीजिए।"

डाक्टर बाबू इतना कहकर चले गए। रमेंद्र इस अद्भुत चरित्र-वाले मनुष्य के प्रति आकृष्ट हो पड़ा था। वास्तव में इतने थोड़े समय में एक अपरिचित, संपूर्ण अपरिचित व्यक्ति के प्रति इतनी ममता दिखाते और किसी को उसने कभी नहीं देखा था। कर्त्तव्य-

पालन की ऐसी निष्ठा उसने बहुत कम लोगों में पाई थी। भारत-वासी क्या सभी ऐसे स्वजाति प्रेमी होते हैं।

यह सोचते-सोचते रमेंद्र सामने के आले से साबुन की बट्टी लेकर स्नान करने लगा। बम्बे में पानी था। उसी से उसने खूब मलकर स्नान किया।

अच्छी तरह नहा चुकने के बाद उसे अपना शरीर बहुत कुछ हलका और सुस्थ जान पड़ने लगा। अलगनी पर एक धोती चुनी हुई टँगी थी। उसने धोती लेकर पहनी। उसके बाद कुर्ता पहनकर बाहर आया।

हाल में डाक्टर बाबू उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। टेबिल के ऊपर दो आदमियों के खाने लायक़ तरह-तरह की खाने की सामग्री रक्खी थी। पूरी, तरकारी, फल-मूल, तरह-तरह के अचार-चटनी वग़ैरह।

भूख की ज्वाला की बहुत समय तक उपेक्षा करना मनुष्य के लिए तो असंभव ही है। स्नान करने से रमेंद्र का शरीर सुस्त हो गया था। डाक्टर बाबू के साथ बातें करते-करते रमेंद्र ने जी भर-कर भोजन किया।

डाक्टर साहब जैसे सदानन्द और हँसमुख थे, वैसे ही अतिथि-वत्सल भी। भोजन समाप्त होने पर उन्होंने कहा—आप ज़रा बैठिए। यहाँ काग़ज़, क़लम, दावात, किताबें वग़ैरह सब कुछ है। जो चाहे, पत्र आदि लिखिए, अथवा पढ़िए। मैं भीतर ज़रा जाता हूँ। अभी लौट आऊँगा। जी चाहे तो गोमती के किनारे ज़रा टहल आया जायगा। और देखिए, पास के इस कमरे में आपके सोने की व्यवस्था की गई है। वहीं आपको अपना बेग भी मिलेगा।

डाक्टर अन्तःपुर में चले गये। रमेंद्र ने चारो ओर अच्छी तरह देखा। अब तक उसने अच्छी तरह किसी ओर ध्यान नहीं

दिया था। हाल में कई आलमारियाँ थीं, जिनके पल्लों में शीशे लगे थे। हर एक आलमारी में जिल्ददार किताबें सजाई हुई रक्खी थीं। एक पान खाकर कौतूहलवश रमेंद्र उन पुस्तकों को देखने के लिए उठा। एक आलमारी डाक्टरी की किताबों से भरी थी। उसके पास की आलमारी में विविध विषयों की उत्तम पुस्तकें रक्खी थीं। डिकेन्स, टालसटाय, शेक्शपियर, मिल्टन, सभी के ग्रंथ थे। केवल नाटक, उपन्यास या कविता ही नहीं, इतिहास, विज्ञान, भ्रमण, जीवनी आदि अनेक प्रकार के प्रसिद्ध ग्रंथकारों की पुस्तकें वहाँ देखकर रमेंद्र को आश्चर्य हुआ। अन्त की तीन आलमारियों में विभिन्न भाषाओं की साहित्य की पुस्तकें थीं। रमेंद्र सोचने लगा, यह महाशय कोरे डाक्टर ही नहीं, साहित्य के भी रसिक हैं। पुस्तकें देखते-देखते रमेंद्र चौंक उठा। उसकी "यूथिका" भी डाक्टर बाबू के संग्रह में देख पड़ी।

उसने सोचा, यूथिका के कवि रमेंद्रनाथ के रूप में अपना परिचय देना यहाँ उचित नहीं। हाँ, उसे अपने को छिपाना होगा। कारण, वह इस समय अज्ञातवास कर रहा है। रमेंद्र ने निश्चय कर लिया कि यहाँ वह छद्म नाम से ही अपना परिचय देगा। इस अभिनय में अगर कुछ दोष है तो उसे रमेंद्र अवश्य शिरोधार्य करेगा।

रमेंद्र और किताबें इधर-उधर खोलकर, उठाकर देखने लगा।

इसी समय दरवाज़ा खोलकर डाक्टर बाबू दाखिल हुए।

बोले—किताबें देख रहे हैं ? मेरी घरवाली को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा भारी शौक़ है। बिना किताब के एक घड़ी भी उनका काम नहीं चलता। सच पूछो तो यह दोष मुझ में भी थोड़ा बहुत है। अगर आपको पढ़ने-लिखने का अभ्यास हो तो इनमें से जो किताब देखने को जी चाहे वह निकाल लीजियेगा। इस छोटी आलमारी में नंबरवार कुंजियाँ रक्खी हैं।

रमेंद्र ने हँसकर कहा—आपके पुस्तकालय में तो किताबों का यथेष्ट संग्रह देख पड़ता है। सचमुच यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

डाक्टर बाबू ने हुक्के की नली उठाकर मुँह से लगाई। इस बीच में नौकर चिलम भरकर रख गया था। दो-एक कश खींच-कर उन्होंने कहा—हमारे देश में जितने अच्छे-अच्छे मासिक-पत्र हैं, मेरी स्त्री उन सबकी ग्राहिका हैं। क्या किया जाय! हम दो प्राणी हैं, इसी से जी बहलाने की सामग्री यही पुस्तकें और पत्र हैं।

डाक्टर बाबू हसने लगे।

रमेंद्र इस नवपरिचित व्यक्ति के साथ आलाप करके सच-मुच बहुत प्रसन्न था, उसे इस व्यक्ति के संग से बहुत कुछ शान्ति प्राप्त हुई थी।

सहसा डाक्टर बाबू ने कहा—अच्छा, आपका नाम क्या है? आपको क्या कहकर पुकारा जाय? अजी, जनाब आदि कहना तो संगत नहीं जान पड़ता। आश्चर्य है कि अब तक नाम पूछने का ख़याल ही न आया।

रमेंद्र ने कहा—मुझे आप शिशिर कहकर पुकारिएगा—शिशिर नाथ वसु।

डाक्टर ने कहा—अच्छा नाम तो है! चलिए शिशिर बाबू, जरा टहल आया जाय। आपको कुछ आपत्ति तो नहीं है?

"कुछ भी नहीं" कहकर रमेंद्र चलने को तैयार हो गया।

पचीसवाँ परिच्छेद

किसी तरह क्या मन की उच्छृंखलता कम न होगी? यह उसे कैसी सज़ा मिल रही है? तनिक भी कामकाज से अलग होते ही, दमभर निराले में बैठते ही अजगर के सैकड़ों वेष्टन में कसे हुए जीव की तरह उसका दम क्यों घुटने लगता है? किसी तरह क्या इस यन्त्रणापूर्ण स्मृति से आत्मरक्षा नहीं की जा सकती—छुटकारा नहीं मिल सकता? वह तो मन को धोका देकर, आत्मवंचना करके, जीवन के मार्ग में चलने को राजी नहीं है। फिर मन को उसे शुभ, सुन्दर सरल मार्ग में चला क्यों नहीं पाता?

वह तो प्राणपण चेष्टा करती है, तो भी रमेंद्र की स्मृति—उसके कलुषित स्पर्श की ज्वालामयी स्मृति उसे क्यों नहीं मिलती! ऐसा क्यों होता है? अतर्क के होते ही उस अवाञ्छित स्मृति का चित्र आप ही आप हृदय के भीतर प्रस्फुटित हो उठता है। ना, ऐसी स्थिति में रहना असह्य है। वह विस्मृति के अन्धकार में इस दृश्य को चिर दिन के लिये निर्वासित कर देना चाहती है। किन्तु उपाय नहीं सूझता।

यह चिन्ता, यह मन की अवस्था—सत्य है या मिथ्या? यदि इसे सत्य कहा जाय तो फिर उसमें यन्त्रणा क्यों होती है? सत्य वस्तु में क्या यन्त्रणा का लेश भी रहता है?

उपासना-मंदिर में जाकर उसने जबरदस्ती आचार्य के उपदेशों को गले के नीचे उतारने की चेष्टा की है। किन्तु वे सब उपदेश उसके लिए जैसे प्राणहीन—केवल शब्द समष्टि मात्र हैं। आँखें मूँद उक्त अनन्त सुन्दर के रूप के ज्योति की कल्पना

करते समय भीतर से वह कुछ भी उत्साह नहीं पाती। वैसी साधना तो उसने किसी दिन नहीं की। विश्वास और भक्ति की एकाग्रता क्या किसी दिन उसमें थी? जीवन के मार्ग में उसने जिस प्रणाली से शिक्षा पाई थी, उससे कुछ शब्द एवं प्रचलित उपासना की व्यवस्था ही उसके दिमाग़ में बस गई थी। हृदय का द्वार खोलकर ठीक जगह में उनके पहुँचने का सुयोग और सुविधा नहीं हुई। आँखें केवल मूँद रखने से मनुष्य का मन महाशून्य में डूबता-उतराता है। किन्तु शून्य को पकड़कर मन क्या स्थिर रह सकता है? मन कुछ-न-कुछ निर्दिष्ट वस्तु या लक्ष्य को पकड़े बिना कभी रह ही नहीं सकता? इसी से हताश होकर सीता ने उपासना-मंदिर (ब्रह्मसमाज भवन) में जाना छोड़ दिया है।

जगन्नाथ के मंदिर में अथवा अन्य देवालयों में सैकड़ों यात्री भक्ति के साथ देवता की पूजा करते हैं, यह उसने स्वयं अपनी आँखों देखा है।

आशापूर्ण हृदय से अपने दादा सुरेश के साथ वह कितनी ही बार मंदिरों में गई और फिर लौट आई। किन्तु मनचाही शान्ति ने उसे एक दिन के लिए भी तो नहीं अपनाया, कृतार्थ नहीं किया! रेशमी धोती पहने स्त्रियाँ भक्तिपूर्ण हृदय से देवता की ओर देखकर—उनके दर्शन करके सत्य ही क्या अभीष्ठ फल पाती हैं? उनके प्रफुल्ल-मुख शान्त और स्निग्ध भाव को देखने से तो यही जान पड़ता है, किन्तु वह जो खोजती है, उसे क्यों नहीं पाती?

उसने अपने अन्तःकरण के अन्तस्तल को रत्ती-रत्ती खोजकर देख लिया—उसमें निष्ठा, भक्ति या विश्वास, कुछ नहीं है। ज्ञान उसे इस मार्ग का पता इतने दिनों में भी नहीं दे पाया। उसने विश्व के सृष्टा के निकट आत्मनिवेदन करना नहीं सीखा। फिर उसका उपाय क्या है? किस तरह वह इस अपवित्र स्मृति,

की ज्वाला भूल सकेगी ? कब आत्मरक्षा करने में समर्थ होगी ? यह कैसी ज्वाला है, सो तो कहकर किसी को समझाना अत्यन्त असंभव है। बाहर वह अटल, अचल है, किन्तु भीतर उसका कैसा दीन भाव है ! ओह, कैसी जलन है, कैसी अशांति है, कैसा कठोर प्रायश्चित है !

सीता ने पूर्णरूप से हताश होकर उपासना-गृह में जाना या देवमंदिर की प्रदक्षिणा करना आदि सब छोड़ दिया। आचार्य की वक्तृता, भक्तों का वन्दना गान उसने कान लगाकर सुना, अपने को उन भक्तों के समान बनाने की चेष्टा की, किन्तु एक दिन के लिए भी वह इस कार्य में उत्साह को स्थिर नहीं रख सकी।

इस तरह तो अब चल नहीं सकता। अगर उसके स्वामी आज भी उसके पास होते तो शायद उसे ऐसी अशाँति न भोगनी पड़ती ! सीता फिर सोचने लगी। अच्छा जो स्वामी पास होते तो क्या सचमुच इस पाप-स्पर्श की स्मृति से वह अपनी रक्षा कर सकती ? शायद ऐसा ही संभव होता। लेकिन वह तो उससे सैकड़ों कोस फ़ासले पर हैं। स्थूल शरीर क्या अशरीरी यंत्रणा की दवा हो सकता है ? सीता फिर सोचने लगी।

न समझने की यंत्रणा तो यह है नहीं। वह तो सब समझती है, सब जानती है, तो भी मन के ऊपर उसका अधिकार क्यों नहीं होता ? उद्दण्ड, उच्छृंखल मनोवृत्तिरूप घोड़े को वह अपने क़ाबू में क्यों नहीं रख सकती—उसे सुसंयत क्यों नहीं बना पाती ?

सीता अपने हृदय को विश्लेषणपूर्वक देखने लगी। मनको क्यों नहीं वह अपनी इच्छा के अनुसार चला पाती ?—दुर्बलता, काहे की दुर्बलता—किस की दुर्बलता ? मन की ? मन कितने हैं ? अपनी अवस्था को पुंखानुपुंखरूप से विश्लेषण करके जो समझता है, वह कौन है ? और स्मृति को जो वक़्त-बेवक़्त

अतर्कित अवस्था में भी विचलित कर डालता है, वही कौन है। वह एक है या दो?

इसकी मीमांसा कौन करेगा? सीता तो कर नहीं पाई! तो क्या वह हारकर बैठ जाय? जो अन्याय है, जो लोकाचार और समाज के विरुद्ध है, जो आत्मीय स्वजनों के लिए क्लेशदायक और श्रद्धा-भक्ति के सम्बन्ध में वेदनाजनक है, जिसने उसके मानस राज्य में यंत्रणा, अतृप्ति, अशान्ति और मर्मभेदनी पीड़ा उत्पन्न कर दी है, उसके निकट वह आत्मविक्रय करेगी?

असह्य है!—असह्य है! किन्तु यह यंत्रणा का बोझ छाती पर लादकर उसे हँसना पड़ता है। मनोराज्य में सर्वदा प्रलय की आँधी चलती है, किंतु बाहर वह अपने को स्थिर और धीर दिखाती है—ऐसा करने के लिए वह विवश है।

कैसी कठोर परीक्षा चल रही है! यह दुर्भाग्य का बोझ क्या उसके सिर से उतरेगा नहीं? कौन कहाँ हो तुम देवता? हे ज्योतिर्मय पुरुष, हे दयामय, यदि सचमुच तुम्हारा कहीं अस्तित्व है तो मुझ अभागिनी पर दया करो, तरस खाओ!

ना, सीता का मन उस मार्ग में स्थिर होना नहीं चाहता। यह भी क्या उसके लिए विधि-लिपि है? यही क्या सरयू का कहा हुआ वह अदृष्ट है? यदि वह अदृष्ट ही है तो उसका रचने वाला कौन है? भगवान्। अगर यही बात है तो उन्होंने उसके ललाट में यह विचित्र विधान क्यों किया? संसार में क्या कोई और दूसरा इस कर्मभोग के लिए न था? चुनकर, छाँटकर उसी के ऊपर यह कठोर परीक्षा का प्रयोग क्यों किया गया? भगवान् क्या ऐसे पक्षपाती हैं?

भगवान्! भगवान्! सभी तो भगवान् का नाम लेते हैं; किन्तु वह कैसे हैं? या उनका कैसा रूप है? वह क्या केवल ज्यो-

निर्मेय हैं ? या उनका कोई निर्दिष्ट रूप है ? पृथ्वी पर जो विभिन्न प्रकार के मतवाद प्रचलित हैं, उनमें कौन सत्य है ?

हताश होकर सीता ने यह वितर्क भी छोड़ दिया। मीमांसा करने की शक्ति उसमें नहीं है ! वह यह चाहती भी नहीं। वह केवल यही कामना करती है कि वह अपनी पहले की वही मन की सुस्थ, सबल, उज्ज्वल अवस्था को प्राप्त करे। तथाकथित उपदेश अनुष्ठान सभी उसके निकट तुच्छ हैं; उनका कुछ मूल्य नहीं।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

"सीता, चल बहन, आज तुम लोगों को एक जगह घुमा लावें।"

सीता के दादा जी की आवाज़ स्वभाव से ही स्निग्ध और कोमल थी; किन्तु आज सीता को जान पड़ा, जैसे उस आवाज़ में कोमलता, स्नेह, सहानुभूति और करुणा का अपूर्व उच्छ्वास झलक रहा है। उसने एक बार सुरेश के मुख की ओर देखा!

किन्तु सुरेशचन्द्र के चेहरे में कोई विलक्षणता या नई बात उसे न देख पड़ी। दादा का ऐसा कंठ-स्वर उसने बहुत दिनों से न पाया था।

सीता ने पूछा—कहाँ दादा?

सुरेश—बहुत दूर नहीं, इसी पुरी के भीतर।—मिस मित्र आप भी चलिए।

सरयू कोई काम कर रही थी। वह उसी अवस्था में बोली—मैं तो आज आप लोगों के साथ जा न सकूँगी। मुझे अपनी सखी के यहाँ जाना है। वह यहाँ आई थी। भाभी दो दिन हो आई हैं, आज नहीं जायँगी, यह उससे इन्होंने कह दिया है। मुझे माफ़ कीजिएगा मिस्टर घोष।

सुरेशचंद्र ने मुसकराकर कहा—मिस्टर घोष कहने से मैं अब आपकी बात का जवाब नहीं दूँगा, यह कहे रखता हूँ। मैं बंगाली हूँ, सत्य मैं एक मिनट के लिए भी भूलना नहीं चाहता; और दूसरे को भी यह बात भूलने का अवसर देना नहीं चाहता।

सरयू जोर से हँसकर कहने लगी—यह मैंने मान लिया; लेकिन मुझे मिस मित्र के संबोधन से पुकारकर आपने क्या मेरा

सम्मान बढ़ा दिया है ? आपही ने तो पहले मिस मित्र कहकर मुझे पुकारा था। मैं क्या बेनाम की हूँ ?

अपनी हार स्वीकार करके सुरेश ने कहा—बेशक ग़लती मेरी ही है। आइंदा ऐसी ग़लती न होगी।

सरयू ने कहा—तो फिर आप भी देख लेंगे, मैं भी अब कभी विदेशी प्रथा से आपको नहीं पुकारूँगी।

और समय होता तो शायद सीता इस बहस में शामिल होती; किन्तु इन दिनों उसकी मानसिक अवस्था ऐसी हो रही थी कि ये बातें उसने शायद सुनी ही नहीं, अथवा कानों से सुनने पर भी हृदय पर इनका कुछ असर नहीं हुआ।

वेश-परिवर्तन के उपरान्त भाई और बहन दोनों घर से निकले, सरयू भी दासी के साथ सखी के घर जाने की तैयारी करने लगी।

समुद्र-तट से निकलकर कचहरी की ओर जाने के रास्ते में गाड़ी-अड्डे से एक गाड़ी भाड़ा करके सुरेशचंद्र ने गाड़ीवान को वह जगह बता दी, जहाँ जाना था।

सीता ने एक बार पूछा—दादा, कहाँ जा रहे हो ? बहुत दूर ?

सुरेशचंद्र—ना, बहुत दूर नहीं है, तुम्हें पैदल नहीं ले जाना था इसी से गाड़ी कर ली।

सीता ने फिर कुछ नहीं कहा—। सुरेशचंद्र ने बहन की ओर एकबार देखकर न-जाने क्या सोचकर सड़क की ओर मुँह फेर लिया। सड़क में पहुँचकर गाड़ी जगन्नाथ-मंदिर के विपरीत ओर जाने लगी।

सीता भी शून्य दृष्टि से बाहर की ओर ताक रही थी। बाहर के देख पड़नेवाले पदार्थ उसके चित्त पर कुछ प्रभाव नहीं डाल रहे थे—कुछ भी कौतूहल नहीं उत्पन्न कर रहे थे, देखने से यही जान पड़ता था।

गाड़ी थमने के साथ ही साथ उसकी चेतना जैसे फिर लौट आई। यह कहाँ वह आई ?

फूल-बाग़ के भीतर एक इकमंज़िला घर बना था। गाड़ी रुकने पर सुरेशचंद्र ने बहन को उतारा। विस्मय-विस्फारित दृष्टि से सीता ने देखा, एक बड़े कमरे के भीतर बहुत से लोग जमा हैं। ये लोग कौन हैं? उसका भाई उसे कहाँ ले आया?

दूसरी राह से सुरेशचन्द्र सीता को घर के भीतरी हिस्से में ले चले। एक अपेक्षाकृत छोटे कमरे में जाजिम बिछी थी—दरवाज़े और खिड़कियाँ खुली हुई थीं। भीतर हवा और प्रकाश का प्रवेश यथेष्ट हो रहा था। सुरेशचन्द्र ने सीता से कहा—यहाँ बैठो।

सुरेशचन्द्र के निर्देश के अनुसार सीता जब बैठने लगी तब उसने कहा—वहाँ नहीं, इधर आओ।

यन्त्रचालित की तरह सीता आकर एक खुले द्वार के पास खड़ी हुई; उस दरवाज़े के ऊपर एक पतली हरे रंग की जाली का पर्दा पड़ा था। सीता ने देखा, सामने एक बड़ी-सी दालान है—उसमें बंगाली और उड़िए भले आदमी जमा हैं। उसने समझ लिया, आज यहाँ कोई सभा, है। सभा, समिति, व्याख्यान आदि की ओर सीता का तनिक भी आकर्षण नहीं था। खीझ से उसका मन भर गया।

सुरेशचन्द्र ने प्रसन्न हास्य के साथ कहा—एक ही तरह का जीवन अच्छा नहीं लगता। घर बैठे-बैठे जी ऊबता होगा, इसी से यहाँ ले आया। इसके लिए पछताने की ज़रूरत न होगी। तुम यहाँ बैठो; कोई यहाँ नहीं आवेगा। यहाँ से सब देख पाओगी, सब सुन पाओगी; लेकिन तुम्हें कोई नहीं देख पावेगा। अब मैं उस दालान में जाता हूँ।

सीता के जी में एक बार यह आया कि कह दे, अगर कोई उसे देख लेगा तो उसमें हर्ज ही क्या है? वह तो पर्दानशीन नहीं है कि किसी का सामना होने से संकुचित हो जायगी! दादा तो सब जानते हैं, फिर यह क्यों कहा?

सीता ने सोचा, यह भी उसके दादा के अन्याय अर्थहीन खयालों की तरह एक खयाल है !

सुरेशचंद्र दूसरे दरवाज़े से होकर सभा-गृह में पहुँचा। सीता ने देखा, और एक ओर से गेरुए कपड़े पहने एक लंबे डील का आदमी सभास्थल में उपस्थित हुआ। उसे देखते ही सब लोग आदर दिखाने के लिये उठ खड़े हुए।

आने वाले काषायवस्त्रधारी संन्यासी ने हाथ उठाकर सबसे बैठने का अनुरोध किया। बहुत बार सीता बहुत प्रवीण विचक्षण आचार्यों के व्यख्यान सुन चुकी है; इस कारण व्याख्यान सुनने के लिए उसके चित्त में रत्ती भर भी कौतूहल का उद्रेक नहीं हुआ। किन्तु उस दीर्घकाय सुदर्शन संन्यासी का तेज कुछ ऐसा था कि वह उधर से अपनी आँखों को फिरा न सकी।

दिन का प्रकाश मलिन हो जाने पर सभाभवन में लालटेनें जल उठीं। सीता जहाँ बैठी थी, वहाँ कोई प्रकाश न था। महीन पर्दे के भीतर से वह सब दृश्य स्पष्ट देखने लगी।

वक्ता ने पहले एक संस्कृत का स्तोत्र पढ़ने के बाद व्याख्यान आरम्भ कर दिया। सीता उस समय अपने ही बारे में सोच रही थी, इसी से शुरू की बातें उसने नहीं सुन पाईं।

किन्तु सहसा उसकी चिन्ता का तार टूट गया। दूर बन-प्रांत में मधुर स्वर में, बाँसुरी बज उठने पर मृगी जैसे कान उठाकर उसे सुनने लगती है, सीता भी ठीक उसी तरह वक्ता की बातें सुनने लगी।

संगीत के छन्द की तरह मधुर वाक्यधारा वक्ता के मुख से निकल रही थी। सीता के हृदय में कौतूहल जाग उठा। ऐसे मधुभरे ओजस्वी कण्ठ से ऐसे ढंग से दी गई वक्तृता सचमुच पहले कभी उसने नहीं सुनी थी। किसी भी धर्मसभा में किसी भी प्रसिद्ध आचार्य के कण्ठ से ऐसा व्याख्यान पहले उसने नहीं सुना, इस बात को उसने अकुण्ठित चित्त से स्वीकार कर लिया।

वक्ता के कण्ठ का स्वर कभी समुद्र-कल्लोल के समान गंभीर और कभी पत्थरों से टकरानेवाली नदी की तरह अस्पष्ट उच्छ्वास से स्निग्ध हो उठता था। सीता यद्यपि आरम्भ से उधर मन नहीं लगा सकी थी, तथापि कुछ ही ध्यान देने से उसकी समझ में आ गया कि वक्ता सेवाधर्म की व्याख्या कर रहे हैं। साथ ही साथ वह समझा रहे थे कि हिंदू लोग कुसंसर्ग में पड़कर किस तरह स्त्री-जाति को माता के रूप में देखना भूल गए हैं। जिस मातृभाव का अनुशीलन हिंदू-जाति के अस्थिमज्जागत था, जिस जाति की साधारण नीति "मातृवत्परदारेषु" थी, जो जाति महाशक्ति को जगदम्बा के रूप में जानती और मानती थी, आज दुर्दिन में वही हिंदू जाति विदेशियों के संसर्ग में पड़कर अपनी पूर्वनीति को भूल गई है, स्त्री को विलास और भोग की सामग्री समझकर सर्वनाश के मार्ग में सरपट आगे बढ़ती जा रही है।

सीता साँस रोके हुए वक्ता की बातें सुन रही थी, उसके कानों में जैसे अमृत की वर्षा हो रही थी। जिस हृदय में कुछ भी आग्रह या उत्साह न था, उसी में जैसे गंभीर आवेग और उत्तेजना का प्रवाह बह चला!

वक्ता के सौम्य मुखमंडल में उज्ज्वल प्रकाश पड़ने से तेज सौगुना झलक रहा था। उनकी बातें हृदय के भीतर से निकल रही थीं, उनमें कुछ भी कृत्रिमता न थी, इसी कारण हर एक श्रोता के मन को वे अपनी ओर आकृष्ट कर रही थीं और हर एक के हृदय में पत्थर की लकीर की तरह अंकित होती जा रही थीं। जैसे ध्यानस्थ होकर साधना से प्राप्त तत्त्व की बातें वह अपने शिष्यों के आगे विश्लेषण करके दिखा रहे थे। रटा हुआ पाण्डित्य इस प्रकार इस तत्त्व का आभास देने में कभी किसी समय नहीं समर्थ हुआ। उनका एक-एक शब्द सीता के हृदय के भीतर प्रवेश करके उसके संपूर्ण हृदय को जैसे आलोकित करने

लगा। वह कह रहे थे—माता को भूलकर हिन्दू-जाति आज जगदम्बा की पूजा करना भूल गई है। इसी से आज कामना के बवंडर में पड़कर वह दिग्भ्रांत हो रही है! हिन्दू पुरुष आज मातृ जाति को माता के भाव से देखना भी भूल बैठे हैं, मातृसंबोधन से पुकारना तो दूर रहा! उनके काव्य और साहित्य में भी धीरे-धीरे लालसा और वासना का महापात प्रवेश कर रहा है! घोर तर जड़ की पूजा, जड़ की सेवा भारत की विशेषता को ग्रसे लेती है! पुरुष अधःपात की चरम सीमा में उतरता चला जा रहा है और अपने साथ ही मातृजाति को भी घसीटे लिये जा रहा है!

भाषा का ऐसा अपूर्व विन्यास, कण्ठस्वर का ऐसा अपूर्व आकर्षण, युक्ति का ऐसा अमोघ प्रयोग सीता के लिए बिलकुल नया था। स्वदेश के नर-नारियों की दुर्गति का चित्र खींचने के समय वक्ता के कण्ठ का स्वर जैसे व्यथा के मारे भारी हो उठता था। जैसे युग-युग की संचित क्रन्दन-ध्वनि प्रति शब्द के साथ उनके हृदय से निकल रही थी। सीता के हृदय के भीतर भी व्यथा जैसे उमड़ उठी, आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। बहुत दिनों से वह कभी इस तरह रोई नहीं थी!

वक्तृता न जाने कब बन्द हो गई थी, श्रोतागण भी उठकर चले गए थे; किन्तु सीता को इसका कुछ भी होश न था। वह केवल उस अँधेरे कमरे के भीतर बैठी अपरिचित वक्ता की बातों को ही सोच रही थी—"हिन्दू पुरुष नारी जाति को माता कहना भूल गए हैं, हिंदू स्त्रियाँ भी मातृभाव की चर्चा—परपुरुषों को संतान की तरह समझना भूलती जा रही है। इसी से हिंदू जाति की विशेषता आनन्द, ह्री और श्री राह की धूल में लोट रही हैं।"

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

सहसा प्रकाश आने से घर का अँधेरा दूर होने पर सीता को जैसे होश आया। उसने देखा, उसके दादा के पीछे वही दीर्घाकार प्रियदर्शन महापुरुष आ रहे हैं।

सुरेश ने कहा—गुरुदेव, यही मेरी बहन सीता है।

सीता चौंक उठी। दादा ने किसे गुरुदेव कहा? सीता ने विह्वल दृष्टि से सुरेशचन्द्र के मुख की ओर देखा।

सुरेश शायद अपनी बहन के मन का भाव समझ गया था। उसने बहन के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—सब बातें तुमसे घर पर चलकर कहूँगा।

आगन्तुक ने कहा—यही तुम्हारी बहन हैं सुरेश? तब तो वह मेरी और एक मा हैं।

सीता का सिर सहसा किसी के आगे झुकता नहीं था; किन्तु न जाने कब अज्ञातरूप से आप ही-आप उसका मस्तक उस गैरिक बसन-धारी प्रौढ़ सन्यासी के चरणों पर झुक गया, उसे कुछ खबर ही नहीं हुई।

"बस हो गया मा, उठो, बैठो। आशीर्वाद करता हूँ, आनन्द और शान्ति प्राप्त करो।"—यह संन्यासी ने कहा।

यह आशीर्वाद सिर्फ़ ज़बानी नहीं, जैसे हृदय के अन्तस्तल से निकला था।

संन्यासी महाराज सीता के समीप ही कुछ हटकर बैठ गए!

सुरेशचन्द्र ने कहा—आपके श्रीमुख की मधुर बानी सुनने का सौभाग्य सभी को नसीब नहीं होता। मेरी बहन शायद आपके विश्व-विश्रुत नाम को अवश्य सुन चुकी होगी; किन्तु आपकी

मनोहर और उपयोगी वक्तृता सुनने का सौभाग्य शायद इसे इस जीवन में फिर प्राप्त न हो सके, यही सोचकर मैं आज इसे यहाँ अपने साथ ले आया।

संन्यासी ने कहा—अच्छा किया सुरेश !—माता, यहाँ तुम्हें किसी प्रकार का संकोच न करना चाहिए। तुम अच्छी तरह बैठो। मैं तुम्हारी सन्तान हूँ।

इसमें संदेह नहीं कि सीता विस्मय से अभिभूत हो रही थी। उसका भाई जिस समाज का आदमी है, उस समाज में इस तरह के साधु-संन्यासियों का संसर्ग कहाँ ! उसके भाई का संपूर्ण रूप से एक हिंदू-संन्यासी का भक्त-शिष्य होना भी एक बड़े ही विस्मय की बात है। लेकिन इसके साथ ही जब उसने अच्छी तरह स्वामी जी की ओर देखा, तब उसे देख पड़ा कि इस अपरिचित संन्यासी के चेहरे पर और आँखों में बच्चों की-सी सरलता झलक रही है।

रामप्रसाद कवि के पद का एक चरण गुनगुनाते हुए स्वामीजी कह उठे—एक दिन अपनी मा के हाथ की रसोइँ खानी है। यहाँ एक ही तरह का ठाकुर का प्रसाद खाते-खाते जी ऊब गया है।—क्यों मा, खिलाओगी न ?

इस तरह बच्चों की-सी याचना, ऐसी सरल हृदय की अनाडम्बर बात सीता के लिए एक बिलकुल नई बात थी। उसके हृदय का सोया हुआ मातृभाव जैसे आज जाग उठा था। यह अनुभूति उसके लिए जैसी अपूर्व, वैसी ही आनन्ददायक थी। हर्ष और आनन्द के आवेश में वह कह उठी—कल सबेरे दया करके मेरे यहाँ पधारिएगा क्या ?

खुले हृदय की उच्च स्वर की हँसी हँसकर स्वामीजी ने कहा—मा, तुम्हारा यह लड़का बड़ा पेटू है। निमंत्रण मिलने पर, खास कर मा के हाथ का बना भोजन पाने की संभावना होने पर, तो उस सुयोग को यह कभी हाथ से जाने नहीं देता।

कैसी मधुर, कैसी सरल, कैसी मनोहारिणी उक्ति थी! सीता ने अनुभव किया, जैसे स्वामीजी की स्नेह-दृष्टि में एक साथ पर-लोकगत पिता और माता की स्नेह-माधुरी-परिपूर्ण वात्सल्य दृष्टि झलक रही है।

इतने में दूसरे कमरे से किसी ने पुकारकर कहा—भाई सुरेश, तुम्हारी चाय तैयार है।

इस प्रेमानन्द के परिचित स्वर के सादर आह्वान को सुनकर सुरेश ने सीता से पूछा, क्या वह भी एक प्याली पिएगी? सीता ने सिर हिलाकर न पीने की इच्छा प्रकट की।

स्वामीजी की अनुमति लेकर सुरेश चाय पीने चले गए। स्वामीजी सीता के साथ तरह तरह की बातें करने लगे।

थोड़ी ही देर में सीता ने समझ लिया कि आज सचमुच उसे ऐसा एक मनुष्य मिला है, जिसके निकट शंका या संकोच की कोई आवश्यकता नहीं। बीसवीं शताब्दि में ऐसे मनुष्य का होना भी संभव है, यह धारणा ही सीता को न थी। सीता को अपने धर्म-संप्रदाय के कई एक धार्मिक उदार-हृदय सज्जनों का हाल मालूम था; किन्तु यथार्थ में शिशु की तरह सरल होने पर भी असाधारण पंडित और अपूर्व तत्त्वदर्शी ऐसा आदमी उसने इससे पहले नहीं देखा था। उसकी समझ में आ गया कि उसके भाई जैसे आदमी ने इनको अपना गुरु क्यों बनाया है।

स्वामीजी कह रहे थे—मा, संसार में मा होने के समान और आशीर्वाद नहीं है। मातृत्व के विकास से ही नारी चरम लक्ष्य को पहुँच सकती है। प्राच्य देश के लोगों ने इस तथ्य को खूब अच्छी तरह समझ लिया था; किन्तु पश्चिम के लोग इस महत् सत्य को इस ओर से ग्रहण नहीं कर पाये। इसी से पश्चिम यद्यपि जड़ विज्ञान में बड़ा है, तथापि मैं कहूँगा कि वह दुखी है। एक दिन भारतवर्ष के इस परम तत्त्व को वे समझ सकेंगे। आज सभा में

यही बात समझाने की मैं चेष्टा कर रहा था। मा, तुमने लिखना-पढ़ना सीखा है। अब तुम्हें उचित है कि सारे देश में तुम वही पहले का भाव लौटा लाओ। देशवासियों को फिर मा कहना, नारीजाति को मातृदृष्टि से देखना सिखाओ। तभी यहाँ के पुरुष मनुष्य बनेंगे और मा, तुम लोग भी धन्य होओगी।

संन्यासी के नयनों में एक अपूर्व प्रकाश उज्वलित हो उठा। सीता मुग्ध हृदय से सुन रही थी। सहसा वह गुनगुनाकर अस्पष्ट स्वर में बोली– मुझे बड़ी मानसिक अशान्ति है। इस अशान्ति की ज्वाला असह्य है ! भूलने का कोई उपाय है क्या ?

स्वामीजी दमभर सीता की ओर ताकते रहे। उनका प्रसन्न मुख मंडल और भी उद्दीप्त हो उठा। स्निग्ध स्वर में वह कह उठे—मा, अशान्ति तो मनुष्य स्वयं तैयार करता है। उसकी दवा तो खुद तुम्हारे ही पास है।

सीता का मुख आज जैसे खुल गया था—उसके हृदय के भीतर इतने दिनों से जो मैल जम रहा था, वह जैसे आप ही बाहर निकलना चाहता था।

निराशा से जड़ित स्वर में वह बोली—कहाँ ! कहाँ है वह दवा, मैं तो नहीं जानती ! मन की जलन से मैं तो जलकर खाक हुई जा रही हूँ।

आँखें मूँदे सोचते रहकर स्वामीजी हँस पड़े। वह हँसी जैसी स्निग्ध और माधुर्य से पूर्ण थी, वैसी ही पवित्र भी। वह बोले—मा लक्ष्मी, तुम सुरेश की बहन हो, अच्छी तरह लिख पढ़ भी चुकी हो; किन्तु वह विद्या तुमको ज्ञान के राज्य तक नहीं पहुंचा सकी। विद्या सब समय यह कर भी नहीं सकती। आज कल की शिक्षा-प्रणाली में यह बहुत बड़ी कमी है। भक्ति के रसमाधुर्य का उपभोग करने की राह तुम्हें नहीं ढूँढे मिली। कारण, वैसी शिक्षा पाने का अवसर तुम्हें नहीं मिला। इसी से तुम्हें यह मानसिक

संताप सता रहा है। मैं तुमको एक राह का पता बताए देता हूँ। उसी में सब पाओगी मा। जीव-सेवा—कर्म समुद्र में फाँद पड़कर जीव-सेवा में अपने को लगा देने से ज्ञान और भक्ति, दोनों आप ही प्राप्त होंगे। तब विश्व-देवता की आनन्दघन ज्योति के सागर में गोता लगाकर सब ताप, सब जलन भूल जाओगी।

तीव्र आग्रह के साथ सीता कह उठी—क्या ऐसा होगा? क्या मैं शान्ति पाऊँगी? मेरे पापी मन की सब बातें आप—

बीच ही में रोककर स्वामीजी ने कहा—मा, लड़के के आगे क्या सब बातें खोलकर कहने की आवश्यकता होती है? मा की व्यथा, माकी यंत्रणा को तो लड़का मा का मुँह देखकर ही समझ लेता है। ऐसा न हो तो समझो, वह लड़का ही नहीं है।

दाहने हाथ की तर्जनी उँगली उठाकर उसे बहुत ही कोमल भाव से सीता के ललाट में छुआ कर स्वामीजी ने कहा—मैं भगवान के निकट प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे मन की यह सब ग्लानि जाती रहे मा!

सीता के शरीर में अकस्मात् उस स्पर्श के साथ ही जैसे एक आनन्द का कंपन लहरा गया। यह क्या उसके चिन्ता से पीड़ित मन की कोरी कल्पना ही थी? या सचमुच किसी-किसी मनुष्य की स्पर्श-शक्ति का ऐसा प्रभाव होता है?

आँखें मूँदे हुए संन्यासी ने कहा—अशान्ति और यंत्रणा की बात क्या कहती हो मा! प्रायः २५ वर्ष पहले एक दिन ऐसा ही अशान्त, अभिशप्त मन लिये हुए राह-राह मारा-मारा फिरता था। संसार में सब कुछ रहते भी कुछ नहीं था। एक दिन रात को गंगातट पर एक महापुरुष से भेंट हो गई। उन्होंने कान में मंत्र दिया, राह दिखा दी (इस उपन्यास का आरंभ देखो), मैं कर्म सागर में फाँद पड़ा। कैसी मुक्ति, कैसा आनन्द प्राप्त हुआ यह मैं ही जानता हूँ। उसी आदर्श महापुरुष की आज्ञा से लगभग

सारी पृथ्वी में घूमकर उनके आदर्श का प्रचार करता घूम रहा हूँ। अब केवल आनन्द है, केवल तृप्ति है!

सीता विस्मय से अवाक् होकर सोचने लगी, यह मनुष्य रटी हुई बातों की तरह केवल जबानी जमा-खर्च नहीं कर रहा है। तत्त्व दर्शन किये बिना ये बातें इस तरह कोई नहीं कह सकता। सत्य ही ऐसे मनुष्य के चरणों के नीचे बैठ कर जीवन धन्य हो उठता है।

"तुम्हारा चाय पीना समाप्त हो गया सुरेश?"—स्वामीजी ने वहीं से प्रश्न किया।

"जी हाँ, आता हूँ" कहकर सुरेश ने उसी कमरे में प्रवेश किया। एक बार बहन की ओर दृष्टिपात करके वह बैठ गया।

स्वामीजी ने पूछा—तुम लोगों को यहाँ आये आज कै दिन हुए सुरेश?

सुरेश—पाँच-छः दिन।

स्वामी—यहाँ से कब जाने का इरादा है?

सुरेश—बहुत दिन नहीं ठहरूँगा। २-४ दिन में ही चला जाऊँगा। आपकी क्या कोई आज्ञा है?

स्वामी—अब यहाँ से कहाँ जाने का विचार है?

सुरेश—कुछ निश्चय नहीं किया; हाँ, कलकत्ते लौटने का विचार है।

स्वामी—अच्छी बात है। लेकिन एक बार बंगाल के गाँवों में अगर घूम आओ तो अच्छा हो। तुम्हारे जैसे उच्चशिक्षित उदार-हृदय पुरुष केवल सैर के लिए देश में घूमें और कोई उपयोगी काम न करें, यह तो ठीक नहीं। कर्म-सागर में फाँद पड़ो भैया। देश तुम लोगों से बहुत कुछ आशा करता है। पूर्व-बंगाल में जरा घूमो-फिरो। वहाँ तुम्हारे लिए बहुत कुछ करने को है। आज का अखबार तुमने पढ़ा है क्या?

सुरेश—आप पूर्व-बंग के दुर्भिक्ष की बात कह रहे हैं ?

स्वामी हाँ, तुम्हारे समान जिनके हृदय है, उत्साह है, वे अगर इस प्रकार का उत्तर न दें तो कौन देगा ?

यों कहते-कहते स्वामीजी ने सीता की ओर प्रशांत दृष्टि से देखकर कहा—मा, जीव सेवा में मनुष्य सब ज्वाला-यंत्रणा भूल जाता है, यह भगवान् का विधान है। इसके द्वारा मनुष्य को अनंत सुंदर भगवान् के दर्शन अवश्य प्राप्त होते हैं। अपने दादा के साथ तुम भी एक बार उधर हो आओ।

सुरेशचंद्र बोले—अच्छा तो आज हमें जाने की आज्ञा दीजिए। रात हो गई।

भाई और बहन दोनों ने झुककर स्वामीजी को प्रणाम किया।

सीता ने कोमल स्वर में कहा—तो फिर कल सबेरे कृपा करके हमारी कुटी में पधारना होगा।

संन्यासी ने हँसकर कहा—निश्चय ही आऊँगा मा। सुरेश, तुम्हारा प्रेमानंद भी मेरे साथ आवेगा। वह भी मेरे ही समान पेटू है।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

रास्ते में भाई और बहन के बीच विशेष कुछ बात चीत नहीं हुई। सीता के अंतरतम प्रदेश में आशा की एक क्षीण रेखा जैसे जल उठती थी। क्या वह सचमुच इस व्याधि से छुटकारा पावेगी? आश्रम में आने के समय वह बोझ से दबा हुआ मन लेकर आई थी, किंतु जाते समय वह कुछ-कुछ हल्का जान पड़ता था।

यह स्वामीजी कौन हैं, यह उसे अब भी नहीं मालूम था; किंतु इसमें संदेह नहीं कि ऐसा विचित्र मनुष्य तो उसने और नहीं देखा। यह क्या कुछ मंत्र-तंत्र जानते हैं? ना, सीता इन बातों पर विश्वास नहीं करती। किंतु कैसे आश्चर्य की बात है कि इस सदानंद मनुष्य को देखने से जैसे मनमें एक अपूर्व आनंद का संचार होता है।

उसने अपना कुछ भी हाल तो नहीं कहा, तथापि आईने में प्रतिबिम्बित चित्र की तरह इस संन्यासी ने उसका सारा हृदय जैसे देख लिया। कम-से-कम सीता को तो ऐसा ही जान पड़ रहा था। लकिन उन्होंने भी मुख से कोई बात नहीं निकाली! सत्य ही क्या वह उसके मन की भीषण व्याधि का इतिहास जानते हैं? लेकिन यही कैसे संभव है? उसने अपने मुख से तो कुछ भी नहीं कहा। स्वामीजी का स्पर्श भी कैसा पवित्र और शांति-दायक है! सारी जलन जैसे दम भर में बुझ गई थी। सतोगुणी व्यक्ति का स्पर्श क्या सत्य ही शांतिदायक होता है? या यह भी केवल उसकी कल्पनामात्र है? दो प्रकार के स्पर्शों का उसे हाल ही में अनुभव हुआ है। दोनों में कैसा अंतर है? रमेंद्र के स्पर्श

और वाक्यों में उसके भीतर छिपी हुई कुवासना की मूर्ति स्पष्ट प्रकट थी। नहीं तो सीता को इस तरह जलन और अशांति का अनुभव क्यों होता? और स्वामीजी के अत्यन्त कोमल स्पर्श से क्यों उसके शरीर और मन में शांति की लहर दौड़ गई? कौन जाने!

सड़क की ओर मुख किये सीता बैठी थी। क्लिष्ट और विषाद भरे दोनों नेत्र उठाकर उसने एक बार अपने पास बैठे हुए दादा की ओर देखा। सड़क की लालटेनों के धीमे धुँधले प्रकाश में उसे देख पड़ा कि सुरेशचंद्र उसी की ओर ताक रहा है।

सुरेश ने पूछा—मुझ पर क्या नाराज हो बहन?

दादा का प्रश्न सुनकर सीता को विस्मय हुआ। उसने कहा—नाराज हूँ? तुम पर? क्यों?

सुरेश—स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिए तुमको ले आया, इसलिए। सरयू के साथ उसकी सखी के घर जातीं तो शायद तुम्हें अधिक आनन्द आता।

सीता—नहीं, यहाँ आकर ही मैं फायदे में रही दादा। अच्छा, इन स्वामीजी के साथ तुम्हारी कितने दिनों की जान-पहचान है दादा?

सुरेश ने कहा—बहुत दिनों की। अच्छा, वह स्वामीजी तुमको कैसे जान पड़े?

सीता ने कहा—बड़े अच्छे और सज्जन हैं दादा। मैंने तो ऐसा साधु आज तक नहीं देखा था दादा।

मुसकाकर सुरेशचंद्र ने कहा—इसी से तो तुमको ले आया था।

सीता फिर सोचने लगी। उसके दादा को क्या उसके मन का हाल मालूम हो गया? उन्होंने क्या उसके भाव-विषय को लख लिया। इस स्वल्पभाषी अथवा सदानंद मनुष्य को पहचानना या जानना तो कुछ सहज नहीं। सत्य ही क्या उसका भाई कुछ अनुमान कर पाया है? मगर यह कैसे हो सकता है? उस विप्लवमयी

रात्रि का हाल तो और कोई तीसरा जानता ही नहीं; बिना कहे जान ही नहीं सकता। इसमें संदेह नहीं कि उस रात की वह बात लज्जाजनक है; किंतु वह उसे छिपा रखना भी नहीं चाहती। अपराधी किसी को बनाना नहीं चाहती, किसी दूसरे के सिर दोष मढ़ना नहीं चाहती। दोष जो कुछ है, सो सब उसी का है। उसके व्यवहार में जाहिरा तौर से भले ही न हो, लेकिन उसके अंतस्तल में अवश्य ही गुप्त रूप से कुछ ऐसा था, जिसने स्पष्ट न होने पर भी रमेंद्र को प्रलुब्ध किया, उसके चित्त में विकार उत्पन्न किया। बातचीत में, व्यवहार में, अथवा कार्य में प्रकट न होने पर भी हृदय के गोपन अंत पुर में फल्गु नदी की धारा के समान अदृश्य रूप से जो भाव-धारा वहती है, उसमें एक खिंचाव अवश्य रहता है। जो भावधारा हजार कोस दूर पर रहने वाले किसी नर या नारी के हृदय में बहती है, उसी एक ही भाव धारा की उत्पत्ति जब संपूर्ण अपरिचित अथवा समभाव-विशिष्ट भिन्न-प्रांतवासी नर या नारी के हृदय में संभवपर है, ऐसा वैज्ञानिक पण्डितों ने सिद्ध कर दिखाया है, तब यहीं, जो वह अपने हृदय के गुप्त भाव के विषय में सोचती है, कैसे असंभव हो सकता है? टेलीपैथी के अनुवंतत्त्व की बात वह अपने स्वामी के निकट सुन चुकी और पुस्तक में भी पढ़ चुकी है। अतएव वह अपने को अपराध मुक्त नहीं समझ सकती।

सोचते-सोचते उसने निश्चय कर लिया कि वह अपनी दुर्बलता को स्वामी से नहीं छिपावेगी। इस बात को स्वामी के आगे प्रकट न करने से उसका धर्म और सत्य-निष्ठा अव्याहत नहीं रहेगी। अच्छा, क्या वह इसे सुनकर हृदय में व्यथा पावेंगे? संभव है। लेकिन इस डर के मारे स्वामी से कुछ भी गोपनीय—छिपाने योग्य—नहीं हो सकता।

स्वामीजी की अन्तिम बातें उसे याद आ रही थीं।—"मा की जाति होकर पुरुषों को मा कहना सिखलाओ। मातृमन्त्र के प्रचार

में सहायक बनो। कर्म-समुद्र में फाँद पड़कर सरल भाव से जीव-सेवा में लग जाओ। तब अनन्त सुन्दर ईश्वर की आनंदघन मूर्ति तुम्हारे हृदय में प्रकट होगी। सारी जलन और अशान्ति तब दूर हो जायगी।"

कैसी दृढ़ आश्वास-वाणी है! ऐसे एकांत भरोसे के साथ, इतने सीधे ढंग से ऐसी बातें कौन कह सकता है?—रमेंद्र रमेंद्र!

जाने दो, उसकी याद भी हृदय से मिट जानी चाहिए।

गाड़ी घर के दरवाज़े पर आकर रुक गई।

घर के भीतर प्रवेश करते ही बसन्त की हवा के झोंके की तरह तेज़ी से पास आकर सरयू ने कहा—इतनी रात तक आप लोग कहाँ थे, बतलाइए?

सुरेश ने हँसकर कहा—आप तो लौट आईं?

सरयू—लौट न आती? आप लोगों की तरह क्या रात के नौ-नौ बजे तक हवा खाती फिरती?—सच भाभी, तुम कहाँ गई थीं?

सीता के उत्तर देने के पहले ही सुरेशचंद्र बोले—आप अनुमान कीजिए न।

सरयू—खूब! मैं कुछ ज्योतिष तो पढ़ी नहीं हूँ, जो गणित करके बतला दूं! गए आप लोग और अनुमान करूँ मैं! यह तो व्यवस्था बड़ी अच्छी है!

सीता बोली—संन्यासी के आश्रम में गई थी।

बड़े-बड़े दोनों नेत्र फैलाकर सरयू ने कहा—संन्यासी के आश्रम में! कहाँ वह कौन हैं?

सीता—दादा के गुरु—स्वामीजी।

सरयू के ओंठ फड़क उठे। मृदु हँसी की रेखा ने उसके निर्मल मोती-से दाँतों की शोभा को बढ़ा दिया। वह हँसी क्या विद्रूप या अविश्वास की थी?

सरयू ने कहा—सुरेश बाबू, आप क्या अन्त को संन्यासी के

आश्रम, स्वामीजी आदि के चक्कर में पड़ गये? आप इन सब पर विश्वास करते हैं? हमारे समाज के लोग आप को अपने बीच से अलग न कर देंगे? देखती हूँ, आप अंत को घोर मूर्तिपूजक हो उठे! छिः!

खिड़की खुली हुई थी। समुद्र के जल में चौदस के चंद्रमा की चाँदनी फैली हुई थी। उद्ध्‌र्वबाहु लहरें जैसे चंद्रमा की किरणों की ओर विह्वल होकर उछल रही थीं। सुरेशचंद्र की हृदय-वीणा में कवि की यह उक्ति बज रही थी—"नील गगन के असीम तल में बिखर रही थी चंद्र-चाँदनी।"

सरयू की उक्ति सुनकर उसने उसकी ओर मुँह फेरा! सुरेश के मुख पर सहसा गंभीर भाव छा गया, उसने कहा—आप क्या समझती हैं कि मनुष्य का ज्ञान, मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य की अभिज्ञता चरम सीमा को पहुँच गई है? मैं जो कुछ जानता हूँ, उससे अधिक जानने को क्या कुछ भी नहीं है? हमारे संप्रदाय की बात आप कह रही हैं? किंतु सच कहिएगा, वे लोग (ब्रह्मसमाजी) ही किस चरम तत्त्व या परम सत्य की स्थापना कर सके हैं? खाली थोड़ा सा सत्य का आभासमात्र उन्होंने खोजा है; उसमें भी कितना मत-विरोध देख पड़ता है! ससीम मनुष्य असीम विश्व का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है? आप को आज जो कुछ गँजेड़ियों की गप या अविश्वास के योग्य ज्ञान पड़ता है, वह सत्य है या नहीं, यह किसी दिन आपने जाँचकर देखा है क्या? विदेशी सभ्यता का चश्मा लगाकर सब बातों का विचार करने से प्रायः धोखा खाना पड़ता है। मैंने इतने दिनों मे केवल इतना ही ज्ञान प्राप्त किया है।

कहते-कहते सहसा सुरेशचंद्र के प्रशान्त मुख में जैसे एक प्रकाश की रेखा उज्ज्वल हो उठी। वह बोला—मूर्तिपूजा की बात को ही ले लीजिए। इस विषय में आपके साथ बहस करने

की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो देखता हूँ, सभी मनुष्य किसी-न-किसी एक निर्दिष्ट आकार की उपासना करते हैं। कोई ज्योतिर्मण्डल को और कोई हाथ-पैर आदि अंगों से युक्त किसी मूर्ति को अपने ध्यान और उपासना का विषय चुन लेता है। खैर जाने दो, इसमें भी बहस की गुंजाइश है, कोई फ़ैसला न होगा। किन्तु एक बात आप जान रखिए कि हमारा संप्रदाय कहकर आप जिसकी ओर इशारा कर रही हैं, वैसे किसी संप्रदाय का मैं भक्त या कायल नहीं हूँ। मैं सत्य का उपासक हूँ, तत्त्व का भक्त हूँ, तथ्य की आराधना करनेवाला हूँ। जहाँ इन बातों को पाऊँगा, उसी को मानूँगा। और, यह भी याद रखिए कि किसी सत्य की प्राप्ति के लिए अपने समाज या धर्म को छोड़कर अन्य समाज या धर्म के रजिस्टर में नाम लिखाने नहीं जाऊँगा। सत्य की खोज के लिए इसकी मैं आवश्यकता नहीं समझता। मेरी समझ में ऐसा करना केवल अपने को और संसार को धोखा देना है।

सुरेशचन्द्र की ये उत्तेजनाशून्य अथच दृढ़ता से परिपूर्ण बातें सुनकर सरयू कुछ देर तक निस्तब्ध हो रही। सीता भी अपने दादा की ओर देखकर कुछ जैसे सोचने लगी।

कण्ठ-स्वर को साफ़ करके सरयू ने कहा—आप हिंदू-धर्म पर विश्वास रखते हैं?

सुरेश—हज़ार बार! और यह प्रश्न ही व्यर्थ है। हम हिंदू होकर हिंदू-धर्म को न मानें, यह कैसे हो सकता है?

सरयू—हम हिंदू हैं? सो कैसे?

सुरेश—आपको मेरी बात से विस्मय हो रहा है! हम हिंदू हैं—बंगाली हैं, हमारे पूर्व-पुरुष जिस धर्म पर विश्वास रखते थे, उस पर अविश्वास करने का हमको क्या अधिकार?

सरयू—किंतु आपके पिता—

बाधा देकर सुरेश ने कहा—ओह, समझ गया। आप मेरी

बात का ठीक मतलब बिलकुल ही नहीं समझ पाईं। हमारे वर्तमान संप्रदाय का जो धर्म-मत है, वह क्या हिंदू-धर्म का ही अंश नहीं है? राजा राममोहन राय संस्कार करने के उद्देश से एक मार्ग का निर्देश कर गए हैं। वह मार्ग पहले भी था और अब भी है। इस बात को भूल जाना ठीक नहीं। दल-के-दल भारतवर्ष के हिंदू लोग धर्मान्तर ग्रहण कर रहे थे। यह देखकर इसको रोकने के लिए उन्होंने समयोपयोगी बनाकर विराट् हिंदूधर्म के एक अंश को ग्रहण करने योग्य बना दिया। यही उनका महत्त्व है और इसी से उनका जो उद्देश्य था सो सिद्ध हो गया। अर्थात् हिंदुओं ने अपने धर्म का त्याग बंद कर दिया।

सीता बोली—दादा, अब बहस बंद करो। रात अधिक हो गई, चलो, भोजन कर लो।

सुरेशचंद्र कहता ही गया—एक बात याद रखिएगा, मैं भविष्य-वाणी करता हूँ। हमारा संप्रदाय (ब्रह्म-समाज) शक्त, वैष्णव, शैव आदि संप्रदायों की तरह एक संप्रदाय का अंग होकर इसी हिन्दू धर्म के अन्तर्गत बना रहेगा। इसके जो स्वतन्त्र—विदेशी भाव से अनुप्राणित अनुष्ठान हैं, वे समय पाकर लुप्त हो जायँगे। और यह होना भी चाहिए। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि हम पहले हिन्दू हैं उसके बाद और कुछ।

सरयू बोली—दादा क्या आपके इस मनोभाव को जानते हैं?

सुरेश ने कहा—जानते क्यों नहीं। केवल यही नहीं, उनका भी विश्वास ऐसा ही है! जो लोग केवल ऊपर का छिलका नहीं, भीतर का गूदा या सारांश देखते हैं, उन सबका विश्वास ऐसा ही होता है, और होना ही चाहिए।

सरयू, सीता सुरेश की बातें शायद अच्छी तरह नहीं समझ सकीं। मगर हाँ, सुरेश की बातों ने उनके भीतर भी एक हलचल मचा दी थी, यह बात उनका विस्मय-विमूढ़ भाव देखकर ही मालूम पड़ रही थी।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

रमेंद्र ने देखा, दो दिन में ही वह डाक्टर बाबू का जैसे अपना सगा आदमी हो गया है। वह रमेंद्र के साथ ऐसा व्यवहार करने लगे कि उसको किसी प्रकार का संकोच नहीं रहा। अन्तःपुर में जा कर एक साथ दोनों भोजन करते थे। अवश्य ही डाक्टर की स्त्री उसके सामने नहीं आती थीं। तो भी रमेंद्र को यह मालूम पड़ता था कि उसके सुख और सुविधा की ओर डाक्टर-पत्नी की भी यथेष्ट दृष्टि है। प्रातःकाल जलपान के उपरान्त डाक्टर अस्पताल को चले जाते थे और रमेंद्र घूमने फिरने निकल जाता था अथवा बाहर की बैठक में बैठकर लिखा-पढ़ा करता था। दोपहर को डाक्टर घर आते थे, तब एक साथ दोनों स्नान-भोजन इत्यादि करते थे। डाक्टर अगर किसी रोगी को देखने जाते थे तो सन्नाटे की दोपहर में रमेंद्र फिर कविता की आराधना में लग जाता था। शाम को टहलना या गपशप लड़ाना। दो-तीन दिन इसी तरह बीते।

रमेंद्र के मन में जो आग जल रही थी, अनुशोचना की ग्लानि ने उसके चित्त में जिस अवसाद का संचार किया था, उसके प्रभाव से वह किसी तरह अपने को छुड़ा नहीं पाता था। उसके हृदय में अब भी शान्ति नहीं थी। उसने एक नई कापी खरीदी थी। उसमें वह अपने जीवन को विश्लेषण करके डायरी के तौर पर नित्य लिखता जा रहा था। इससे उसके मन की यंत्रणा थोड़ी बहुत शान्त हो चली थी।

उस दिन दोपहर को भोजन करने के बाद डाक्टर बाबू भीतर विश्राम कर रहे थे। रमेंद्र अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था।

डाक्टर की बीबी भोजन समाप्त करके अपने स्वामी के पास

आकर बैठ गई। डाक्टर तमाखू का मजा लेते हुए एक मासिक पत्र पढ़ रहे थे। पान चबाते-चबाते पत्नी ने स्वामी से कहा—सुनते हो जी, आज दो दिन से एक बात मैं तुमसे कहना चाहती हूँ।

काग़ज़ के ऊपर से दृष्टि हटाकर डाक्टर ने कहा—तो शायद बहुत जरूरी बात है! दो दिन में तुमको कहने का अवकाश ही नहीं मिला? कहो न।

स्त्री ने हँसकर कहा—तुमसे पेश पाना तो सहज नहीं है। अच्छा सुनो, यह जो तुम्हारे नए मित्र शिशिर बाबू हैं, इन्हीं के संबंध में कहना है। पहले दिन देखते ही मुझे जान पड़ा कि इन्हें मैं पहले कहीं देख चुकी हूँ। आज फिर अच्छी तरह ध्यान देकर देखा तो—

पलँग के ऊपर उठ बैठकर बीच ही में रोककर डाक्टर बाबू कहने लगे—ग़जब हो गया! अभी से जासूसी तुमने शुरू कर दी! शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है। लेकिन देखो, अन्त को बेचारे को फँसाना नहीं।

पत्नी का मुखमंडल इस दिल्लगी से लाल हो उठा। एक छोटा सा घूसा तानकर उन्होंने कहा—तुम लोग औरतों को क्या समझते हो, बतलाओ तो सही। अपने ही समान शायद संसार भर को जानते हो—क्यों न? जाओ, मैं कुछ नहीं कहूँगी।

तब स्वामी ने पत्नी को दुलारकर प्यार करके कहा—तुम लोग भी कैसी तुनुकमिजाज होती हो; तनिक भी चोट सह नहीं सकतीं। खैर, अपना मतलब कहो, क्या कह रही थीं।

पति और पत्नी में सुलह हो जाने पर पत्नी ने कहा—सच कहती हूँ, यह मुख मैंने जरूर पहले कहीं देखा है, पर याद नहीं आता। इनका परिचय पूछा था? घर कहाँ बतलाया?

डाक्टर ने कहा—यह कुछ तो मैंने पूछा-गाछा नहीं। देखा कि बंगाली हैं, इस तरफ अकेले ही घूमने-फिरने आये हैं। तुम तो

जानती ही हो, किसी बंगाली को विदेश में देख पाकर मेरे मन में उसके प्रति कैसा स्नेह उमड़ पड़ता है। देखते ही साथ हो गया और उन्हें अपने साथ ले आया। पूछने-ताछने की कोई जरूरत नहीं पड़ी। मगर हाँ, रंग ढंग से जान पड़ता है कि घर से नाराज़ होकर चले आए हैं। अच्छा, मैं परिचय जान लूँगा। आदमी तो बहुत अच्छा जान पड़ता है। तुम्हारी क्या राय है?

सुरमा (डाक्टर की स्त्री) ने एकाएक पति की ओर मुँह फेर कर कहा—कहाँ देखा है, यही सोच रही थी। मुख मुझे पहचाना सा प्रतीत होता है। खैर, तुम घर बार का पता जरूर लगाना।

स्वामी अपनी स्त्री को बहुत अच्छी तरह जानते थे। इस सेवापरायणा और पराए दुःख को न सह सकने वाली स्त्री को वह अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते और प्यार करते थे। परिहास रसिकता के साथ उसके आत्ममर्यादा-ज्ञान, गाँभीर्य और ईश्वर-निष्ठा को देखकर डाक्टर को प्रायः बड़ा आश्चर्य होता था। जो कुछ अन्याय, असंगत और असत्य होता, सुरमा उसका घोर विरोध करती थी। स्वामी के घर और जीवन को सुशृंखला बद्ध करके इस नारी ने अपने प्रियतम को चिरकृतज्ञ बना लिया था। स्वामी और स्त्री के शरीर दो, पर हृदय एक था किसी प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव होने पर एक दूसरे को जता देता था।

नवागत अतिथि के सम्बन्ध में पत्नी का कौतूहल देखकर डाक्टर को भी उसका ख्याल हुआ। वह सोचने लगे, यह कौतूहल अहेतुक नहीं भी हो सकता; संभव है, इसका कुछ विशेष कारण हो। रमेंद्र के संबंध में पूरा पता लगाने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया।

पान चबाते-चबाते डाक्टर ने कहा—मगर मुझे तो ऐसा नहीं जान पड़ता कि इससे पहले मैंने कभी इन शिशिर बाबू को कहीं

और देखा हो। हाँ, अपनी डाक्टरी विद्या के ज़ोर से इतना अवश्य मैं कह सकता हूँ कि इस आदमी के मन में कोई व्यथा अवश्य है। इनके घर-बार का सब हाल मैं बातों-ही-बातों में कौशल से जान लूँगा, यह तुमसे वादा करता हूँ। इस छोकरे को यत्न करके और कुछ दिन यहाँ रखना होगा।

सुरमा उस समय भी जैसे कुछ याद करने की व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। डाक्टर ने कहा—देखो तुम इतनी माथापच्ची क्यों कर रही हो? हो सकता है कि तुमको खाली सन्देह ही हो, तुमने कभी इस आदमी को देखा ही न हो। पहले मुझे पता लगा लेने दो।

पत्नी ने कहा—नहीं जी, मैं धोखा नहीं खा रही हूँ। यह मुख अवश्य मेरा देखा हुआ है; पर याद नहीं पड़ता।

डाक्टर यह कह कर बाहर चल दिये कि अच्छा पता लगाता हूँ।

तीसवाँ परिच्छेद

"शिशिर बाबू, चलो, आज मुझे फुरसत है, आपको लखनऊ के पुराने दर्शनीय स्थान अच्छी तरह दिखा लाऊँ।"

रमेंद्र एक नवप्रकाशित अँग्रेजी उपन्यास लिये पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। उठकर बोला—चलिए।

डाक्टर ने कोचमैन से गाड़ी लाने के लिये कहा।

आज सबेरे माँ को देखने के लिए रमेंद्र का मन व्याकुल हो उठा था। पुरी से आते समय राह में उसने माता के नाम एक पत्र लिखकर डाल दिया था। और कुछ भी समाचार उसमें नहीं लिखा था। इस समय वह अज्ञातवास कर रहा है। प्रायश्चित जब तक नहीं हो जाता, तब तक वह अपने ठहरने की जगह न बतलाने का प्रण कर चुका है। लेकिन मन में तरह-तरह की चिन्ताएँ उठकर उसे जैसे पागल बनाये दे रही हैं। ऐसी अवस्था में सैर करने से शायद चित्त को कुछ शान्ति मिल सके, यही सोच-कर रमेंद्र चलने को राजी हो गया।

गाड़ी आ गई। रमेंद्र ने चटपट अपना बेग खोलकर मनीबेग निकाला और उसे जेब में रखकर लंबे डग रखता हुआ चल दिया। डाक्टर गाड़ी में बैठ चुके थे और उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सुरमा (डाक्टर की स्त्री) का जी आज कुछ खराब हो रहा था। घर में कोई और न था, अकेले कुछ अच्छा नहीं लगता था। कोई एक किताब लेने के लिये बाहर की बैठक में गईं। सभी पुस्तकें उनकी पढ़ी हुई थीं, तो भी उन्हीं में से कोई एक छाँट लेने का इरादा था।

आलमारी खोलकर "कृष्णकान्त का विल" नाम का बैंकिम बाबू का उपन्यास उन्होंने निकाला। अनेक बार का पढ़ा होने पर भी यह उन्हें बहुत प्रिय था।

एकाएक अतिथि की कोठरी में नजर चली गई। नौकरों ने वहाँ झाड़ू देकर सब सामान ठीक तौर से रख दिया है या नहीं यह जानने की इच्छा हुई।

सुरमा कोठरी के भीतर गई। हाँ, सब ठीक है। टेबिल के ऊपर बत्ती ठीक रक्खी हुई है। पानी भी सुराही में भरा है। शीशे का ग्लास भी ठीक जगह पर रक्खा है। ना, कुछ भी गड़-बड़ नहीं है।

वाह! यह भले आदमी तो बड़े ही असावधान हैं! बेग की चाभी उसी में लगी छोड़ गए हैं। नौकर-चाकर विश्वासी अवश्य हैं; लेकिन फिर भी कब किसके मन में बेईमानी आ जाय; कुछ कहा नहीं जा सकता। सुरमा धीरे-धीरे बेग की ओर बढ़ी। चाभी निकाल लेने के पहले उन्होंने यह देखा कि बेग का ताला बंद है या नहीं। सहसा एक कौतूहल का भाव उनके हृदय में जग उठा, जिसे दबाना उनके लिये कठिन हो गया। अतिथि का परिचय बतानेवाली कोई वस्तु तो इस बेग के भीतर नहीं है? किन्तु मालिक के अनजान में उसकी कोई चीज देखना चाहिए कि नहीं? सुरमा के कर्तव्य ज्ञान ने—विवेक ने बाधा दी। वह पास पड़ी हुई कुर्सी में बैठ गई। वह सोचने लगी, क्या करना चाहिए।

स्त्री का कौतूहल जैसा प्रबल, वैसा ही दुर्दमनीय होता है। जो रहस्यमय है वही कौतूहल का उद्दीपक होता है। कौतूहल के एक बार जग उठने पर वह स्त्री को अक्सर अपने काबू में नहीं रहने देता। सुशिक्षा संयम, शालीनता, सबको व्यर्थ करके सुरमा का स्वाभाविक कौतूहल प्रबल हो उठा। संशय दूर करने की इच्छा

को दबाने की सामर्थ्य उसके नहीं रही। युक्ति के द्वारा सुरमा ने अपने मन को समझाया कि वह कुछ चोरी तो कर नहीं रही है, केवल अपने कौतूहल की निवृत्ति कर रही है। आज तीन-चार दिन से मन में जो संशय जड़ पकड़ रहा है, उसकी मीमांसा का कोई सूत्र अगर मिल जाय तो उसे छोड़ना ठीक नहीं। ऐसे मामलों में पराया सामान इस तरह देखने में कोई अपराध नहीं होता।

खट से बेग की चाभी घूम गई। दम भर में बेग के भीतर की चीजें सुरमा की आग्रह-कंपित दृष्टि के सामने प्रकट हो गईं। उसमें कुछ कपड़े—धोती, कुर्ते—और कुछ किताबों के सिवा और कुछ न था। ऊपर ही रमेन्द्र की डायरी रक्खी थी।

सुरमा उठ खड़ी हुई। बाहर की बैठक के चारों ओर के सब दरवाजे बंद करके किसी दूसरे के आने का रास्ता बंद कर दिया। उसके बाद वह डायरी खोलकर धड़कते हुए हृदय से पढ़ने लगी।

वाह! हाथों के अक्षर तो बड़े सुन्दर हैं! भाषा भी बड़े मजे की है! सुरमा साँस रोक कर सफ़े के सफ़े पढ़ने लगी। कहीं किसी के नाम का उल्लेख नहीं है। केवल भीतर के भावों का विश्लेषण करके निर्मम भाव से उनकी आलोचना की गई है। पढ़ते-पढ़ते सुरमा का मुख गंभीर हो उठा। भाव की अधिकता से आँखों में आँसू भर आये। इस अपरिचित अतिथि के हृदय की व्यथा जैसे रुधिर से लिखी गई है।

दुष्प्राप्य आदर्श के पीछे—मरीचिका की खोज में घूम-घूम कर असन्तुष्ट चित्त कैसे रास्ता भूल जाता है, और उस भ्रान्ति का परिणाम कैसा मर्मभेदी, कैसा भयानक, कैसा कष्टदायक होता है, इसे अतिथि ने बहुत ही स्पष्ट रूप से ठीक-ठीक वर्णन किया था।

सहानुभूति से सुरमा का हृदय पसीज उठा। हृदय के भीतर दुःख और पश्चात्ताप की ज्वालामुखी रखकर बाहर अटल धैर्य

के साथ रहना कैसी शक्ति का काम है! अहा, यह मनुष्य कैसा दुखी है! किन्तु यह दुःख किस लिए है? यह कौन है? इसका परिचय प्राप्त करने के लिए सुरमा के मन में पहले ही से इतना आग्रह क्यों है? डायरी में अतिथि के असली परिचय का तो कुछ भी सूत्र नहीं मिला।

डायरी में अन्त में लिखा था—"मा के लिए हृदय अस्थिर हो रहा है। किन्तु उनकी पवित्र मूर्ति के सामने यह अपवित्र मन लेकर खड़ा न हो सकूँगा। इसी से भाग आया हूँ। और वह बेचारी अभागिन। उसके जीवन में अभिशाप ही की तरह शायद मैं आया हूँ। अच्छा अगर उसे मैं प्यार ही नहीं कर सकता था तो इतनी भारी ज़िम्मेदारी मैंने क्यों अपने सिर ली थी? वह कैसी है, उसका परिचय प्राप्त करने की तो कभी इच्छा ही मेरे मन में नहीं हुई। उसकी मूर्ति कैसी है, यह भी तो याद नहीं पड़ता। मेरी कर्त्तव्यनिष्ठा तो खूब है! अथच लोकाचार, समाज और धर्म की दृष्टि से वही मेरा श्रेष्ठ बन्धन है, उसी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है! यह परिहास, यह निष्ठुर स्वयं कैसा कष्टदायक है! कभी-कभी जी चाहता है कि मन को उसकी ओर जबरदस्ती लौटा ले जाऊँ। किन्तु वैसे ही जैसे कोई चिल्लाकर कहता है—निर्लज्ज! पाखंडी! जिसकी तू आज-तक उपेक्षा करता आ रहा है, उस घनाहता में निकट अपने पापकलुषित मन को लेकर किस अधिकार से अब खड़ा होगा? ना, तुझे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है!"

सुरमा डायरी को रखकर कुछ सोचने लगी। उसके बाद दूसरी कापी उसने उठा ली। वह कविता की कापी थी। शिशिर बाबू कवि हैं? कौतूहलवश सुरमा ने कापी के ऊपर जो जिल्द थी, उसे देखा। नीचे कोने पर मोटे अक्षरों में, उसमें, लिखा था—"रमेन्द्र"।

सुरमा सहसा चौंक उठी। रमेन्द्र! अगर कवि का नाम रमेन्द्र है तो शिशिर बाबू के पास यह कापी क्यों है? सुरमा के चेहरे पर गहरी चिन्ता की रेखा फूट उठी। कापी खोलकर दो एक कविताएँ पढ़ीं। पक्के हाथ की सुन्दर रचनाएँ थीं। किन्तु डायरी और कविता की कापी के अक्षर तो एक ही हैं—एक ही हाथ के लिखे हुए हैं! तो क्या अतिथि का नाम शिशिर नहीं रमेन्द्र है?

घड़ी में ४ बज गये। सुरमा उठ खड़ी हुई। काँपते हुए हाथ से दोनों कापियों को यथास्थान रख दिया। चाभी भी वैसे ही लगी रही। दरवाजा भेड़कर वह तेजी के साथ अपने सोने के कमरे को लौट गई।

सन्देह दूर नहीं हुआ, बल्कि और घना हो गया। किन्तु उनकी मीमांसा सुनिश्चित नहीं थी। उन्होंने जो कुछ समझा, वह प्रमाणित होने के लिए और भी प्रमाण की आवश्यकता थी। सुरमा ने चटपट एक पत्र लिखकर अपने नौकर के हाथ उसी समय डाक में डलवा दिया।

इकतीसवाँ परिच्छेद

दोपहर को भोजन की बड़ी तैयारी हुई थी। डाक्टर के यहाँ अक्सर ऐसा हुआ करता था। रसोई बनाने के लिए एक ब्राह्मण नौकर था; किंतु सुरमा अक्सर अपने हाथ से तरह-तरह के बढ़िया सामान पकाकर स्वामी को भोजन कराती थीं। उससे उन्हें जो तृप्ति मिलती थी, उसे वे ही औरतें समझ सकती हैं, जो अपने स्वामी को हृदय से प्यार करती हैं, सच्ची गृहिणी हैं। डाक्टर गिरीन्द्रनाथ चाँदनी रात में ठंडी हवा खाने और प्रिया के मुखचंद्र की सुधा का पान करने की अपेक्षा प्रिया के हाथ के बने बढ़िया भोजन करने को ही अधिक पसंद करते थे। वह अपने इष्ट-मित्रों और बन्धु-बान्धवों के सामने कहते थे कि "पेट भरने पर प्रेम की चर्चा करो, मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं; लेकिन खाली-पेट रहकर प्रेम की चर्चा करने के लिए कम से कम मैं तो तैयार नहीं हूँ।" इसी से पत्नी के हाथ के बने भोजन में उन्हें कोरी बातों की अपेक्षा अधिक प्रेम और स्नेह का रस मिलता था।

किन्तु आज के भोज में भोजन-सामग्री संख्या और परिमाण दोनों में और दफ़े से कुछ अधिक बनी थी।

डाक्टर रमेन्द्रनाथ को बाहर के घर में छोड़कर आज शीघ्र ही अपने सोने के कमरे में चले गये। आज इतना डटकर उन्होंने भोजन किया था कि उनमें बैठने की भी शक्ति न रह गई थी।

दो-चार बार मुँह से तमाखू का धुआँ छोड़ने के बाद ही उनकी नाक बजने लगी। कब तक वह इस तरह आराम की नींद सोते

रहे, इसकी कुछ उन्हें खबर न थी। इतने ही में पत्नी के कोमल हाथ के हलके धक्के से उनकी नींद उचट गई। वह समझे, शायद दोपहर को किसी रोगी के यहाँ से बुलावा आया है, इसी से पत्नी उन्हें जगाने आई है। निद्राजड़ित स्वर में उन्होंने कहा—रघुआ की मारफ़त कहला भेजो कि मैं इस वक्त कहीं जा नहीं सकूँगा। पाँच बजे के बाद जिसे जरूरत हो, वह आवे।

इतना कहकर करवट बदल कर वह फिर लेट रहे। फिर एक हलके धक्के ने उनकी सुख की नींद में खलल डाला।

पत्नी ने कहा—वाह, तुम तो कभी दिन को सोते न थे! आज सोने से तबियत न खराब हो जायगी?

जँभाई लेकर गिरीन्द्रनाथ ने कहा—ऐसा पेट भरकर खिला दिया है कि बैठे रहा ही नहीं जाता। लाओ, एक पान तो दो।

आलस्य दूर करके डाक्टर पलँग पर उठ बैठे।

सच तो है, वह तो औरों को दिन में सोने के लिए मना करते हैं, और आज आप ही नियम के विरुद्ध सोने लगे!

सुरमा ने स्वामी की ओर पान की गिलौरियों का डिब्बा बढ़ाकर कहा—अच्छा यह तो बतलाओ, तुमने अपने मित्र से कुछ पूछा था?

डाक्टर ने कहा—देखो तो, मेरी भी याद खूब है! बातों में ऐसा उलझा कि याद ही नहीं रही।

सुरमा ने कहा—खूब, तीन-चार दिनों में तुमको याद ही न आया?

गिरीन्द्र ने हँसकर कहा—अरे तो तुमको इसके लिए ऐसी कौन-सी फ़िक्र पड़ी है? तुम्हारा मतलब क्या है जी? अतिथि पर इतनी कृपा दृष्टि क्यों है?

सुरमा ने भी बनावटी कोप दिखाते हुए कहा—मतलब तो है ही; नहीं तो क्या यों ही पता लगा रही हूँ?

दोनों आँखें फाड़कर नक़ली आश्चर्य से डाक्टर बोले—मामला क्या है, बतलाओ तो सही !

धीरे से उठकर टेबिल की ओर जाती हुई सुरमा ने कहा—मामला क्या है, सो अभी दिखलाती हूँ।

इतना कहकर टेबिल की दराज खोलकर उसमें से कागज में लिपटा हुआ कुछ निकालकर सुरमा स्वामी के पास लौट आईं।

पास खड़े होकर उन्होंने उस कागज के भीतर से एक फोटोग्रूप निकालकर स्वामी के आगे रख दिया ? बोली—देखो तो इसमें कोई तुम्हारा पहचाना हुआ है ?

गिरीन्द्र बाबू उस फोटो को देखने लगे। देखते-देखते कह उठे—वाह, इसमें तो तुम भी हो, तुम्हारे पिता और मा भी हैं। वह दूनी है, और उसके पास वह कौन खड़ा है ? यह तो हमारे शिशिर बाबू से बिलकुल मिलता-जुलता-सा है।

विस्मय-विह्वल दृष्टि से डाक्टर अपनी स्त्री के मुख की ओर ताकने लगे। बोले—कुछ मामला समझ में नहीं आया। शिशिर बाबू कैसे वहाँ पहुँच गये ?

सुरमा स्थिर दृष्टि से स्वामी की ओर ताकती रही। गिरीन्द्रनाथ का चेहरा गंभीर भाव से परिपूर्ण हो उठा। वह फिर एक बार अच्छी तरह ध्यान देकर उस चित्र को देखने लगे।

सुरमा ने कहा—मुझे पहले ही दिन सन्देह हुआ था। मगर मैंने केवल ब्याह के समय देखा था, वह भी अधिक बार नहीं, केवल ब्याह की रात को और उसके दूसरे दिन। किन्तु इतने ही परिचय से मुझे संदेह हुआ; परंतु स्पष्ट और निश्चित रूप से मैं अपना संदेह तुम्हारे आगे प्रकट नहीं कर सकी। क्या जानें मेरी ही भूल हो। तुम तो दूनी (इनकी छोटी बहन संध्या का यह पुकारने का नाम था) के ब्याह में जा नहीं सके थे। और रमेन्द्र बाबू को फिर कभी देखने का मौक़ा भी तुमको नहीं मिला। तुम्हारे मन में

उनके बारे में कैसे संदेह हो सकता था ? उसके बाद उस दिन—

कहते-कहते सुरमा स्वामी की गोद में अपने को डालकर उनके मुख की ओर देखती हुई कहने लगी—उस दिन एक अनुचित काम मैं कर बैठी। तुमको बतलाये या तुमसे पूछे बिना ही—जिस दिन तुम दोनों जने शहर घूमने गये थे—बाहर की बैठक में जाकर उनकी बेग खोलकर डायरी और कविता की कापी मैंने पढ़ डाली। उस दिन यह हाल मैंने तुमसे नहीं कहा, सोचा था कि दूसरे दिन कह दूँगी। इसके लिए तुम मुझ पर नाराज तो नहीं हो ?

पत्नी को प्यार की दृष्टि से देखकर डाक्टर ने कहा—पगली, इसमें मेरे नाराज होने की क्या बात है भला ? तुम्हारी जगह अगर मैं होता तो मैं भी अवश्य इसी तरह जासूसी करता। अच्छा उसके बाद ?

तब सुरमा ने रमेंद्र की डायरी में जो कुछ पढ़ा था, उसका सारांश संक्षेप में स्वामी से कहा, फिर बोली—वैसे ही कमरे से जाकर मैंने पिताजी को पत्र लिख दिया कि ब्याह के दूसरे दिन जो फोटो लिया गया था, उसकी कापी मुझे नहीं मिली। पत्र पाते ही एक कापी मेरे पास भेज दीजिएगा। और रमेंद्र बाबू (बहनोई) कहाँ हैं, यह भी मैंने जानना चाहा था। पिताजी ने यह फोटो भेजकर लिख दिया कि उन्हें रमेंद्र बाबू की मा के पत्र से मालूम हुआ है कि रमेंद्र बाबू पुरी गए थे और वहाँ से पछाँह की सैर करने गये हैं। अब तो सब तुम्हारी समझ में आ गया ?

डाक्टर ने कहा—लेकिन यह समझ में नहीं आता कि भाई साहब नाम बदल कर क्यों घूम रहे है ! और, इतने वैराग्य का क्या कारण है ?

सुरमा ने गंभीर भाव से कहा—पिताजी और मा अक्सर मुझे चिट्ठी लिखा करते हैं। उनसे अब मैं इस निश्चय पर पहुंची हूँ कि ब्याह के बाद से ही रमेंद्र बाबू कुछ विरक्त से रहते हैं वह सुसराल

बहुत ही कम जाते-आते हैं। पढ़ने-लिखने में विघ्न पड़ने की संभावना समझ कर पिताजी ने भी अब तक उन्हें बुलाने या लाने की चेष्टा नहीं की। रमेंद्र बाबू की मा ने भी शायद मेरी मा को पत्र लिखकर यह अनुरोध किया था कि जब तक रमेंद्र की शिक्षा पूरी नहीं हो जाती, जब तक उन्हें बुलाने के लिए अधिक आग्रह न किया जाय। इधर रमेंद्र बाबू की डायरी पढ़कर मैंने जो समझा है, उससे यही जान पड़ता है कि दूनी के साथ उनका—

डाक्टर बीच ही में बोल उठे—अधिक मेल जोल नहीं है, यही न? समझ गया, भाई साहब इतने दिन किसी मृग-मरीचिका के पीछे घूमते फिरे हैं!

खुली खिड़की से आकाश का बहुत-सा हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। डाक्टर थोड़ी देर तक उधर देखते रहकर सहसा कह उठे—देखो, बहुत से लोग अपने मन की ग़लती से आप अपने को कष्ट पहुँचाया करते हैं। ऐसी पत्नी पाकर भी बेचारा अपनी नासमझी के कारण इतने दिन तक सुखी नहीं हो सका; यह क्या कम दुर्भाग्य की बात है? ऐसी लायक लड़की दूनी है! ऐसा सुन्दर रूप, मनोहर स्वभाव तीक्ष्ण और धीर बुद्धि तो है ही, और भी अनेक दुर्लभ गुण उसमें हैं। भाई साहब ने रत्न को नहीं पहचाना! सचमुच बेचारे के दुर्भाग्य के लिए मैं दुःखित हूँ। सन्ध्या-जैसी लड़की हजारों में एक भी मिलना कठिन है।

इसके बाद स्वामी और स्त्री में बहुत-सी बातें हुईं, आगे के कर्तव्य के विषय में सलाह हुई। यह ठीक हुआ कि रमेंद्र को अब यहाँ से किसी तरह जाने न दिया जाय। साथ ही यह भी किया जाय कि किसी तरह उसे यह न मालूम हो सके कि इन लोगों ने उसे पहचान लिया है। ससुराल से संबंध रखनेवाले लोगों की ओर से वह इतना उदासीन है कि वह इनकी कल्पना

भी नहीं कर सकता कि अपनी साली के ही यहाँ उसने डेरा डाला है। गिरीन्द्रनाथ को इसके पहले सुसराल में या अन्यत्र कभी उसने देखा न था। शायद उनका नाम भी उसे मालूम न था। अगर उसे यह मालूम भी होता कि उसके बड़े साढू का नाम गिरीन्द्रनाथ है, तो भी मेरठ से इलाहाबाद और वहाँ से लखनऊ उनकी बदली होने का सन्देह सहसा उसके मस्तिष्क में नहीं प्रवेश कर सकता था। मगर हाँ, सुरमा को खूब सावधान रहना पड़ेगा। कारण, सुरमा को रमेंद्र ने अपने ब्याह के समय देखा था। संभव है, सामना हो जाने पर वह उन्हें पहचान ले। अतएव सुरमा को इस ओर से सदा सतर्क रहना पड़ेगा कि रमेंद्र उन्हें किसी समय देख न ले!

किन्तु डाक्टर और उनकी स्त्री के इतना सतर्क होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। जिस मानसिक अवस्था में रमेंद्र का ब्याह हुआ था और उसके बाद सुसराल के सम्बन्ध में वह जैसा उदासीन रहा, उससे यह संभावना ही न थी कि वह अपनी साली या साढ़ू को पहचान सकेगा। संभव है, उसके मन के किसी कोने में केवल इतना संस्कार बना हो कि पछाँह के किसी शहर में उसकी बड़ी साली रहती है। किन्तु वर्तमान अवस्था में इधर उसका ख्याल नहीं जा सकता, यह निश्चित था।

बहुत कुछ सलाह-मशविरा करने के बाद पति-पत्नी ने पत्र लिखकर डाक में डलवा दिया।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

स्टीमर चल रहा था—तेजी के साथ, लंबी-चौड़ी नदी के विशाल वक्षःस्थल को चीरता और लहरें उठाता चला जा रहा था सरयू और सीता केबिन के बाहर रेलिङ पकड़कर खड़ी हुई चुपचाप नदी के उस पार दिखाई दे रहे गाँव की शोभा देख रही थीं। प्रातःकाल का सूर्य कैसा मनोहर था! ओस से नहाए हुए वृक्षों के ऊपर तरुण सूर्य की सुनहली किरणों का नाच कैसा बढ़िया था! नदी के वक्षःस्थल पर मछली पकड़नेवाले मछुओं की डोंगियाँ लहरों के थपेड़ों से हिल-डुल रही थीं। सरयू के मुख पर एक अमलिन ज्योति, आनन्द का प्रवाह-धारा उज्जवल हो उठी। वह कह उठी—भाभी, पहले मैं नहीं जानती थी कि हमारे देश बंगाल के गाँव ऐसी मनोहर शोभा की खान हैं!

सीता एकाग्र मन से कुछ सोच रही थी। सरयू के प्रश्न ने उसे जैसे सोते से जगा दिया। अपने को सँभालकर वह भी कह उठी—बेशक बड़ा सुन्दर दृश्य है!

स्टीमर की चाल धीरे धीरे कम हो आई। किनारे स्टेशन—टीन की छाई हुई एक कोठरी-सा बना था। लगभग किनारे से सटकर ही स्टीमर खड़ा हुआ। एक लकड़ी की सी स्टीमर से किनारे पर लगा दी गई। गाँव के यात्री लोग अपनी गठरी मुटरी लेकर उतरने का उद्योग करने लगे।

सहसा सरयू का मुख विस्मय से उद्दीप्त हो उठा। उसने उँगली से किनारे की ओर इशारा करके सीता को कुछ दिखाया। तीस-चालीस के लगभग अधनंगे पुरुष और फटी धोतियों के टुकड़े शरीर से लगाये स्त्रियाँ बड़ी आजिजी के साथ कुछ कह

रही हैं। सभी के शरीरों में केवल हड्डी और चमड़ा रह गया है, मुख पर भूख की तीव्र ज्वाला झलक रही है। किसी-किसी रमणी की निर्जीव छाती से जीर्ण-शीर्ण कंकालसार बच्चा लिपटा हुआ है। यात्रियों के आगे हाथ जोड़कर वे खाने को मुट्ठी भर अन्न माँग रहे हैं। उनके गले से आवाज़ भी अच्छी तरह नहीं निकलने आती।

उनकी दुर्दशा और कातरता देखकर युवतियों के हृदय को जैसे कड़ा धक्का पहुँचा। उन्होंने घूमकर देखा, पीछे सुरेशचन्द्र देख पड़ा। उसका मुख गंभीर हो रहा था और आँखों में एक उज्ज्वल दीप्ति थी। वह कह उठे—क्या देखती हो? मेरे देश का रूप? सुजलां, सुफलां, शस्य-श्यामला, अन्नपूर्णा, भारत माता की मूर्ति देख लो। सुरेशचंद्र तेजी से पैर रखता हुआ नीचे उतर गया। सरयू और सीता भी उसके पीछे गई। सुरेश किनारे पर पहुँचा। स्टीमर अभी कुछ देर और वहाँ ठहरनेवाला था।

भूखे नर-नारियों के पास आकर उसने हाथ उठाकर सबसे चुपचाप खड़े रहने के लिए कहा। उसकी आश्वास-वाणी से आश्वस्त होकर सब याचक अदब के साथ कुछ फ़ासले जाकर खड़े हो गये। ओह! उनके नेत्रों में भूख की कैसी विकट ज्वाला झलक रही थी। उनकी मूर्तियाँ दारुण अभाव का कैसा शोचनीय निदर्शन बनी हुई थीं?

मनीबेग खोलकर सुरेश ने हर एक के हाथ में एक-एक रुपया दिया। एक रमणी ने क्षीण और कातर स्वर में कहा—बाबू साहब, भगवान तुम्हारा भला करें; हमें कुछ खाने के लिए दो भैया! आज तीन दिन से मेरे इस बच्चे के पेट में—

आगे उससे कुछ कहा नहीं गया। उमड़े हुए आँसुओं से उसका गला रुँध गया। उसके साथ ही चारों ओर से यही आवाज़ आने लगी—खाने को दो, खाने को दो। यह ग़रीबों का गाँव है;

बहिया में सब कुछ बह गया है। हम कई दिनों से केवल पेड़ों के पत्ते और घास उबाल-उबाल कर खा रहे हैं।

"दादा !"

सुरेश ने पीछे फिरकर देखा, सीता और सरयू दोनों उसी के पास आकर खड़ी हैं। सीता ने भाई के कान में कुछ कहा। सुरेश ने सम्मति दी और सबसे कहा—तुम लोग ठहरो, हम खाने को देते हैं।

स्टीमर के माँझी-मल्लाह-कुली और अन्य यात्री विस्मय के साथ सीता और सरयू की कार्य-प्रणाली देख रहे थे। सुरेश ने कप्तान से पूछा—स्टीमर यहाँ और कितनी देर ठहरेगा ?

उसने कहा—बस और दस-पंद्रह मिनट ठहरेगा।

सुरेश—क्या आध घंटे नहीं ठहर सकता ?

कप्तान—अगले स्टेशन में ठीक समय पर न पहुँचने से मुझे जवाबदेही करनी पड़ेगी बाबू साहब !

सुरेश ने कहा—तो फिर हमें यहाँ उतरना ही पड़ेगा। इन लोगों को कुछ खिलाये-पिलाये बिना हम तो जा नहीं सकते।

कप्तान ने सिर हिलाकर कहा—यहाँ कहाँ रहेंगे आप लोग ? इस गाँव में किसी के घर में आपके ठहरने लायक जगह है ही नहीं।

सीता उस समय भी अपने दादा के पास ही खड़ी थी। उसने कहा—किन्तु इन सब भूखों को कुछ खिलाये बिना हम चले जायँगे तो इनमें बहुतेरों के प्राण नहीं बचेंगे। यह महापाप तो हमें ही होगा।

कप्तान ने कुछ सोचा ; उसके बाद बोला—अच्छा, मैं तब तक स्टीमर नहीं छोड़ूँगा, जब तक आप इन लोगों को खिला न लेंगे। जवाबदेही करनी पड़ेगी तो कर लूँगा; लेकिन आप लोगों को यहाँ जंगल में उतारकर न जाऊँगा।

पहले दर्जे के यात्री स्टीमर में ये ही तीन थे, और कोई न था। खासकर सुरेश का व्यवहार देखकर कप्तान वगैरह ने इन्हें कोई प्रतिष्ठित ज़मींदार समझ लिया था। इन्हें खुश करने से उसे इनाम की अच्छी रकम हाथ लगने की भी पूरी आशा थी। स्टीमर का ठीक समय पर पहुँचना या न पहुँचना अकसर नदी के वेग के ऊपर निर्भर रहता है। इसलिए उसके वास्ते कुछ विशेष जवाबदेही करने की चिन्ता उसे नहीं थी।

कलकत्ते से आते समय कई हाँड़ियों में भरकर भीमनाग के संदेश, रसगुल्ले- झाबा भर फल और चाय के लिए कई डिब्बे जमाया हुआ दूध ये लोग साथ लेते आये थे। रात को खाने के लिये काफी पूड़ियाँ भी साथ थीं। इसमें से अधिकांश सामग्री बची रक्खी थी। सीता ने चटपट स्टोव जलाकर केटली में पानी चढ़ा दिया। जमाया हुआ दूध गरम पानी में डालकर उसने भूखे बच्चों को पीने के लिए दे दिया। दस मिनट में काम खतम करके सनातन और सौरभी (दोनों नौकरों) की सहायता से खाने की सामग्री साथ लिये हुए सीता और सरयू किनारे उतर गईं।

इकट्ठी हुई भीड़ अवाक् विस्मय के साथ कलकत्ते से आए हुए इन संभ्रांत पुरुषों और प्रतिष्ठित स्त्रियों के काम देखने लगी। गाँव के वासी भी अपनी-अपनी राह न जाकर वहीं खड़े रहे।

भूखे नर-नारियों को एक-एक पंक्ति में बैठने का आदेश करके सरयू और सीता ने चाय के पात्र में गर्म किया हुआ दूध शक्कर मिलाकर अपने हाथ से भूखे बच्चों को पिलाना शुरू कर दिया। कितने दिनों पर आज उन अभागे बच्चों को यह थोड़ा सा दूध पीने को मिला होगा, यह सोचकर सीता और सरयू की आंखों में आँसू भर आये। इन्होंने आज से पहले ऐसे अनाहार-पीड़ित नर-नारियों की अवस्था या शिशुओं की शोचनीय दुर्गति नहीं देखी थी।

छोटे बच्चों और बालकों को दूध पिलाना समाप्त हो जाने पर सुरेश, सीता और सरयू तीनों ने बड़ी सावधानी के साथ उन भूखे कंकालों को भोजन बाँटना शुरू किया। सुरेश के कहने से सनातन ने स्टीमर पर से दो बाल्टी मीठा पानी लाकर पहले लोटों से थोड़ा-थोड़ा सब को पिलाया, जिसमें उनका सूखा हुआ गला तर हो ले और वे कौर गले के नीचे उतार सकें। साक्षात् अन्नपूर्णा की तरह सीता और सरयू धीरे-धीरे सबको खाने की सामग्री बाँटने लगीं। कोई बर्तन न होने के कारण सब लोग हाथ में ही खाने की सामग्री लेकर खाने लगे। हाथ में पहुँचने भर की देर थी, वे चटपट उसे गले के नीचे उतार जाते थे। भूख की प्रचंड ज्वाला के मारे वे लोग समूचे फल या पूरियों का एक ही कौर कर लेते थे। सुरेश ने टुकड़े-टुकड़े कर के देने के लिए कहा, जिसमें गले में कौर फँसकर कोई दुर्घटना न हो जाय। अपने लिए कुछ भी न बचाकर सीता और सरयू ने धीरे-धीरे सब भोजन-सामग्री बाँट दी। यद्यपि वह सामग्री उतने लोगों को पूर्ण रूप से तृप्त करने भर को नहीं थी, तो भी उससे उनकी भूख की ज्वाला बहुत कुछ शान्त हो गई। भोजन के उपरान्त ये लोग दोनों हाथ जोड़ कर ऊपर उठाकर उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देने लगे।

सीता और सरयू अत्यन्त आनन्द के साथ स्टीमर पर लौट गईं। पता लगाने से सुरेश को मालूम हुआ कि उसी स्टीमर पर एक चावल का व्यापारी कई सौ मन चावल खरीदे लादे लिये जा रहा है। सुरेश ने उससे मुलाकात करके अच्छा नफ़ा देकर चावल के बोरे खरीद लिये।

गाँव के यात्री अभी तक वहाँ जमा थे, गये नहीं थे। एक लंबे डील के ब्राह्मण कहीं और जाने के लिए स्टीमर का टिकट खरीद रहे थे। अधिक इनाम पाने के लोभ से कुली लोग चावल

के बोरे उतार कर किनारे ले गये। सुरेशचंद्र भी उनके साथ ही उतर आया। इसी बीच में उस ब्राह्मण यात्री ने सुरेश के पास आकर कहा—मालूम नहीं, आप कौन हैं, पर इसमें संदेह नहीं कि आप सच्चे मनुष्य हैं। अब तक आपने जो कुछ किया, सो सब मैं देख रहा था। आपने सचमुच आज हम गाँववालों की आँखें खोल दीं। दूसरे स्थान के होकर भी आपने हमारे इलाके के इतने प्राणियों के जीवन की रक्षा के लिये जो कुछ किया, उससे मेरा इरादा बदल गया। इसके आगे जो गाँव है, उसी में रहता हूँ। अपनी शक्ति भर इस विपत्ति का कुछ उपाय करने की आशा से मैं शहर जा रहा था; लेकिन—

सुरेश ने बीच में रोककर कहा—आप कौन हैं, यह भी मैं नहीं जानता, और जानने की वैसी कुछ जरूरत भी नहीं जान पड़ती। आप अगर मेरी सहायता करें तो बड़ा उपकार हो। फ़िलहाल मैंने १० मन चावल खरीदे हैं। आप इन भूखे ग़रीबों को वे चावल ठीक तौर से बाँटने का भार अपने ऊपर लेने की कृपा अगर कर सकें तो मुझ पर बड़ा एहसान होगा।

ब्राह्मण ने उत्साह के साथ कहा—इसमें आप पर एहसान का तो कोई बात ही नहीं है, एहसान तो जो सच पूछो तो आप ही का काम हम लोगों पर होगा। खैर, अगर आप विश्वास क के मुझे यह काम सौंपेंगे तो मैं बड़ी खुशी से आपकी इच्छा पूरी करूँगा किंतु फिर भी मैं आपके लिए संपूर्ण अपरिचित हूँ, यही कठिनाई है।

सुरेश ने मुसकाकर कहा—पीड़ित, मुसीबत में पड़े हुए देशवासियों की सेवा में परिचित या अपरिचित का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। मेरी क्षुद्र शक्ति इतने बड़े काम को कभी अकेले नहीं कर सकती। कुछ स्थानीय सज्जनों की सहायता हुए बिना ऐसे काम कभी ठीक तौर से चल ही नहीं सकते। मैं अभी इतनी

सहायता दिये जाता हूँ, फिर आकर और भी सहायता पहुँचाऊँगा।

गाँव के कुछ जवान चुपके खड़े यह सब देख रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—मृत्युंजय विद्यारत्न-जैसे सच्चे ब्राह्मण पर कोई अविश्वास नहीं करेगा। महाशय, आप पंडितजी पर बेखटके विश्वास कर सकते हैं। इन्होंने अपने पास की एक-एक कौड़ी, एक-एक अन्न का दाना इन दुखियों की सहायता में लगा दिया है। इस तरफ के सभी लोग इन करुणानिधान को अच्छी तरह पहचानते और जानते हैं। इन्हें आप इस काम के प्रबन्ध का भार सौंप दीजिए—हम लोग भी इस काम में इनका हाथ बटावेंगे।

ब्राह्मण ने गर्व के साथ कहा—भैया, हम ग़रीबों के गाँव में रुपये-पैसे की तो कमी जरूर है, लेकिन काम करने वालों की कमी नहीं है। एक महीना भर तो इन ग़रीब किसानों और निरन्न परिवारों के प्राण किसी तरह बचाये गये, लेकिन अब इधर ५-६ दिन से....

बीच में रोककर सुरेश ने कहा—समझ गया। अच्छा चार-पाँच गाँव के बीच ऐसे भूखे-मोहताज कितने होंगे?

ब्राह्मण—चार सौ के लगभग होंगे, इससे कम नहीं।

थोड़ी देर सोचकर सुरेश उन युवकों को और ब्राह्मण देवता को वहाँ से अलग हटा ले गया और बोला—देखिए, आप लोग अगर ठीक तौर से व्यवस्था कर सकें तो मैं भी भरसक रुपये पहुँचाने की चेष्टा कर सकता हूँ।

दम भर सोचकर फिर उसने कहा—देखिए, इस समय मैं पाँच सौ रुपए दिये जाता हूँ। मिल-जुल कर इनसे आप लोग काम शुरू कीजिए, पीछे और भी देने की चेष्टा करूँगा।

मनीबेग से नोट-केस निकालकर उससे सौ-सौ रुपये के पाँच नोट सुरेश ने निकाले। वे नोट मृत्युंजय के हाथ में उसने दे दिये। चेक भी वह लिख दे सकता था, मगर उससे रुपये लाने में विलम्ब होने की संभावना जानकर सुरेश ने अपने पास से नोट ही दे दिये।

ब्राह्मण के नेत्रों में आनन्द और कृतज्ञता के आँसू भर आये। युवकों की आँखें भी सूखी नहीं रहीं। ब्राह्मण ने गद्‌गद् स्वर में कहा—भैया, अवस्था में तुम मुझसे बहुत छोटे—मेरे लड़के के बराबर हो। इस गाँव के ग़रीब निवासियों के लिए अयाचित भाव से तुमने जो कुछ किया है उसके लिए भगवान्...

सुरेश बीच ही में कह उठा—आप ब्राह्मण और अवस्था में पितृ-तुल्य होने के कारण मेरे पूजनीय और प्रणम्य हैं, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। मनुष्य का जो कर्तव्य है, उससे अधिक तो मैं कुछ कर नहीं रहा हूँ।—अच्छा हाँ, आपका पता क्या है? उसकी आवश्यकता पड़ेगी।

सुरेश की नोटबुक में मृत्युंजय पंडित और कई युवकों ने अपना नाम ठिकाना और पाँच सौ रुपये मिलने की बात लिख दी।

कप्तान ने आकर कहा—अब अधिक देर करना असंभव है। सुरेश स्टीमर की ओर लौटा।

ब्राह्मण ने कहा—बाबू साहब आपका नाम...

सीढ़ी से ऊपर चढ़ते-चढ़ते सुरेश ने कहा—फिर बतला दूँगा। मुझे अभी फिर भी तो आना पड़ेगा।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

दिन भर कठोर परिश्रम करने के बाद थककर डेरे में लौटने पर भी सीता और सरयू की प्रसन्नता तनिक भी कम होते नहीं देख पड़ती थी। सुरेशचंद्र के चेहरे पर परिवर्तन के चिन्ह शायद ही कभी दिखाई पड़ते थे। सेवा-कार्य में लग जाने के बाद किसी नए भाव की रेखा इस समय भी नहीं देख पड़ती थी इन लोगों ने स्वामी जी की इच्छा के अनुसार पीड़ित देशवासियों की सेवा का व्रत लिया था और उसके लिए नगर के एक हिस्से में एक छोटा-सा घर किराये पर ले रक्खा था। जिले के हाकिम से सुरेश का पहले का परिचय था। दोनों ने एक ही साल विलायत में सिविल सर्विस की परीक्षा पास की थी। पहले ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट का काम करके उसके बाद इन हाकिम महाशय को पूर्व-बंगाल के इस जिले का चार्ज मिला था। इस जिले के गाँवों में दुर्भिक्ष और रोग का प्रकोप इतना बढ़ गया था कि सरकार रिलीफ (सहायता) का काम खोलकर भी उस भयानक अवस्था का कुछ प्रतिकार नहीं कर पाती थी। इसी समय सुरेशचंद्र की अयाचित सहायता पाकर मैजिस्ट्रेट ने उसके लिए यथेष्ट सुविधा कर दी।

सुरेश नगर को केन्द्र बनाकर सीता और सरयू की सहायता से कहीं पैदल चलकर, कहीं नाव या बैलगाड़ी पर जाकर दूर के गाँवों की दशा देखने जाया करता था। जगह-जगह अन्नसत्र खोल दिये गये थे—चार-पाँच गाँवों के लिए एक-एक अस्थायी अस्पताल भी क़ायम कर दिये गये थे। सुरेश, सीता और सरयू इन सब अन्नसत्रों और अस्पतालों के काम की जाँच करते फिरते थे।

देश की भयानक दुर्दशा—नर-नारियों की शोचनीय अवस्था

देखकर सदा सुख में पली हुई सीता और सरयू का हृदय विचलित हो उठा था। काम करने के अनुराग और सेवा करने की प्रवृत्ति की ऐसी शक्ति है कि ये भाव अगर एक बार किसी के हृदय में जग उठते हैं तो फिर उनकी ज्योति सहसा मलिन नहीं पड़ती। स्टीमर-घाट का दृश्य पहले दिन देखकर ही सीता स्वभाव से ही कोमल, उन्नत शक्ति-हृदय विचलित, विगलित हो उठा था। उसी समय उसने यह संकल्प कर लिया कि वह पीड़ित की सेवा और आर्त की शुश्रूषा तथा भूखे-प्यासे का कष्ट मिटाने की यथाशक्ति चेष्टा करेगी। स्वामीजी के ये शब्द उसके मन में अंकित हो रहे थे कि "मा, जीव-सेवा ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।"

अपने हाथ से रसोई बनाकर स्वामीजी को जब उसने भोजन कराया था, तब तृप्त और सन्तुष्ट होकर उन्होंने कहा था—"मा, एक बात याद रक्खो, जहाँ जीव है, वहाँ शिव है। जीव की सेवा से वह कल्याण रूप शिव (परमात्मा) तृप्त होते हैं; जीव की सेवा उन्हीं की सेवा है और उनकी सेवा ही मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म है। जीव-सेवा में अपने को लगा दो, अमृत का स्वाद पाओगी, अनन्त सुन्दर को देख पाओगी।" स्वामीजी के ये शब्द सीता के हृदय-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गये थे।

स्वयं अपने हाथों से भोजन सामग्री बाँटकर, रोगियों की सेवा करके इन कुछ दिनों में ही सीता को वह आनन्द मिला, जिसकी झलक भी उसने जीवन में और कभी नहीं पाई थी। कमर में धोती लपेट कर जब वह नर-नारियों को भोजन परोसती है, तब उसके हृदय में जैसे परमेश्वर का आविर्भाव होता है। उस समय उसे जान पड़ता है कि वह जैसे जननी है—वह भूखे सन्तानों को भूख के समय अन्न परोस रही है। रोगी के पास बैठकर जब वह रोग-यंत्रणा दूर करने के लिए उसकी सेवा करती है, तब जैसे संसार की खबर ही उसे नहीं रहती। केवल जैसे मातृत्व की अमृत-धारा

उसके हृदय को मग्न कर देती है। शुश्रूषा के फलस्वरूप छोटे-छोटे रोग-पीड़ित बच्चों के चेहरों पर जब शान्ति की स्निग्ध छाया फूट उठती है, तब उसे जान पड़ता है कि ऐसी तृप्ति, ऐसा आनन्द और किसी तरह नहीं पाया जा सकता।

मानव-हृदय के तत्वदर्शी महानुभाव स्वामीजी की बातें कितनी सच्ची हैं—ना, अब उसके हृदय में कोई ग्लानि नहीं है, उसका अशान्त हृदय अब शांत हो आया है। यन्त्रणा से पूर्ण मानसिक चंचलता, कर्म-समुद्र के प्रबल प्रवाह की धारायें न जाने कहाँ बह गईं—पंकमलिन मनोवृत्ति की रेखा धो-पोंछ गई है।

दिन भर के परिश्रम के बाद छोटे घर की तंग कोठरी में लौट कर मामूली खाट में सोकर सीता विचार करती थी तो उसके मन में अनेक पुरानी बातें नए सिरे से उदय होती थीं। अधिकांश समय तो स्वामी का खयाल, उन्हीं की बातें उसके मन में अपना अधिकार जमाये रहती थीं।

बातचीत के सिलसिले में उसके स्वल्पभाषी वैज्ञानिक स्वामी अक्सर कहते थे—"सीता, विज्ञान की सेवा में मैंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, इसीलिए प्रायः गृहस्थ के कर्त्तव्य, स्वामी के कर्तव्य का पालन नहीं कर पाता। पर इसके लिए तुम दुःख न करो। मेरी सामर्थ्य बहुत कम है, तो भी मैं यह चेष्टा कर रहा हूँ कि विज्ञान की सहायता से अपने देश-भाइयों को कोई मार्ग अगर दिखा सकूँ तो दिखाऊँ! इस युग में हमारा देश बड़ा ग़रीब, बहुत ही असहाय है। विज्ञान की ही सहायता से और देश मालामाल हो रहे हैं। विज्ञान की सहायता से देश की दारुण अर्थनीति-संबंधी समस्या का कोई सहज उपाय निकाला जा सकता है या नहीं, इसी की मीमांसा की चेष्टा मैं अपनी इस पुस्तक में कर रहा हूँ।"

उस समय सीता अपने स्वामी की इन बातों का ठीक-ठीक अर्थ अच्छी तरह नहीं समझ पाती थी, यह स्वीकार करने में इस

समय उसे तनिक भी लज्जा नहीं मालूम होती। सचमुच उस समय वह स्वामी के मन की गति से अपने मन की गति मिलाकर चल नहीं सकी। किंतु घटना-परंपरा की सहायता से, अनेक प्रकार की अवस्थाओं के विचित्र चित्र देखने के बाद इन कई दिनों में अपने स्वामी की पूर्वोक्त बातों का मर्म अब उसकी समझ में अच्छी तरह आ गया है। देश कहने से अब तक वह कुछ भी नहीं समझती थी, देश के आदमी कहने से वह उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं कर पाती थी। किन्तु अब? अब सब उसकी समझ में आता है।

स्टीमर स्टेशन का दृश्य देखने के बाद स्टीमर में चढ़कर ही उसने सुरेशचंद्र से अपना इरादा जाहिर किया था। सुरेश ने मुस-किराकर कहा—तू किस धातु की बनी है बहन, यह मैं जानता था।

इसके बाद केबिन के भीतर जाकर सुरेश ने सीता और सरयू को अपनी आगे की कार्यपद्धति का कुछ-कुछ आभास दिया था। उसने कहा—पिताजी ३०,००० रुपए सालाना आमदनी की जायदाद छोड़ गये हैं। बैंक में भी मेरे ४ लाख रुपए जमा हैं। इतने दिन हमने प्रजा की कमाई से भोग-विलास किया। अब यदि हमारे देश के, हमारे ही भाई-बहन अन्नदाता किसान अन्नाभाव से भूखों मरें और हम अपनी शक्ति भर उसका कुछ भी प्रतिकार करने की चेष्टा न करें तो हमें लोग क्या कहेंगे? क्या हम मनुष्य कहलाने योग्य रह जायँगे? और क्या तू मुझे मनुष्य समझ सकेगी बहन?

दादा के चेहरे पर उस दिन सीता ने जिस भाव की झलक देखी थी, उसे वह अपनी जिन्दगी भर कभी नहीं भूल सकेगी।

सीता ने पूछा—हमारे नाम से बैंक में कितने रुपए जमा हैं दादा? हँसकर सुरेशचन्द्र ने कहा—वे रुपये तो अकेले तुम्हारे नहीं हैं सीता! पिताजी की वसीयत के माफिक सुनील (बहनोई) और तुम्हारे दोनों के नाम से यौतुक के रूप में ८०,००० रुपये बैंक में जमा हैं।

सीता का मुख मंडल लज्जा से लाल हो उठा। किंतु उसने कहा—उन रुपयों के बारे में मैं नहीं कहती दादा! तुमने मेरे नाम से अलग जो रुपये बैंक में जमा किये थे, उन रुपयों की बात कह रही हूँ।

सुरेश ने इसके उत्तर में कहा—वे रुपये तो सूद और असल मिलाकर २०,००० के लगभग हुए होंगे।

सीता ने भाई से आग्रह किया कि उसके वे रुपये भी इसी काम में खर्च किये जायँ, नहीं तो उसे बड़ा दुःख होगा।

उस समय सीता ने मन में सोचा कि रुपयों की उसे और जरूरत ही क्या है? उसका स्वामी एक विद्वान् पुरुष है और गरीब भी नहीं है। मगर हाँ, खर्च करने के पहले स्वामी की अनुमति ले लेना बहुत जरूरी है। यद्यपि उसे अपने ये रुपये खर्च की पूर्ण स्वतंत्रता है, तो भी जीवन के मार्ग में जो उसका चिरसंगी है, इस लोक और परलोक में—सभी अवस्थाओं में उसका एक मात्र सुहृद् और सहायक है, स्त्री का जो सर्वस्व समझा जाता है, उससे तो कुछ छिपाना नहीं है।

बस, सीता ने पत्र लिखकर स्वामी से आज्ञा ले ली। सुनीलचंद्र ने केवल अपनी पत्नी के विचार का अनुमोदन ही नहीं किया, बल्कि पत्नी की इस प्रचेष्टा के प्रति आन्तरिक सहानुभूति और आग्रह भी प्रकट किया।

आज सीता अपने पुराने और विश्वासी नौकर सनातन को साथ लेकर नगर के निकटवर्त्ती केन्द्र में चावल बाँटने और दुर्भिक्ष-पीड़ित जनता की दशा देखने गई थी। सुरेश और सरयू और एक स्थान के अस्थायी अस्पताल में रोगियों की सेवा शुश्रूषा करने में लगे हुए थे। रोज एक ही स्थान में तीनों जने नहीं उपस्थित रहते थे—इसमें सुविधा भी नहीं होती थी। इसी तरह कई सप्ताह से वे लोक-सेवा में आत्मनियोग किये हुए थे।

सन्ध्या से कुछ पहले ही सीता अपना काम खतम करके लौट आई थी। सुरेश और सरयू अभी तक नहीं लौटे थे। हाथ मुँह धोकर, धोती बदल कर सीता खिड़की के पास आकर बैठ गई।

क्षीण चंद्रमा का धीमा प्रकाश स्वच्छ आकाश में जैसे स्वप्नराज्य-सा जान पड़ रहा था। दिन भर काम करने की थकन और सुस्ती के बदले सीता जैसे एक सजीव प्रसन्नता और अमल आनन्द का अनुभव कर रही थी। मुग्ध-सी होकर बैठी हुई सीता न जाने क्या-क्या सोच रही थी। तुरंत का आया हुआ स्वामी का पत्र उसके हाथ में था। आजकल फ़ुरसत के समय उसके मन में स्वामी का ही खयाल बना रहता था। उसमें वह एक विशुद्ध आनन्द का अनुभव करने लगी थी। पहले भी इसमें उसे आनन्द का अनुभव होता था, लेकिन उसके लिए जैसे उसे कुछ चेष्टा-सी करनी पड़ती थी। पर अब आप ही आप खाली होते ही उसका मन स्वामी की ओर दौड़ जाता और स्वयं उत्फुल्ल हो उठता था।

स्वामी ने पत्र में लिखा है—"उनके कालेज की लंबी छुट्टियाँ प्रायः समाप्त हो आई हैं। हृदय का व्याकुल आग्रह रहने पर भी आरंभ की हुई पुस्तक का काम समाप्त नहीं होने आता. और इस कारण वह अपनी पत्नी, बहन और साले के साथ देश की सैर का आनन्द उठाने में असमर्थ हो रहे हैं।"

पत्र कुछ लंबा-चौड़ा नहीं है, लेकिन उसकी प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक शब्द में आन्तरिकता और गंभीर प्रेम का परिचय सुस्पष्ट है। बाहुल्य-वर्जित लिपि के भीतर बहुत गहरा प्रेम और निष्कपट श्रद्धा जैसे भरी पड़ी है?

सीता बारम्बार स्वामी की स्मृति और ध्यान करके पुलकित हो उठने लगी।

चौतीसवाँ परिच्छेद

"डाक्टर बाबू, लड़का बच जायगा न ?"

"सफलता के आनन्द ने चिकित्सक के चेहरे पर भी एक चमक पैदा कर दी थी। डाक्टर ने प्रसन्न चित्त से कहा—ऐसी निपुण सेवा नसीब हो तो सभी रोगी आराम हो सकते हैं। सच तो यह है कि शिक्षित नर्स भी इतनी देखभाल नहीं कर सकती।

अपनी प्रशंसा सुनकर सरयू लज्जित हो उठी। ६ बजे सबेरे से तीसरे पहर के ५ बजे तक वह एक बार भी रोगी के पास से हटकर कहीं नहीं जाती थी। आज कई दिनों से इसी तरह वह उस रोगी बालक की शुश्रूषा करती आ रही है। अस्पताल के ५० रोगियों में इसी बालक की दशा बहुत खराब थी, इसी के जीने की कोई आशा नहीं थी। इसी से दिन को नर्स को छुट्टी देकर सरयू ने खुद उसकी सेवा का भार अपने ऊपर लिया था। बालक की मा भी बीमार थी; पर वह भी दिन-दिन चंगी होती जा रही थी।

सुरेशचंद्र के यत्न से बहुत धन खर्च करके नगर की सीमा पर वह अस्पताल खोला गया था, जिसमें नगर और देहात के भी रोगी उससे लाभ उठा सकें। उसमें ४ अनुभवी डाक्टर और स्थानीय सेवा-शुश्रूषा करने वाली स्त्रियों के अलावा ४ बहुत होशियार नर्सें भी कलकत्ते से बुलवाकर रोगियों की सेवा शुश्रूषा में नियुक्त की गई थीं। दुर्भिक्षपीड़ित लोगों को चावल-दाल वगैरह बाँटने की जैसे जरूरत थी, पीड़ितों की चिकित्सा का भी वैसे ही विशेष प्रयोजन था।

सरयू की निरन्तर सेवा और निपुण शुश्रूषा देख कर सुरेशचंद्र को भी कुछ कम विस्मय नहीं हुआ। जिन लोगों को

सदा भोग विलास और ऐश-आराम का अभ्यास है, वे भी जरूरत पड़ने पर कहाँ तक और कितना आत्मत्याग कर सकते हैं, इसका परिचय उन्हें सीता और सरयू के कामों से मिल रहा था सीता के बारे में तो उन्हें कुछ संशय नहीं था। कारण, उनकी स्वर्गवासिनी माता के गर्भ से ही उसका भी जन्म हुआ था। सुरेश के पिता कुलीन कायस्थ थे। परन्तु वह ब्रह्मसमाजी हो गए थे। सुरेश की मा ने पति के कार्य का कुछ भी प्रतिवाद नहीं किया। स्वामी को सुखी करने के लिए उनकी इच्छा और मत को ही वह शिरोधार्य किये रहीं। किन्तु पुरखों के चिराचरित संस्कार से वह अपने को बिलकुल विमुक्त नहीं कर सकीं। पाश्चात्य सभ्यता की आबहवा में पड़कर पैदायशी देशाचार और लोकाचार के महनीय अनुष्ठानों का प्रभाव उनके चित्त से बिलकुल नहीं दूर हो पाया था। जाकेट, शेमीज, जूता, मोजा आदि के व्यवहार का अभ्यास उन्होंने कभी नहीं रक्खा। केवल जब घर से बाहर निकलती थीं या समाज के किसी अनुष्ठान में शामिल हुए बिना काम नहीं चलता था, तब भी केवल स्वामी को संतुष्ट करने के लिए जितने मे काम न चल सकता था, उतना पूर्वोक्त वस्तुओं का व्यवहार करती थीं। सुरेश ने जब से होश सँभाला तभी से वह गम्भीर भाव से माता की इन बातों पर ध्यान देता रहा। रोगी की सेवा करने में, दीन-दुखी का दुःख दूर करने में, गरीबों को सहायता पहुँचाने में उसकी देवीस्वरूपिणी माता बिना किसी ऊँच-नीच के विचार के अपने को लगा देती थीं, यह सुरेश को कभी न भूलेगा। इसी से सुरेश को विश्वास था कि सीता के शरीर में जब उसी माता का रक्त संचारित हो रहा है, तब प्रयोजन के समय वह उत्तराधिकार-सूत्र से प्राप्त सेवा-परायणता का उदाहरण अवश्य दिखा सकेगी। किन्तु सरयू के बारे में सुरेश को वैसा विश्वास नहीं था।

लेकिन इधर कई दिनों से सरयू ने जिस तरह रोगी की सेवा में अपने को लगा दिया था, उसे देखकर सुरेश विस्मय-विमूढ़ बन गया था इस दृष्टान्त को देखकर सुरेश के मन में यह धारणा उत्पन्न हो गई थी कि भारतीय नारी की विशेषता उसके रक्त में ही मिली रहती है। पश्चिम की नक़ल से कुछ ऐब आ जाने पर भी उपयुक्त सुयोग और क्षेत्र मिलने पर भारत का हृदय, भारत की स्वाभाविक मनोवृत्ति आप ही अपना असली रूप प्रकट कर बैठते हैं।

सन्ध्या का अन्धकार घना होता आ रहा था, यह देखकर सुरेश डेरे को लौटने के लिए उद्यत हुए। सीता लौट आई होगी और घर में अकेली बैठी उनके आने की राह देख रही होगी, यह भी ख़याल लगा हुआ था। नर्स ने आकर बालक की सेवा का भार लिया। रात को सरयू के रहने या सेवा करने की ज़रूरत न होगी।

सुरेश ने गाड़ी बुलाने को कहा। सरयू ने कहा—गाड़ी बुलाने की ज़रूरत नहीं। टहलते-टहलते चले चलेंगे।

सुरेश ने प्रतिवाद करके कहा—दिन भर मेहनत करने के बाद पैदल चलने से कष्ट न होगा?

मुसकाकर सरयू ने कहा—दो मील से अधिक नहीं है। पैदल न चल सकूँगी? आप क्या हमें मोम की पुतली समझते हैं कि तनिक आँच लगते ही पिघल जायँगी?

सुरेश ने कहा—नहीं जी, आप लोगों के विषय में ऐसा अविचार नहीं किया जा सकता। बल्कि शाम को हवा खाते हुए चलना स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है। मैं इस समय गाड़ी पर चलने के लिए केवल इस लिए कह रहा था कि जल्दी डेरे पर पहुँच जायँगे।

सरयू ने कहा—चलिए, पैदल ही चलें।

इतना कहकर चादर ओढ़कर वह चलने के लिए प्रस्तुत हो गई।

नदी के किनारे-किनारे चलना था। उस समय उस सड़क पर बहुत कम लोग आ-जा रहे थे। शहर कुछ ही दूर था। शहर से गाँव को लौटते हुए दो-एक आदमी कहीं-कहीं मिल जाते थे। आकाश में नवोदित क्षीण चन्द्रमा की हलकी चाँदनी में चारों ओर का दृश्य जैसे एक स्वप्न का सीन जान पड़ता था।

सुरेशचन्द्र बहुत दिनों से सरयू को देखते आ रहे थे। वह इस बातचीत में चतुर, सरल, सदानंदमयी किशोरी को एक चपल, सुख भोग में पली हुई, साधारण शिक्षित नारी ही समझते थे। संसार के सुख के मार्ग में चलनेवाली, भोग-विलास के राज्य में रहनेवाली और स्त्रियों के ही समान उसे भी वह जानते थे। इसी से उसके सम्बन्ध में गंभीर भाव से सुरेश ने कभी नहीं सोचा। किन्तु इधर कई सप्ताहों से सरयू की सेवा-कार्य में तत्परता और निष्ठा देखकर उनका वह भ्रम दूर हो गया था। सरयू की दृढ़ता, कर्म प्रवणता, अकुण्ठित सेवा और आत्म-त्याग देखकर वह सचमुच ही मुग्ध हो गये थे। उन्होंने समझ लिया था कि इस सुन्दरी तरुणी को अन्य सब साधारण नारियों की कोटि में समझना सचमुच उसके बारे में घोर अविचार करना है। यह बालिका वास्तव में अपनी विशेषता रखती है। नीची जाति के, सम्पूर्ण अपरिचित, असहाय और पीड़ित बालकों की अपने पेट के बच्चों की तरह सेवा और उन पर स्नेह करने में सुरेश ने सरयू की प्रकृति में मातृरूप का जो विकास देखा, वह सर्वत्र सुलभ नहीं।

सुरेश ने चलते-चलते सरयू को लक्ष्य करके कहा—देखिए, आपके बारे में मेरी बहुत ही भ्रान्त धारणा थी। उसके लिए आज मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

विस्मित सरयू ने सुरेशचन्द्र की ओर घूमकर कहा—कैसी धारणा थी।?

धीर कण्ठ से सुरेश ने कहा—मैं सोचता था, आप ऐसी कोमल और कमसिन हैं कि संसार के दुःख-कष्टों की आँधी में टिक सकना आपके लिए संभव नहीं। आप लोग केवल फूल की तरह महँक से भरी हैं, रूप का रंग झलकाने वाली हैं। ज़रा ज़ोर से हवा चलते ही आप लोग झड़ पड़ती हैं, प्रखर सूर्य के तेज में मलिन हो पड़ती हैं—मुरझा जाती हैं!

चलते-चलते सरयू उमड़ी हुई नदी की तरह कल हास्य करके कह उठी—अच्छा हम लोगों ने ऐसा क्या अपराध किया है, जो हमारे बारे में आप ऐसी महान् धारणा कर बैठे? सत्य ही क्या हम लोगों की प्रकृति इतनी हलकी, इतनी ओछी है?

सुरेश ने खेद के स्वर में कहा—उस ग़लत धारणा के लिए तो मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ! आख़िर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ—ग़ल्ती होना, भ्रम होना स्वाभाविक ही है।

सहसा गंभीरभाव धारण करके सरयू बोली—देखिए, आप लोग चाहे जितने बड़े पण्डित क्यों न हों, स्त्री-जाति को इतना क्षुद्र और दुर्बल न समझिएगा। हम लोगों में अनेक दोष हो सकते हैं; हम सहज ही में विचलित हो उठती हैं, मर्दों की तरह सब कामों में दृढ़ता के साथ आगे नहीं बढ़ सकतीं; किन्तु उसके लिए दोषी पुरुषों को जितना अधिक किया जा सकता है, उतना स्त्रियों को नहीं। आप लोग हम नारियों को ठीक तैयार नहीं कर पाये। आपने हमें जैसा बनाना चाहा, हम वैसी ही बनीं।

सुरेश नदी के प्रवाह की ओर ताक रहे थे। सरयू की ओर मुख फेरकर उन्होंने कहा—आपका कहना बिलकुल सच है। हमने अपने आधे अंग के प्रति, श्रेष्ठ अंग के प्रति, अपनी विवेचना-बुद्धि के दोष से, कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। आजकल हम भूल गये हैं कि हम भारतवर्ष के आदमी हैं—हम आर्य हैं। इसीसे आर्य हिन्दुओं की विशेषता को, प्राच्यों की व्यवस्था-

प्रणाली को तोड़-फोड़कर पश्चिम के आदर्श पर ढालना चाहा था। उसी का फल यह हुआ कि पाश्चात्य को तो पाया नहीं, पूर्व के आदर्श को भी गँवा दिया।

कई सेकिंड तक दोनों चुप रहे। दोनों चुपचाप चले आ रहे थे। हेमन्त के आरम्भ में आकाश की शोभा बड़ी सुंदर थी। आकाश एकदम स्वच्छ नीलवर्ण था। हवा में भी कुछ ठंडक थी। खुले हुए आकाश के नीचे, सन्ध्या की वायु में एक शान्त नीरवता या सन्नाटा नज़र आ रहा था। प्रकृति की निर्दोष सुषमा जैसे चारों ओर फूट उठी थी। सुरेश के मन में आज उदास भाव जैसे भर गया था।

सुरेश कह उठे—देखिए, संसार की दीनता, रिक्तता—करुण-क्रन्दन का कोलाहल सुन-सुनकर मन में जैसे एक उदासी का भाव छा जाता है—जैसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अपनी जन्मभूमि की शोचनीय अवस्था देखकर छाती फटने लगती है—मैं तो तनिक भी शान्ति नहीं पाता!

सुरेश चलते-चलते सहसा रुक गये। आज हृदय को इस तरुणी के आगे खोलकर रखने की इच्छा न जाने क्यों उनके मन में अत्यन्त प्रबल हो उठी।

सरयू भी क्या उनकी इस मानसिक चंचलता को देखकर विचलित, अस्थिर हो उठी थी? वह एक बार सुरेश की ओर क्षणिक दृष्टि डालकर कोमल, किन्तु स्पष्ट स्वर में कह उठी—आप क्या हमेशा यों संन्यासी ही बने रहकर घूमते रहेंगे?

प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक था। कम-से-कम सुरेश ने उसमें कुछ भी असमंजस्य नहीं देख पाया। वास्तव में गृहधर्म के ऊपर उनकी आसक्ति का अभाव ऐसा था कि किसी भी सुपरिचित आत्मीय की दृष्टि उधर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकती थी।

सुरेशचन्द्र ने चलते-चलते ही उत्तर दिया—संन्यासी?—

नहीं, उतनी शक्ति भी मुझ में नहीं है और यह भी नहीं कह सकता कि वैसी इच्छा ही है। गृहस्थ का ही कर्तव्य श्रेष्ठ है, इसलिए मैं कर्तव्य-परायण गृहस्थ को श्रद्धा की दृष्टिसे देखता हूँ। और—जो भगवान् के चरणों में अपना सर्वस्व, अपने सब कर्म कर सकता है, उसे, उस सच्चे संन्यासी को महापुरुष जानकर मैं उसकी पूजा करता हूँ। वैसा संन्यासी होने की शक्ति मुझमें नहीं है और न मेरी वैसी मनोवृत्ति ही है। मैं गृहधर्म का पालन करने के साथ-साथ मनुष्य-कर्त्तव्य के पालन का ही पक्षपाती हूँ।

चुपचाप और भी कुछ दूर चलने के बाद सुरेश फिर कहने लगे—मगर जानती हैं आप, मेरा जीवन जैसे स्वप्नमय है! केवल अपने एक एक स्वप्न को सफल, सार्थक बनाने की कल्पना मन में लिये इधर-उधर घूम रहा हूँ। इसी कारण मेरी वास्तविकता-शून्य जीवन-प्रणाली औरों की दृष्टि में आकांक्षा की वस्तु नहीं है। मैं काम करना पसंद करता हूँ, काम में ही डूबा रहना चाहता हूँ। किंतु वह कार्य-निष्ठा संसारी लोगों को प्रायः पसंद नहीं आती। मुझे तो संसार के अन्य सब विषयों के प्रति आसक्ति अवास्तविक जान पड़ती है? इसीसे अपनी इस जीवन-यात्रा के मार्ग में—श्यामलताहीन, उजाड़, शोभा शून्य यात्रा-पथ में—किसी और को चिर-संगी बनाने में मुझे भय मालूम पड़ता है। फिर यह बात भी है कि मुझ-जैसे उद्भट प्रकृति के मनुष्य का साथ सदा के लिए स्वीकार करना किसे रुचिकर होगा?

सरयू तनिक तेज़ चल रही थी। अब तक वह चुप थी। उसकी दृष्टि नीचे झुकी हुई थी।

सहसा सरयू कह उठी—क्या कहा आपने? ऐसी जीवन-यात्रा ऐसे स्वार्थशून्य मनुष्य का संग किसी को रुचिकर न होगा?

सुरेश ने गंभीर भाव से कहा—हाँ, मेरा ख़याल तो ऐसा ही है मनुष्य—वह चाहे मर्द हो चाहे औरत—इस तरह संसार की

यात्रा करना नहीं चाहता। सभी चाहते है पार्थिव आमोद—सांसारिक सुख, भोग, नाच, गाना—जो कुछ आराम और भोग की सामग्री है, वही सब को पसंद है, सभी का झुकाव उधर ही देख पड़ता है। किन्तु मेरा हृदय चीत्कार करके कह उठता है—मुझे केवल सेवा की प्रवृति चाहिए। आर्त्त, पीड़ित, संकट में पड़े हुए दीन-दुखियों के मुख में जिससे शान्ति की हँसी फूट उठे, वही काम करने के लिए मेरा पागल मन मचला रहता है। वे अपना गुरु कहकर मन-बाणी-काया से जिन्हें श्रद्धा करता हूँ, जिनकी पूजा करता हूँ, उन्हीं के जीवन में मैंने इस महत्तम अनुष्ठान का—कर्मनिष्ठा का—आदर्श देख पाया है। गृहस्थ होकर गृहस्थाश्रम से उस आदर्श पर अगर तनिक भी चल सकूँ, तभी मैं अपने मनुष्य जन्म को सार्थक समझूँगा। अब आप ही बतलाइए, ऐसे पागल आदमी के संसर्ग में कौन आना चाहेगा?

गाढ़े और गंभीर कंठ से सरयू ने कहा—हैं! ऐसे आदमी भी हैं, जो इस प्रकार का संग प्राप्त करने का अधिकार पाकर कृतार्थ हो जायँगे!

सुरेशचन्द्र सहसा ठिठककर खड़े हो गये। उन्हें क्या सरयू के कण्ठस्वर में कोई अप्रत्याशित भाव देख पड़ा था? सरयू भी साथ ही खड़ी हो गई। दूर तक चली गई सड़क जैसे स्तब्ध होकर कोमल चन्द्र-किरणों के स्पर्श की माधुरी का अनुभव कर रही? सुरेशचन्द्र ने एक बार अपना दाहना हाथ उठाया; किन्तु वैसे ही न जाने क्या सोचकर खींच लिया। फिर संयत और कोमल स्वर में बोले—नहीं; तुम्हारे दादा से ही कहूँगा।

सरयू के गोरे चेहरे पर जैसे गुलाल मल दिया।

दोनों चुपचाप तेज़ी के साथ चलने लगे। क्रमशः सड़क पर अधिक लोग दिखाई पड़ने लगे। थोड़ी दूर पर सामने ही सुरेश का सफ़ेदी से पुता हुआ घर दिखाई देने लगा।

दरवाजे के बाहर नौकर सनातन खड़ा था। चुपचाप दोनों ने भीतर प्रवेश किया।

सीता भाई और नन्द के आने पर उठ खड़ी हुई। दो-एक सामयिक प्रश्न करने के बाद सुरेश अपनी कोठरी में चले गये। उज्ज्वल प्रकाश में सीता ने सरयू के चेहरे पर कौन-से भाव की लिपि देखी, यह वही जाने। वह जैसे सरयू के मुख से कोई नई बात सुनने के लिए दमभर प्रतीक्षा करती रही। उसके बाद स्नेह के साथ नंद के कंधे पर एक हाथ उसने रक्खा। सरयू के मुख-मण्डल पर उत्तेजना की लाली क्षण-क्षण भर पर झलक रही थी। सीता ने कहा—सरयू!

इसी एक सम्बोधन में सम्पूर्ण प्रश्न जैसे बिलकुल स्पष्ट हो उठा। "भाभी!" कहकर तरुणी सरयू ने अपनी सहचरी और सबसे बढ़कर आत्मीय सीता की छाती में मुँह छिपा लिया।

सीता ने अपने कमलनालतुल्य गोल, उज्ज्वल और कोमल बाहुओं के पाश में सरयू को बाँध लिया। उसके बाद धीरे-धीरे सरयू के लज्जारुण मुख में स्नेह के चुंबन की रेखा अंकित कर दी।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

उस दिन तीसरे पहर खूब जोर की हवा चली थी। पानी भी कुछ कम नहीं बरसा था। आकाश में उस समय भी बादल छाए हुए थे। संध्याकाल का अन्धकार उस समय भी ठीक तौर से पृथ्वी पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया था। माधव काम-काज समाप्त करके जैसे बाहर दरवाजे पर आकर खड़ा हुआ, वैसे ही उसने देखा, कई व्यक्ति जैसे उसी के घर की ओर आ रहे हैं। दूर से उसे वे आदमी बिलकुल अपरिचित जान पड़े।

एकाएक माधव से मुखमंडल पर कौतूहल का भाव फूट उठा। आनेवाले तीन आदमी थे। उनमें दो औरतें थीं। माधव ने ध्यान देकर देखा, उनका पहनावा उधर की औरतों का-जैसा नहीं था। इसके अलावा उस गाँव की अथवा आस-पास के गाँवों की सब औरतों को तो वह पहचानता है। फिर ये कौन हैं?

उन आदमियों के और भी पास आने पर माधव ने देखा, आगे-आगे एक लम्बे-चौड़े डीलडौल का मर्द है, जिसकी वेष-भूषा बाहुल्य-वर्जित होने पर भी प्रतिष्ठित शिक्षित पुरुषों की सी है। उसके पीछे दो औरतें हैं, जो भले घर की और उच्च शिक्षित जान पड़ती हैं। माधव उनके विषय में सोचने लगा कि ये कौन हैं?

निकट आकर उस मर्द ने कहा—हम लोग इस समय बड़ी विपत्ति में पड़े हैं। तूफ़ान से हमारी नाव नहर में डूब गई है। हम तीनों आदमी किसी तरह बच गये।' माँझी-मल्लाहों की भी जान नहीं गई। यह गाँव हमारा जाना नहीं है, यहाँ हमारे सब अपरिचित हैं। आज रात भर के लिए अगर कहीं—

माधव अबतक विस्मय के साथ उस भले आदमी के मुँह की

ओर ताक रहा था। सहसा बीच ही में रोककर कह उठा—आपको तो जान पड़ता है, मैंने कहीं देखा है, पहचानता हूँ।

आगन्तुक ने माधव को अच्छी तरह देखकर कहा—जान पड़ता है, आपको भी मैंने पहले जैसे कहीं देखा है।

अकस्मात् माधव को स्मरण हो आया। वह कह उठा—ओह! आप सुरेश बाबू हैं न? पुरी में मुलाकात हुई थी। आइए, आइए।

सुरेश भी उस लम्बे-चौड़े बलिष्ठ व्यक्ति को पहचान गये। बोले—ठीक है! आप रमेन्द्र की खोज में गये थे और बतलाया कि आपका और रमेन्द्र का घर एक ही गाँव में है। रमेन्द्र का घर यहाँ से कितनी दूर है?

साथ की दोनों औरतों ने भी यह सुनकर विस्मय के साथ माधव की ओर देखा।

माधव ने उत्फुल्ल कण्ठ से कहा—रमेन्द्र का घर? यही तो उनका घर है!

सुरेश ने पुलकित होकर कहा—हाँ! यही घर रमेन्द्र का है? तो फिर आप—आप माधव बाबू?

कुण्ठित स्वर में माधव ने कहा—मुझे आप बाबू न कहें। मैं—

बाधा देकर सुरेश ने कहा—आप रमेन्द्र के दादा हैं, इसलिए मेरे भी बड़े भाई हैं। अच्छा माधव दादा, रमेन्द्र आजकल घर ही में है न?

माधव—जी नहीं, वह घर में नहीं है। खैर, यह सब बातचीत पीछे होगी।—ओह, आप लोग, तीनों जने एकदम भीग गये हैं। अभी तक मेरा ध्यान ही इधर नहीं गया था। चलिए, चलिए, जल्दी ये कपड़े उतार डालिए। मा, आप लोग भीतर चलिए।

सुरेश ने कहा—दादा, यह मेरी बहन सीता है, और वह सीता की ननद हैं।

माधव—जल्दी भीतर चलिए मा ! ओह, आप लोगों को बड़ा कष्ट मिला !

अन्तःपुर का रास्ता दिखाकर माधव ने विनीतभाव से उन स्त्रियों से आगे बढ़ने का अनुरोध किया। बाहर की बैठक में सुरेश को ले जाकर माधव ने सीता और सरयू से कहा—आप लोग सीधे भीतर चली जाइये। संकोच या लज्जा कुछ भी न कीजिएगा, यह आप ही का घर है।

सीता और सरयू अन्तःपुर की ओर अग्रसर हुईं। दरवाजे के पास आकर दोनों ठिठक गईं। आँगन के बीच में तुलसी के थाले पर दीपक रखकर घुटने टेके यह कौन तरुणी बैठी है ! आँखें मूँदे यह किसके ध्यान में तन्मय हो रही है ! दीपक का प्रकाश उसके मुख पर पड़ रहा है। दोनों ने मुग्ध दृष्टि से देखा, उस शान्त सुन्दर मुख में शान्ति की छवि जैसे समुज्ज्वल हो उठी है।

तरुणी दोनों हाथ जोड़े किससे क्या निवेदन कर रही थी, कौन जाने ! किन्तु ऐसी निष्ठा से परिपूर्ण अनन्य पूजा की छवि, आत्मनिवेदन का चित्र सीता और सरयू ने शायद और कभी कहीं नहीं देखा था। उन्होंने देखा, जैसे एक अपूर्व प्रकाश की दीप्ति ने इस पुजारिणी नवीना नारी के मुखमण्डल को उद्भासित कर रक्खा है।

सरयू भीगे कपड़े पहने जाड़े से काँप रही थी। वह जड़ित कण्ठ से कोमल स्वर में कह उठी—कैसा सुन्दर दृश्य है भाभी !

सुन्दर ! इस दृश्य की तुलना नहीं हो सकती। हाय ! सीता अगर कभी आराध्य देवता के चरणों में घड़ी भर के लिए भी इस तरह आत्मनिवेदन कर सकती ! अन्य समय होता—कम से कम एक महीना पहले भी—ऐसा दृश्य सीता के मन को तनिक भी अभिभूत न कर सकता। एक जड़ पेड़ के आगे मनुष्य को इस तरह झुकते देखकर अवश्य ही उसे घोर कुसंस्कार कहकर वह उसकी हँसी उड़ाती ! किन्तु इधर कई सप्ताह की अभिज्ञता से

उसके पहले के मन में बहुत बड़ा परिवर्तन होगया था। पूजानिरत रमणी के प्रति श्रद्धा से आज उसका हृदय भर गया। किन्तु मुख से वह कोई शब्द निकालकर अपने मन का भाव प्रकट नहीं कर सकी।

ध्याननिरत संध्या ने सिर झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद उठते ही उसकी दृष्टि दरवाजे पर खड़ी हुई और स्तब्ध होकर उसी की ओर देख रही दोनों स्त्रियों के ऊपर पड़ी। सहसा उसे जान पड़ा, दो देवकन्याएँ जैसे आकाश से पृथ्वी पर उतर आई हैं!

संध्या का वह विस्मय-विमूढ़ भाव दूर होने के पहले ही माधव ने बाहर से पुकारकर कहा—बहू घर में मेहमान आए हैं। ये लोग पानी में भीगकर कष्ट पा रहे हैं। चटपट कपड़े बदलाने का प्रबन्ध कर देना होगा।

सन्ध्या फौरन् उठ खड़ी हुई। मामला अच्छी तरह समझ में न आने पर भी उसने चटपट द्वार पर खड़ी हुई दोनों स्त्रियों के निकट जाकर मधुर स्वर में कहा—आइये आप लोग।

और यह कहने के साथ ही आगे खड़ी हुई सीता का हाथ पकड़कर वह घर के भीतर चल दी। गँवईगाँव में परिचय की कुछ इतनी आवश्यकता नहीं समझी जाती। खास कर अतिथि-सत्कार के दृष्टान्त तो सन्ध्या ने मायके और सुसराल में भी अब तक इतने देखे थे कि उसके लिए यह कोई नई बात न थी। शहरों की नीरव लौकिकता या ज़बानी जमा-खर्च अथवा अन्तःसार-शून्य विनय एवं भद्रता की शिक्षा उसने नहीं पाई थी।

सन्ध्या के मधुर संभाषण से आकृष्ट होकर सीता और सरयू का सारा संकोच जाता रहा और वे घर के भीतर अग्रसर हुई। रमेन्द्र की माता का संध्या-काल का जप और पूजन वैसे ही समाप्त हुआ था, वह बरामदे में आकर खड़ी थीं। माधव का कण्ठस्वर सुनकर वह कह उठीं—माधव, क्या कहता है रे?

माधव उस समय भीतर के आँगन में आकर खड़ा हुआ था। उसने कहा—मा, खोका के मित्र सुरेश बाबू और उनकी बहन वगैरह बड़ी विपत्ति में पड़ कर यहाँ आई हैं। नदी में इन लोगों की नाव डूब गई है। पीछे सब हाल सुनना, इस समय मुझे एक धोती और ओढ़ने के लिए कोई ऊनी चादरा या और कुछ गरम कपड़ा ला दो। औरतों को मैंने भीतर भेज दिया है, शीघ्र उनके भीगे कपड़े बदलाने की व्यवस्था करो।

गृहिणी ने तेजी के साथ भीतर से एक धुली हुई धोती और एक अलवान लाकर माधव को दी। उसके बाद राधारानी (माधव की स्त्री) को कुछ आज्ञा देकर वह अभ्यागत स्त्रियों को देखने चलीं। अकस्मात् बहुत-सी पुरानी बातें उन्हें याद आ गईं।

घर में आने पर रमेन्द्र सबसे बड़े जिस कमरे को अपने व्यवहार में लाता था। उसी कमरे में संध्या और उसकी सास रात को सदा सोती थीं। संध्या मेहमानों को उसी कमरे में ले गई।

अलगनी से दो चुनी हुई साड़ियाँ लेकर उस प्रसन्न-हास्यमुखी संध्या ने सीता और सरयू को पहनने के लिए दीं, उसके बाद सन्दूक खोलकर दो शेमीजें बाहर निकालीं, तौलिये का इस्तेमाल गाँवों में कम होता है। तौलिये के बदले दो अंगोछे निकालकर संध्या ने कहा—घाट पर चली जाइएगा, या जल मँगा दिया जाय? पहले हाथ-पैर धोकर धोती बदल डालिए।

कमरे के भीतर प्रवेश करते समय गृहिणी के कानों में बहू के इस कथन का अंतिम अंश केवल पहुँचा था। वह कह उठी—मैंने बड़ी बहू से कह दिया है, आँगन में उसने पानी लाकर रख दिया होगा। घाट न जाना पड़ेगा। चलो बेटी, वहीं एकान्त में चल-कर कपड़े बदलना।—ओह! एकदम भीग गई हो बेटी!

सम्पूर्ण अपरिचितों के साथ यह कैसी मधुर आत्मीयता है!

सरयू और सीता मुग्ध हो गईं। दोनों ने गीले कपड़े पहने ही पैर छूकर रमेन्द्र की मा को प्रणाम किया।

रमेन्द्र की मा कह उठीं—बस, हो गया। पहले तुम कपड़े उतार आओ बेटी! राम राम, तुमने बड़ा कष्ट पाया!—बहू, बड़ी बहू और तुम जाकर खटपट चाय बनाने का प्रबन्ध करो। रमेंद्र का मित्र सुरेश आज इन बेटियों के साथ तुम्हारा अतिथि है! इन लोगों को कुछ भी कष्ट न होने देना चाहिए।

सीता ने कुण्ठित भाव से कहा—नहीं मा, हम लोगों के लिए इतना व्यस्त होने की जरूरत नहीं है।

गृहिणी ने कहा—अरे बेटी, तुम पहले चलकर कपड़े तो बदल डालो। बहू, वह नया चाय का टीन निकाल तो लाओ। जाड़े के मारे देखो, थर-थर काँप रही हैं दोनों। इस समय गरम चाय की बड़ी जरूरत है। जाओ।

इस घर में चाय पीने का आदी कोई नहीं था; किन्तु उसकी व्यवस्था सब थी। पुत्र चाय का भक्त था, इस लिए घर में चाय अवश्य रहती थी। इसके सिवा गृहस्थ के घर में न जाने कब, किसके लिए चाय की जरूरत पड़ जाय—जैसे आज पड़ गई—इस लिए भी चाय रहती अवश्य थी।

सीता सोच रही थी, "बहू!" यह लक्ष्मी-प्रतिमा के समान सुन्दर रमणी क्या रमेन बाबू की स्त्री है? उनका क्या ब्याह हो चुका है? यह खबर तो लेकिन कभी उसने या उसके घर के और किसी आदमी ने नहीं सुनी। रमेन्द्र ने भी नहीं कहा!

दोनों को निर्दिष्ट स्थान दिखाकर लालटेन वहीं रखकर रमेन्द्र की मा दूसरे किसी काम के लिए चली गईं। धोती बदलते-बदलते सरयू ने सीता से कहा—भाभी, रमेन्द्र बाबू का क्या ब्याह हो गया है? यह खबर तो हम लोगों को न थी?

सीता ने यह नहीं प्रकट किया कि यही प्रश्न उसके मनमें भी

उठा था। रमेन्द्र बाबू विवाहित हैं! तो भी—ना, उस ख़याल को अब मनमें लाने की आवश्यकता नहीं। रमेन्द्र विवाहित है या चिरकुमार, यह जानकर वह क्या करेगी? उससे उसकी न कुछ हानि है न लाभ। रमेंद्र से उसका सम्बन्ध ही क्या है? किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह रमेंद्रनाथ कैसा अभागा है! ऐसी स्त्री जिसके घर में हो, उसका ऐसा मानसिक अधःपतन! आखिर इसका कारण क्या है? रमेंद्र तो इतनी नीच प्रकृति का नहीं था!

वाह! यह तो बड़ी अच्छी समालोचना है! रमेंद्र के मानसिक अधःपतन के सम्बन्ध में वह निःसंकोच होकर समालोचक बन बैठी! किन्तु उसके भी तो देवता के समान गुणवान् रूपवान् स्वामी हैं। फिर वही क्यों अब तक वह यमयंत्रणा आत्मा का कठोर पीड़न सहती रही? इसी का उत्तर उसके पासक्या है?

भीगे कपड़े उतारकर हाथ-मुँह धोने के बाद दोनों बहुत कुछ सुस्थ हुईं। वे बाल्टी के पानी में धोती और कुर्ता धोने जा रही थीं, इसी समय संध्या वहाँ आकर उपस्थित हुई।

उसने यह देखकर कहा—यह सब रहने दीजिए। इसके लिए आप कुछ फ़िक्र न करें। आप ठहरीं अतिथि देवता!

सरयू ने कहा—वाहजी, यह भी कहीं हो सकता है? हम अतिथि हैं तो इसके अर्थ यह नहीं कि आप लोग हमारे पहनने के कपड़े भी धोवें। ऐसा न करने से क्या आप लोग पाप के भागी होंगे?

इतना कहकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार खिलखिलाकर हँसने लगी।

संध्या ने लज्जा के साथ कोमल स्वर में कहा—पाप होगा या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती; लेकिन यह ठीक है कि उससे सेवा-धर्म का निर्वाह पूरा न होगा। खैर, अभी आप कमरे में चलिए, आपकी चाय ठंडी हुई जा रही है।

संध्या के अनुरोध से दोनों उसके साथ चलीं।

इकीसवाँ परिच्छेद

धोती बदलने के बाद एक अलवान ओढ़ने से सीता और सरयू दोनों की तबियत ठिकाने हुई। तब उन्होंने लाल्टेन के प्रकाश में कमरे को अच्छी तरह देखा। कहीं रत्ती भर भी बाहुल्य नहीं था; सब जरूरत भर का ही सामान था। हर एक जरूरी चीज करीने के साथ यथास्थान रक्खी थी, जिससे उसे सजानेवाले की रुचि, सौन्दर्यानुराग और सफ़ाई-पसंदगी की प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता।

दीवार में कई तरह के चित्र लगे थे—वन में नल और दमयंती, भीष्मपितामह की शरशय्या, सीता का पाताल-प्रवेश आदि चित्र थे, और हर एक चित्र में चित्रकार ने अपनी अपूर्व प्रतिभा और कलाकौशल का परिचय दिया था। विदेशी चित्रकारों के कई प्राकृतिक-दृश्य-सम्बन्धी बढ़िया चित्र भी उस कमरे की शोभा बढ़ा रहे थे।

रमेन्द्र की माता और पत्नी ने अपनी रुचि अथवा चित्तवृत्ति के अनुरूप ही उस कमरे को अच्छी तरह सजा रक्खा था। कमरे के भीतर प्रवेश करते ही जैसे हिन्दू-जाति के पवित्र जीवन और निर्दोष हृदय का परिचय प्राप्त होता है। सरयू और सीता दोनों यह देखकर मुग्ध हो गईं। सुदूर देहात में गृहस्थ के भवन में आज वे जो देख रही हैं, वह बहुत-सी शहर में रहनेवाली पाश्चात्य-भाव पर अनुराग रखनेवाली विलासिनी महिलाओं के सोने के कमरों में भी देखने को नहीं मिल सकता।

सन्ध्या दो प्याले चाय के लेकर उपस्थित हुई। उसके पीछे रमेन्द्र की माता रकाबी में गरम पूड़ी कचौरी और कई तरह की

तरकारियाँ लेकर आईं। सीता और सरयू वह सब सामान देख-कर जैसे घबरा उठीं। गृहिणी उनके मन का भाव ताड़ गईं। बोलीं—बेटी, तुम इतना संकोच क्यों करती हो? तुम तो केवल अतिथि नहीं हो, इस घर की लड़की ही हो? रमेन और सुरेश को मैं अलग-अलग नहीं समझती। मा के आगे लड़कियों को लज्जा न करनी चाहिए। लो बेटी, भोजन करो।

सरयू ने सन्ध्या की ओर देखकर कहा—आपकी चाय कहाँ है?

लज्जा से संध्या का मुख लाल हो उठा। उसने कोमल स्वर में कहा—मैं तो बहुत कम चाय पीती हूँ। शायद ही कभी—

बीच ही बाधा देकर सरयू ने कहा—फिर तो केवल हमारे लिए इसकी कोई जरूरत नहीं थी। आप न पियेंगी तो हम भी नहीं पियेंगी।

हँसकर सन्ध्या ने कहा—आप लोग पानी में भीग गई हैं। आप लोगों को इस समय चाय की बड़ी जरूरत है।

सरयू ने सिर हिलाकर कहा—ना, यह न होगा। और एक प्याला लाइए। हम तीनों जनी एक साथ पियेंगी।

रमेन्द्र की मा ने कहा—ये लोग जब कह रही हैं, तब इनके सम्मान की रक्षा के लिहाज से तुम्हें नाहीं न करनी चाहिए बहू। मैं और एक प्याला लाए देती हूँ, तुम बैठो।

दम भर बाद एक प्याला चाय और एक रकाबी में भोजन की सामग्री लेकर रमेन्द्र की मा आ गईं। सन्ध्या अपनी सास के हुक्म को टाल न सकी। उसने चाय का प्याला उठा लिया।

इन नवागत नारियों का कुछ भी परिचय सन्ध्या को नहीं मालूम था। बातचीत के सिलसिले में केवल इतना उसकी समझ में आया था कि सीता उसके स्वामी के मित्र की बहन है। सरयू सीता की ननद है। सीता के साथ स्वामी का कुछ परिचय

या घनिष्ठता है या नहीं, यह जानने का कोई मौक़ा उसे नहीं मिला था। स्वामी के निकट वह आप अपरिचित है। जब से विवाह हुआ, तब से अब तक कै बार उसकी स्वामी से भेंट हुई है! थोड़े समय के लिए जो कभी भेंट भी हुई तो बहुत ही संक्षिप्त वार्तालाप हुआ, और उसमें भी कोई ऐसी बात नहीं हुई, जो याद रखने योग्य हो। स्वामी के मुख से जो मामूली दो-चार बातें सुनने का सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ था, उन्हें उसने कृपण के धन की तरह अपने मन के बंद संदूक में छिपा रक्खा था। उसके मनमें कभी-कभी एक अस्पष्ट चिन्ता जाग उठती थी। वह यही कि उसे ब्याहकर, जान पड़ता है, उसके पतिदेव सुखी नहीं हुए। किन्तु विद्यालय की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वामी यह तपस्या कर रहे हैं, यही एक बात पिता, माता और सास के मुख से बारम्बार सुनने पर भी उसके नारी-हृदय में कभी-कभी जो खयाल पैदा हो जाता था, उसे वह बड़े कष्ट से दूर कर पाती थी। स्वामी को सुखी करने के लिए उसके हृदय में एक प्रबल आग्रह था; किन्तु उसका ऐसा दुर्भाग्य है कि चार वर्ष के भीतर वैसा शुभ सुयोग उसे किसी दिन नहीं नसीब हुआ।

रह गया पत्र। सो स्वामी का पत्र कैसा होता है, यह वह जानती ही नहीं। लज्जा-संकोच गँवाकर, हृदय के आवेग के वश होकर, उपयाचिका होकर, बीच-बीच में उसने स्वामी को कई पत्र लिखे भी तो उत्तर एक का भी नहीं पाया। केवल एक बार रमेन्द्र ने अपनी रचना "यूथिका" की एक कापी उसे भेजी थी और उसमें एक लाइन अपने हाथ से लिख दी थी—"श्रीमती सन्ध्या देवी के करकमलों में," बस, केवल इस एक पंक्ति के सिवा स्वामी का कोई हस्ताक्षर उसके पास नहीं था। स्वामी का प्रथम उपहार होने के कारण वह पुस्तक सन्ध्या को बहुत प्रिय थी। उस काव्यग्रंथ, की एक-एक पंक्ति उसे कण्ठाग्र थी; पर उसे और कोई नहीं जानता था।

स्वामी उसे पत्र तक नहीं लिखते, यह बात उसने भूलकर भी किसी को जानने नहीं दी थी ! वह मर जाने पर भी अपनी इस शून्यता की बात किसी और को जानने नहीं दे सकती ! केवल एक दिन अपनी मा के समान, माता से भी बड़ी, अगाध स्नेहमयी सास की जिरह में पड़कर उसे अपने उपेक्षित जीवन का आभास-मात्र अवश्य देना पड़ा था।

यह इतिहास माधव और रमेन्द्र की माता के सिवा और किसी को नहीं मालूम था कि एक दिन रमेन्द्र सीता से व्याह करने के लिए पागल हो उठा था। इन दोनों व्यक्तियों ने हर तरह से यह चेष्टा की कि यह बात किसी पर प्रकट न होने पावे। यहाँ तक कि माधव की स्त्री राधारानी तक को इसका कुछ भी पता नहीं था। अतएव सन्ध्या को अपने स्वामी के जीवन के इस अध्याय की कुछ भी खबर नहीं थी।

सन्ध्या स्वभाव से ही धीर और गंभीर थी। अन्यथा कौतूहल-प्रियता उसमें नहीं थी। माता पिता के निकट उसने बचपन से ही संयम की शिक्षा पाई थी। पिता और माता के जीवन का आदर्श उसके सामने था। मा-बाप ने उसे जिस साँचे में ढाला था, उसी में वह ढली थी। सन्ध्या के स्वभाव और चरित्र में ऐसा एक स्वाभाविक गांभीर्य था कि दर्शक के मन में उसे देखकर उसके सम्बन्ध में एक सांभ्रम या इज्जत का भाव आप से ही पैदा हो जाता था।

सीता वगैरह का कोई भी विशेष परिचय अपना जाना न होने पर भी केवल सामाजिक कर्त्तव्य, गृहस्थ के धर्म अथवा मनुष्य के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य की प्रेरणा से वह सहज सरल भाव से नवागत नारियों के सुख-स्वाच्छन्द्य और प्रीति के लिये आग्रह प्रकट कर रही थी। चाय पीने का उसे शौक़ नहीं था अथच इस निर्दोष कार्य द्वारा अगर वह अपने अतिथियों को सन्तुष्ट कर सकती है तो अवश्य करेगी, ऐसी ही उसकी भावना थी।

गर्म कचौरी का कौर मुँह में डालकर सरयू ने कहा—आप लोगों ने इतनी ही देर में इतनी तैयारी कर डाली कि देखकर आश्चर्य होता है ! कहने को तो यह देहात है, पर यहाँ की व्यवस्था बड़ी सुन्दर है ।

सन्ध्या ने मुसकाकर कहा—यह कौन ऐसी बड़ी बात है ? हम देहाती आदमी हैं, आप लोगों की रुचि के माफ़िक व्यवस्था कैसे कर सकते हैं ?

सरयू ने कहा—मैं ज़बानी शिष्टाचार की दृष्टि से नहीं कहती । सचमुच इस समय हरे मटर की कचौड़ी देहात में खाने को मिल सकती हैं, यह धारणा भी मेरी न थी । अच्छा मटर की फली आजकल कहाँ मिलीं बहन ?

संन्ध्या ने कहा—हमारे बाग़ में हैं । जेठजी अपने हाथ से ये सब चीजें पैदा करते हैं ।

सरयू—जेठजी ? रमेंद्र बाबू के क्या कोई बड़े भाई हैं ?

सरयू को माधव का परिचय नहीं मालूम था । लेकिन सीता को कुछ-कुछ मालूम था । सीता ने कहा—रमेंद्र बाबू तो अपनी मा के अकेले बेटे हैं । जिनको यह जेठ कहती हैं, वह रिश्ते में रमेंद्र बाबू के भाई होते हैं, पर हैं सगे भाई से बढ़कर ।

सीता के मुख से यह सुनकर सन्ध्या को विस्मय हुआ । उसने समझा, उसके स्वामी का परिचय ये अच्छी तरह जानती हैं ।

सरयू एकाग्र दृष्टि से कुछ देर तक संध्या की ओर देखती रहकर सीता से बोली—भाभी, मैं यही सोचती हूँ कि रमेंद्र बाबू ऐसी सुन्दरी स्त्री को छोड़कर देशभ्रमण के लिए कैसे जा सके ?

प्रश्न बहुत ही सरल और स्वाभाविक था । किन्तु वह सुई की तरह संध्या और सीता, दोनों के हृदयों में चुभ गया ।

संध्या स्वामी के द्वारा अनादृत है, इस बात को इस संसार का और कोई आदमी नहीं जानता—इस दुःख को वह अपने हृदय

में छिपाए रहती है। और किसी के मुखसे वही बात (सहानुभूति या हँसी से भी) सुनकर सन्ध्या को कष्ट होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। सीता के हृदय में भी सरयू का यह प्रश्न चुभ गया। एक दिन जो अस्पष्ट था आज इस प्रश्न से वह स्पष्ट हो गया। पत्नी के प्रति आसक्ति या प्रेम होता तो रमेन्द्र कभी—

चिन्ता में सहसा बाधा पड़ी। रमेंद्र की मा ने कमरे के भीतर आकर कहा—बहू, यहाँ से फ़ुरसत पा गई हो तो जरा उधर चलो। उधर का काम भी तो तुम्हीं को देखना है बेटी!

"जाती हूँ" कहकर संध्या उठ खड़ी हुई। रकाबी और प्याले उसने उठा लिये। उसके हृदय में जो सेल के आघात की वेदना हो रही थी, उसका कुछ भी चिह्न उसके मुख पर न था।

गृहिणी ने कहा—बेटी, तुम दोनों इस बिस्तर पर जरा लेट रहो। अगर कोई किताब पढ़ना चाहो तो उस आलमारी के भीतर बहुत-सी हिन्दी, बँगला और अँग्रेजी की किताबें रक्खी हैं। जो चाहो निकाल लो। मैं अभी आती हूँ।—बहू, वह सिरहाने का बड़ा लैंप जला तो दो। आलमारी भी खोल दो।

जूठे बरतन बरामदे में रखकर संध्या ने वह बड़ा लैंप जला दिया। फिर एक आलमारी खोलकर सरयू से कहा—इसमें कई क़िस्म की किताबें हैं, इच्छानुसार छाँट लीजिए।

यह भी एक विस्मय की बात थी! कौतूहल के मारे सरयू जाकर आलमारी के पास खड़ी हुई। उसने समझा था, कुछ साधारण किताबें होंगी। पर देखा तो बढ़िया जिल्दबँधी हुई किताबों से आलमारी भी पड़ी है। रमेंद्र ने खुद तरह-तरह के उत्कृष्ट उपन्यास, काव्य, इतिहास आदि के ग्रंथ मोल लेकर जिल्द बँधवाकर जमाकर रक्खे थे। उसकी माता को पुस्तक पढ़ने का व्यसन था। पहले उपन्यास आदि पढ़ती थीं; पर अब अधिकतर रामायण, भागवत, महाभारत आदि धार्मिक ग्रंथ ही उन्हें रुचते थे।

सरयू ने बंकिमबाबू के चिर-परिचित और चिर-नूतन "कमला-कान्त का दफ्तर" नामक ग्रंथरत्न को निकाल लिया। यह पुस्तक उसे बहुत अच्छी लगती थी।

सरयू ने सीता से पूछा—भाभी, तुम क्या पढ़ोगी, बतलाओ।

सीता ने कहा—तुम पढ़ो, मैं जब तक ज़रा लेटती हूँ।

इतना कहकर सीता दूध-से सफ़ेद बिछौने पर लेट रही। चारों ओर की खिड़कियाँ खुली हुई थीं। पास के बगीचे से फूलों की महक घर के भीतर आ रही थी।

संध्या सास के साथ भीतर चली गई। सरयू रोशनी के सामने बैठकर एकाग्रचित्त से पुस्तक पढ़ने लगी।

सीता के मन में एक बात आज नए सिरे से जाग उठी। उस स्मरणीय तूफ़ानवाली रात की याद हृदय से बिलकुल मिट जाना असंभव था। यद्यपि रमेंद्र के अपवित्र, घृणित स्पर्श की स्मृति की ज्वाला सीता को अब उतना कष्ट नहीं पहुँचाती थी, किन्तु स्मृति का दाग़ सम्पूर्ण रूप से कभी नहीं मिटता। इसी से वह अक्सर अपने हृदय, अपनी मनोवृत्ति का विश्लेषण करके देखा करती थी। निरपेक्ष समालोचक की तरह वह अपनी कार्य-परम्परा का विश्लेषण करती थी। उस आलोचना का फल यह हुआ कि उसने अपने मन में अनेक विषयों की मीमांसा एक तरह से कर ली थी; किन्तु एक बात की वह कुछ भी मीमांसा नहीं कर सकी। रमेंद्र के उसदिन के अशिष्ट आचरण या अपराध को वह कुछ हल्के रूप में देखने की चेष्टा करती थी। किन्तु आज यहाँ आकर जो आकस्मिक परिचय प्राप्त हुआ, उसके फल-स्वरूप जब उसने जाना कि रमेंद्र का ब्याह हो चुका है, उसके घर में परमसुन्दरी, गुणवती, मधुर स्वभाववाली स्त्री मौजूद है, तब वह पहले की तरह रमेन्द्र के अपराध को हल्का नहीं देख सकी। उसके आचरण का असामंजस्य सीता को पीड़ित करने लगा।

उसके प्रति रमेंद्र का आकर्षण सामाजिक दृष्टि से असंगत और अशोभन होने पर भी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसे प्यार या प्रेम नहीं कह सकते। अगर वह सचमुच ही सीता को प्यार करता था तो उसने फिर ब्याह कैसे कर लिया?

मनके भीतर समालोचक होकर जो बैठे थे, वह दृढ़ स्वर में कह उठे—वाह! इसी से रमेंद्र अपराधी हो गया? तब वह भी तो अपराधिनी है! उसने भी क्या कुमार—किशोरावस्था—में रमेंद्र को नहीं अपने हृदय में स्थान दिया था? फिर उसने ही अपना ब्याह दूसरे के साथ क्यों होने दिया? एक मनुष्य की स्मृति को अपने मन के भीतर छिपाये रहकर हजारों आदमियों के सामने उसने क्या अन्य व्यक्ति को हृदय देना अंगीकार नहीं किया? यही फिर कैसे संभव हुआ?

ना, ना जो मिल नहीं सकेगा, उसकी स्मृति विवाहित जीवन में मन पर अपना अधिकार न जमा सके, यही सोचकर उसने उस समय रमेंद्र की स्मृति को अपने मन से मिटा दिया था, किशोरावस्था की अपरिपक्व मनोवृत्ति को घुमाकर दूसरी राह में चलाया था। दुर्बल की तरह उसने अपने मन के आवेग के प्रवाह में अपने को बहने नहीं दिया। जीवन-सखा के रूप में उसने मन-वाणी-काया द्वारा जिसे वरण किया था, उसी को लेकर सुखी होने की चेष्टा उसने की थी। रमेंद्र के साथ जब उसके ब्याह की बात चीत हुई थी, तब मनोमंदिर में सत्य ही एक प्रकाश जल उठा था—इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं थी। उपन्यास की नायिका की तरह रमेंद्र के न मिलने से उसे अपना जीवन भारू नहीं हो गया था। उससे ब्याह होने पर शायद वह सन्तुष्ट और प्रसन्न होती; किन्तु उसके न होने पर भी उसके मन में यह भाव नहीं उत्पन्न हुआ कि इससे उसका विशेष अनिष्ट या नुक़सान हुआ है। प्रथम-यौवन में मनुष्य के मन में अनेक आशाओं और आकां-

शाओं के बीज बोए जाते हैं; किन्तु किसी की भी सब आशाएँ, आकांक्षाएँ पूरी या सफल नहीं हो पातीं। उसने भी यही सोचकर समाज और धर्म के विधान के अनुसार जिसे अपने स्वामी के रूप में वरण किया, उसी को श्रद्धा भी अर्पण की।

किन्तु रमेंद्र ने यह नहीं किया। उसने जब विवाह किया था, तब उस जीवन-संगिनी को अपना सब कुछ अर्पण कर देना ही उसका कर्त्तव्य था। किन्तु पुरुष—दृढ़चेता शिक्षित मनुष्य होकर भी रमेंद्र ने क्या अपने उस कर्त्तव्य का पालन किया? कभी नहीं। अगर वह अपने कर्त्तव्य का पालन करता तो कभी उसका ऐसा मानसिक अधःपतन नहीं हो सकता। निरवलंब चित्त में अनेक भावों का रेखापात होता है, कम-से-कम ऐसा होने की संभावना रहती है। किन्तु जिसकी सत्य के ऊपर निष्ठा है, वह कभी मिथ्या आशा को पकड़कर नहीं रहेगा। जो ध्रुव है, जिसे सत्य समझकर अपनी इच्छा से वरण किया है, उसे हजारों दुर्दमनीय बाधाओं के रहने पर भी दृढ़ रूप से पकड़े न रहना ही भारी अन्याय है, अमार्जनीय अपराध है। ना, रमेंद्र के उस कार्य को हल्का समझकर उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिसके साथ इस लोक का कोई बन्धन नहीं, जिसके ऊपर सामाजिक या नैतिक कोई अधिकार नहीं, जिस विषय का धर्मजगत् के साथ कोई लगाव नहीं, वह चाहे जितना मधुर और लोभनीय क्यों न हो, उसके ऊपर लोभ करना केवल असंगत ही नहीं, घोरतर अन्याय है—पाप है! सीता के संस्कार ने उसे ऐसा ही सोचना सिखाया था। ब्याही हुई धर्मपत्नी मौजूद है, तो भी रमेंद्र ने उसे क्यों चाहा? वह क्या प्रेम है? कभी नहीं। रमेंद्र ने केवल उसके शरीर को चाहा था, उसके बाहर के रूप पर मुग्ध, उन्मत्त होकर उसने उसके स्थूल शरीर को लालसा के द्वारा अपवित्र और दग्ध करना चाहा था। बस, इसके सिवा और कुछ नहीं! इसमें प्रेम की गंध

भी न थी—थी केवल घृणित लिप्सा और नारकीय आकर्षण! इसी से वह पाप-कलुषित स्पर्श इतने दिन तक सीता को जलाता, पीड़ा पहुँचाता रहा। और इसी कारण वह भी उस स्मृति के पीछा करने से अब तक अपने को बचा नहीं सकी। रमेंद्र की दुर्दमनीय स्पृहा ने उसके हृदय में संचारित होकर उसके प्रथम-यौवन की सोई हुई चिन्ता को जगा दिया था।

इस समय वह पूर्ण रूप से मुक्त है। इस समय उसके चित्त में वह जलन—वह ज्वाला नहीं। अब वह अपने को समझना, पहचानना सीख गई है। अब वह अपनी अवस्था की सम्पूर्ण उपलब्धि कर पाई है। कर्म-समुद्र के पवित्र जल में अवगाहन करके उसने नारीत्व को, मातृत्व को नए सिरे से लौटा पाया है। जीव-सेवा में प्रेममय अनन्त सुन्दर परमेश्वर का आभास उसे मिल गया है। वह समझ गई है कि प्रेम कितना मधुर, कितना महान् और कितना पवित्र है! उसमें इन्द्रिय-विकार रह नहीं सकता। प्रेम में ही मातृत्व का चरम विकास हुआ करता है। वह अब यह समझना सीख गई है कि एक ऐसी शक्ति है, जो सब जीवों में—जड़ और चेतन दोनों में—समान भाव से विद्यमान है। जीव की सेवा में—परिचर्या में वह जिस तरह मनुष्य के चित्त में प्रकट होती, है वह अत्यन्त विस्मयकर और आनन्दजनक है। अवश्य ही अभी उसे उनके रूप की ज्योति के दर्शन का सौभाग्य नहीं हुआ—वह तो युग-युगान्तर तक साधना करने से कहीं प्राप्त होता है—किन्तु इतने दिन बाद उसे उनके दर्शन पाने की राह का पता मिल गया है। तुलसी-चौरे में दीपक जलाकर सन्ध्याकाल के अन्धकार में, खुले हुए आकाश के नीचे, एकनिष्ठ उपासना में लगी हुई सन्ध्या की अकृत्रिम प्रार्थना-निरत मूर्ति का भव्य रूप आज ही वह देख चुकी है। यह दृश्य चिरस्मरणीय होकर उसके हृदय में सदा बना रहेगा, कभी नहीं भूलेगा। उसने पहले जिस मार्ग का पता पाया था, आज वह और भी सीधा और चौड़ा होकर उसे

अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देख पड़ा है। वह स्वामी के प्रेम में मग्न होकर स्वामी को हृदय से प्यार करके उसीके द्वारा संपूर्ण विश्व वासियों को प्यार करने की, उन्हें स्नेह बाँटने की चेष्टा करेगी। यही भारतवर्ष की भाव-धारा की विशेषता है। इसी तरह साधना करने से वह क्या चिर सुन्दर की प्रेममयी मूर्ति देखने का सुयोग नहीं पावेगी?

तब आँखें मूँदकर सीता अपने स्वामी का ध्यान करने लगी। एकाग्रमन से किसी वस्तु का ध्यान किया जाय तो वह प्रत्यक्ष देख पड़ने लगती है। सीता को जान पड़ा, जैसे वह अपने स्वामी को प्रत्यक्ष देख रही है। इधर कई दिनों से ऐसा हो रहा था, जैसे चिरंतन भारतीय नारियों के संस्कार उसके हृदय में क्रमशः व्याप्त होते जा रहे थे। उसका दादा जो बीच-बीच में कहा करता है कि रक्त के हर एक बूँद में जो पीढ़ी-दरपीढ़ी से संचारित होता आ रहा है, चर्चा करने से उसका प्रभाव सहज ही परिपुष्ट हो उठता है, यह गँजेड़ियों की गप नहीं, वैज्ञानिक सत्य है। स्वामी के विषय में सोचते-सोचते उनका चित्र मानस-पलट में प्रस्फुटित होते देखकर सान्निध्य-लाभ के आनन्द से सीता का हृदय पुलकित और स्पन्दित हो उठा।

किन्तु यह रमेंद्रनाथ कैसा अभागा है! पत्नी के प्रेम की उपेक्षा करके वह किस अनिश्चित मार्ग में, किस मृग-मरीचिका के फेर में इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है! रमेंद्र के लिए सचमुच सीता को दुःख हुआ। वह उसका बाल्यसखा और भाई का मित्र है। राह भूले हुए को रास्ता दिखा देना भी क्या सीता का—सच्चे मनुष्यत्व का कर्त्तव्य नहीं है निश्चय है। सीता इसके लिए भी चेष्टा करेगी।

कुछ देर तक पहले रमेंद्र के आचरण की आलोचना करने के कारण सीता के मन में रमेंद्र के प्रति घोरतर घृणा और विरक्ति पैदा हो गई थी। किन्तु इस समय वह भाव दूर हो गया। उसके बदले उसकेप्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई। मनुष्य के ऊपर घृणा करने का अधिकार किसी भी मनुष्य को नहीं है। भ्रम सबको हो सकता है, होता ही है।

उसके लिए दुःख किया जा सकता है; किन्तु क्रोध या घृणा नहीं की जा सकती। उसका मन भी घड़ी भर के लिए भटक गया था।

इतने में संध्या ने यहाँ प्रवेश करके सरयू से कहा—क्या हो रहा है ? पढ़ रही हो क्या ? दीदी सो गईं क्या ?

सीता अपने विचारों में इतनी डूबी हुई थी कि संध्या के प्रथम आह्वान को उसने सुन नहीं पाया

सरयू ने कहा—ओह ! आँखें और मुख तो एकदम लाल हो रहा है। रसोई कर रही थीं क्या ? हमने आकर आपको सचमुच बड़ा कष्ट दिया !

आँचल से मुख और मत्थे का पसीना पोंछते हुए सन्ध्या ने कहा—घर में कोई आत्मीय आकर इस तरह का थोड़ा-बहुत-कष्ट कभी-कभी दिया करे तो क्या बुरा है ?

लज्जित भाव से सरयू ने कहा—नहीं जी, यह मैं नहीं कहती ! वाह, भाभी तुम तो ख़ूब सो रही हो !

सीता का चिन्ता-सूत्र टूट गया। वह एक दम पलँग पर उठ बैठी। शाल अपने ऊपर खींचकर उसने कहा—नहीं जी, मैं तो सोई नहीं, लेटे-लेटे सोच रही थी।

सन्ध्या ने कहा—शरीर की थकावट गई न होगी, अच्छा तो है, तनिक सो रहिए। आध घंटे की कसर है। मैं आकर जगा दूँगी। (सरयू से) आप लोगों की सेवा में अधिक देर ठहर नहीं पाती, कुछ ख़याल न कीजिएगा।

सरयू ने कहा—ना, ना, यह भी कोई बुरा मानने की बात है ? हम बड़े मजे में हैं। हमारे लिए आप कुछ फ़िक्र न करें।

सन्ध्या काम करने चली गई। काम करते रहने पर भी बीच-बीच में आकर अतिथि की ख़बर लेते रहने में जो अपनपौ ज़ाहिर हुआ, उससे सरयू और सीता दोनों मुग्ध हो गईं।

सतीसवाँ परिच्छेद

गीले कपड़े उतारने के बाद गरम चाय पीकर और कुछ जल-पान करके सुरेशचंद्र सुस्थ हुए।

माधव ने पूछा—तमाखू पीजिएगा ?

सुरेश तमाखू के परम भक्त थे। खासकर बहुत देर से तमाखू न मिलने के कारण उनका पेट जैसे फूल रहा था। प्रश्न करते ही उन्होंने कहा—नेकी और पूछ-पूछ ?

माधव ने कहा—लेकिन यहाँ आपको अपने घर की लखनऊ, बनारस या गयावाली बढ़िया तमाखू नहीं मिल सकेगी सुरेश बाबू ! यह तो मेरी अपने खेत की तमाखू है, जिसे मैंने अपने ही हाथ से पीने की तमाखू का रूप दिया है। मालूम नहीं, यह आपको रुचेगी या नहीं।

सुरेश ने कहा—खूब रुचेगी ! आज दिन भर तमाखू नसीब नहीं हुई।

एक बड़ी-सी चिलम में तवा भरकर चाँदी-मढ़ी कली में उसे रखकर सुलगाकर माधव ने सुरेश के हाथ में दे दिया। वह बड़े आराम से आँखें मूँदकर तमाखू पीने लगे। सुरेश ने पीते ही समझ लिया कि यह तमाखू घर की बनी होने पर भी बाहर की, बजार की बढ़िया तमाखू में किसी बात में कम नहीं है। प्रकट रूप से भी उन्होंने माधव से यह बात कह दी।

बातचीत से सुरेशचंद्र को यह मालूम हुआ कि रमेंद्र कहाँ गया है, यह कोई नहीं जानता। लगभग तीन हफ्ते पहले पछाँह से एक पत्र आया था; पर उसमें ठिकाना नहीं लिखा था। केवल यही लिखा था कि वह पश्चिमोत्तर प्रदेश घूमने जा रहा है।

अभी उसके पास रुपए हैं। प्रयोजन होने पर वह रुपए मँगा लेगा। पत्र मिलने में देर हो तो भी कुछ चिन्ता न करें।

सब बातें सुनकर सुरेश ने सोचा, पुरी से आते समय रमेंद्र जो पत्र में लिख आया था कि वह गाँव जा रहा है, सो ठीक न था। तमाखू पीते-पीते यही बात उनके मन में हलचल मचाने लगी कि यह अकस्मात् अनिश्चित प्रवास-यात्रा करने का कारण क्या है ? किशोरावस्था के सखा, जवानी के मित्र, सहपाठी रमेंद्र के मन की कौन-सी बात उनकी जानी नहीं है। वह किस धातु का बना है, यह क्या वह जानते नहीं ? इसमें कुछ थोड़ा-सा दोष उन्हीं का है। किन्तु रमेंद्र ने यह क्यों उन लोगों से छिपाया कि उसने विवाह कर लिया है ? जीवन की इतनी बड़ी घटना छिपाने का क्या कारण है ?

सुरेशचंद्र घटना के बाद घटना के सूत्र को पकड़कर मन-ही-मन सब विषयों का विश्लेषण कर चले। मानव की मनोवृत्ति, यौवन के धर्म—इन्द्रियों की प्रबलता—ना, अपनी विधि-व्यवस्था की त्रुटि ही अधिक है। उसके लिए और को अपराधी ठहराना अन्याय है। वैसा होना बहुत ही स्वाभाविक होने पर भी समर्थन के योग्य कभी नहीं है। आग और घी को एक जगह रखने की शास्त्रकारों ने मनादी कर दी है। न सुनोगे तो उसका परिणाम अवश्य वही होगा, जो शास्त्रकारों ने कह दिया है। हजारों वर्ष पहले तत्त्वदर्शी महापुरुषगण समाज की स्थिति के लिए उपयोगी नियम बना गए हैं। इस समय उन नियमों का पालन न करने से अनेक प्रकार की अशान्ति का उपद्रव सहना ही होगा।

योरप, अमेरिका और भारतवर्ष के अनेक दृश्य और अनेक बातें विभिन्न भाव से उनके मन में उपस्थित। हुईं भारतवर्ष के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की विलक्षणता अथवा दूरदर्शिता की बात

स्मरण करके वह मुग्ध हो गए। वे कैसे बहुदर्शी और दूरदर्शी थे! मानव-मनोवृत्तियों का कैसा विश्लेषण करके सूक्ष्म दृष्टि और निपुणता के साथ विचार किया था! इस विषय में प्राच्य दृष्टि के आगे प्रतीच्य दृष्टि निस्संदेह बच्चों की-सी दृष्टि है।

सहसा उनकी चिन्ता का सूत्र टूट गया। माधव ने कहा—आप ज़रा बैठिए, मैं बाग़ हो आऊँ।

सुरेश ने कहा—कहाँ जा रहे हो माधव दादा?

माधव के बाएँ हाथ में लाल्टेन और दाहने हाथ में एक जाल था। माधव ने कहा—बाग़ के तालाब में जाल डालकर कुछ मछली लाने जा रहा हूँ।

सुरेश ने अंदाज से सब समझकर कहा—मछलियों की क्या ज़रूरत है? घर में जो है, वही यथेष्ट है माधव दादा।

माधव—यह कहीं हो सकता है? कितनी देर लगेगी? ५-७ मिनट में ही आता हूँ। अतिथि-सेवा क्या साधारण रोटी-दाल खिलाकर की जा सकती है? हमारे असभ्य देहात में तो ऐसा नहीं होता।

हुक़्का रखकर सुरेश ने कहा—तो चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा माधव दादा।

माधव ने इसमें कुछ आपत्ति नहीं की, आगे-आगे चला।

आकाश उस समय भी बिलकुल साफ़ नहीं हुआ था। किन्तु चंद्रमा निकल आया था। बीच-बीच में मेघ-खंड चंद्रमा के ऊपर आ जाते थे। अन्धकार वैसा गहरा नहीं था। वृष्टिधारा में नहाए हुए पेड़ चुपचाप खड़े थे। लाल्टेन के प्रकाश में सब दृश्य स्पष्ट नहीं देख पड़ता था, तथापि सुरेशचंद्र ने देखा, बाग़ बड़े क़ायदे से और मेहनत से लगाया गया है। रास्ते में दोनों ओर तरह-तरह के साग और तरकारियाँ बोई गई थीं। दूर पर ऊँचे पेड़ों की क़तार दीवार की तरह खड़ी थी।

माधव ने ईंटों के बँधे हुए तालाब के घाट पर आकर लालटेन रख दी। उसके बाद ठीक स्थान को लक्ष्य करके अपूर्व कौशल से जाल को सिर के ऊपर घुमाकर पानी में फेंका। पहली मर्तबा कुछ बड़ी अंडे देनेवाली मछलियाँ पड़ीं। माधव ने उन्हें जाल से निकालकर सावधानी से फिर जल में डाल दिया। दुबारा बहुत सी और एक बड़ी मछली जाल में आई। माधव ने एक तीन साढ़े तीन सेर की मछली रखकर बाकी सब मछलियाँ फिर पानी में छोड़ दीं।

मछली देखकर सुरेशचंद्र बहुत खुश हुए। बोले—तालाब में बहुत मछलियाँ हैं माधव दादा ?

माधव ने समझा दिया कि जरूरत पड़ने पर इस तालाब से २०-२२ मन मछली मिल सकती है।

सुरेश ने कहा—तुम्हीं लोग सुखी हो माधव दादा। शहर की तरह यहाँ हर बात के लिये पैसे के चार पैसे तो नहीं खर्च करने पड़ते ! फिर मजा यह कि घर में ही सब चीजें मिल जाती हैं।

माधव ने तृप्ति की हंसी हँसकर कहा—मालूम नहीं, लोग किस सुख के लिये गाँव छोड़कर शहर में रहते हैं सुरेश बाबू ! हमारे इस देहात में किस चीज की कमी ? इस बाग़ में आप जो चाहें सो मिल सकता है। रात को नहीं, सबेरे देखिएगा। हमारी गृहस्थी के लिए जिन जिन चीजों की जरूरत होती है, सो सब इस बाग़ में पैदा होती हैं।

मुग्ध दृष्टि से सुरेशचन्द्र ने एक बार उस लंबे-चौड़े बाग के चारों ओर देखा। रात को विशेष कुछ दिखलाई नहीं पड़ा। किंतु उस स्वल्प प्रकाश में जो कुछ देख पड़ा, उसी से उन्हें माधवके कथन की सत्यता मालूम पड़ गई। उसमें गोभी, मटर, आलू, बैंगन और पालक आदि साग-भाजी तालाब पर आते समय ही वह देख चुके थे।

मछली हाथ में उठाकर कंधे पर जाल डालकर माधव घर की ओर चला।

सुरेशचंद्र रास्ते में तरह-तरह की बातें सोचते हुए फिर बाहर

की बैठक में लौट आए। यह देहात का जीवन कैसा सरल और सुखप्रद है ? शहर में केवल कोलाहल, अशांति और व्यस्तता है ! वहाँ धन के लिए, यश के लिए, स्वार्थसिद्धि के लिए लोगों में छीना-झपटी, झगड़ा-झंझट और लूट-खसोट ही नजर आती है। चालबाजी, जालसाजी का साम्राज्य है। बस सुरेशचंद्र ने अगर कभी गृहस्थ जीवन बिताने का सुयोग पाया तो वह देहात ही के श्यामल अंचल में आकर शरण लेंगे। वह अपनी जमींदारी के भीतर ही किसी गाँव को आदर्श बनाने की चेष्टा करेंगे। लोग कहते हैं गाँव में मलेरिया का डर है। मलेरिया को दूर करने के लिए गाँवों में सफाई रहनी चाहिए। गंदा पानी और गोबर के ढेर गाँव में न रहने देना चाहिए। इस समय जमींदार लोग और अन्य धनी, मानी, विद्वान लोग, जिनके पुरखे देहातों में ही रहते थे, फिर शहरों को छोड़कर देहातों में रहने लगें तो भारत के ग्राम फिर सुख-शाँति के निकेतन बन सकते हैं, और उनके सहवास से ग्रामीण भी अपनी बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं।

सुरेश इस प्रकार सोच ही रहे थे, इतने में तमाखू भर लाकर, माधव ने उनके चिन्तास्रोत में बाधा दी। अबतक माधव को यह नहीं मालूम हुआ कि ये लोग इस ओर किस लिए आये थे और इनकी नाव कैसे डूब गई। वह अबतक अतिथि सत्कार में ही लगा हुआ था। इस ओर इन लोगों के आने की संभावना भी कभी नहीं थी। माधव इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। इस समय थोड़ा अवकाश मिलने पर माधव ने पूछा—एक बात मेरी समझ में नहीं आई सुरेश बाबू, इस उजड्डों के देश पूर्व-बंगाल में आप लोगों का आना कैसे हुआ ? आपकी नाव कैसे डूबी ?

सुरेशचन्द्र ने सब वृत्तान्त न कहकर केवल इतना ही बतलाया कि पूर्व-बंग में अकाल पड़ने की खबर अखबारों में पढ़कर वह इधर आये थे और इस समय इस देहात के जिले के शहर में ही बश

ठहरे हुए हैं। कौतूहल वश इधर के गाँवों की सैर करने आये थे। नहर के भीतर बाढ़ का पानी आने से एकाएक छोटी नाव उलट गई। किनारा पास ही होने के कारण कोई अनर्थ कारी घटना नहीं हुई। सुरेशचंद्र अपनी सहायता देने की बात छिपाना चाहते थे।

माधव स्थिर-दृष्टि से सुरेश की ओर ताक रहा था। वह सहसा कह उठा—ओह! समझ गया, तो आप ही वह हैं?

सुरेश ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—कौन?

माधव ने श्रद्धापूर्ण स्वर में कहना शुरू किया—मैंने सुना था, कलकत्ते से कोई पर दाता—बहुत बड़े जमींदार यहाँ आये हैं, उन्होंने ग़रीब दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों के लिए अस्पताल खोले हैं। वह दीन-दुखित को खिलाते-पिलाते हैं—अन्न बाँटते हैं। उस दिन शहर जाने पर ये बातें मुझे मालूम हुई थीं। किन्तु यह तो मुझे मालूम न था कि आप ही वह दाता और उदार-हृदय व्यक्ति हैं।

अत्यन्त लज्जितभाव से सुरेश ने कहा—लोग पैसे भर बात को रुपया भर बढ़ाकर कहते हैं माधव दादा। तुम इन बातों पर ध्यान न देना। बात यह है कि अपनी शक्ति भर थोड़ी-बहुत सहायता अवश्य हम लोगों ने की है। पर उसमें कोई प्रशंसा की बात नहीं है, वह तो मेरा कर्त्तव्य ही था। मेरे देश के लोग मेरे भाई-बहन अन्न के बिना, रोग में कष्ट भोगकर मरें और मैं बैठे-बैठे देखा करूँ; यह कैसे हो सकता है माधव दादा? इसी से थोड़ी बहुत—

बीच में बाधा देकर गद्‌गद् स्वर में माधव ने कहा—यह आप जैसे शिक्षित सहृदय पुरुष के योग्य ही है, जो आप कह रहे हैं सुरेश बाबू! लेकिन मैंने सुना है कि आपने जितना काम इस सम्बन्ध में किया है, उतना करनेवाले ही इस देश में कितने रईस हैं? बिजली की तरह आपकी कीर्ति चारों ओर फैल रही है। भगवान् आपका भला करेंगे। देखिए, दशा इतनी खराब है कि यही इधर के ३-४ गाँवों को छोड़कर चारों ओर घोर अन्नकष्ट छाया

हुआ है। इस जिले के गाँवों की दुर्दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सुना है, दो देवियाँ भी घूम-घूमकर अन्न बाँट रही हैं, रोगियों की सेवा कर रही हैं। तो वे देवियाँ भी यही हैं ?

माधव के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर सुरेश बहुत ही संकुचित हो पड़े। बात का रूख दूसरी ओर फेरने के लिए उन्होंने कहा—अच्छा माधव दादा, तुम कहते हो, तुम्हारे इधर के २-४ गाँवों में दुर्भिक्ष का कष्ट नहीं है, इसका क्या कारण है ?

माधव ने कहा—इसका कारण भगवान् की हम लोगों पर कृपा के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? आप जिस नहर से होकर आये हैं, उसके किनारे बहुत ऊँचे है। इसीसे बाढ़ का पानी इधर के कई गाँवों का वैसा अनिष्ट नहीं कर सका। इसके सिवा हमारे गाँव में दलबन्दी नहीं है। हमारे इस लोचनगंज गाँव में चार-पाँच सौ के लगभग गृहस्थों के घर हैं। इनमें लगभग सभी जातियाँ हैं। उनके जमींदार या ताल्लुक़दार, जो चाहे आप कहें हमारे खोका हैं। मैं आप के मित्र को खोका ही कहता हूँ। हमारे बड़े बाबूजी इस गाँव को ऐसा बना गए हैं कि सभी लोग इस घर के अनुगत हैं। झगड़ा-झंझट तो दूर रहा, यहाँ के लोग परस्पर इतने हिले-मिले हैं कि एक दूसरे का दुःख दूर करने के लिए अपनी जान तक देने को तैयार रहते हैं। यही कारण है कि गाँव में किसी के यहाँ किसी चीज की कमी होने पर और लोग मिलकर उसका वह अभाव दूर करने की चेष्टा करते हैं।

सुरेशचन्द्र को यह सुनकर बड़ा विस्मय हुआ। देहात के संबंध में उनकी धारणा बिलकुल इसके विरुद्ध थी। गाँवों में आजकल मेल-मिलाप नहीं है। लोग परस्पर मनमैली रखते हैं, एक दल दूसरे दल को हानि पहुँचाने के लिए कमर कसे रहता है, दिन-दिन हिंसा-द्वेष प्रबल होता जा रहा है, यही उन्हें मालूम था। भारत के देहातों की दशा आजकल गिरती ही जा रही है, यही उन्होंने सुन रक्खा

था। किन्तु माधव जो कुछ कह रहा है, वह तो बिलकुल ही अविश्वास्य जान पड़ता है।

बुद्धिमान् माधव शायद उनके मन की इस बात को ताड़ गया था। इसीसे मुसकाकर उसने कहा—बात विश्वास करने योग्य नहीं है, क्यों न सुरेश बाबू ? देखिए, बहुत से गाँव बिगड़ गये हैं, और उनकी दशा खराब हो रही है, इसमें संदेह नहीं। और यह भी सच है कि अब गाँवों में पहले का सा मेल-मिलाप नहीं है। लोग ज़रा-ज़रा सी बात पर एक दूसरे के दुश्मन बन बैठते हैं। सामाजिक दलबंदी भी बढ़ गई है। शिक्षा और धन के अभाव से गाँव श्रीहीन हो रहे हैं। गाँवों में अब अधिकतर किसान ही रह गये हैं। मुक़द्मेबाजी गाँवों को चौपट कर रही है। जमींदार, महाजन और अकाल मिलकर गाँवों को तबाह किये डालते हैं। लेकिन फिर भी मेरा दावा यह है कि शहर के जीवन से ग्राम का जीवन अच्छा है। गाँवों में अभी उतनी स्वार्थपरता नहीं घुसी है। यहाँ के लोग शहरों की अपेक्षा अधिक सहृदय और सहानुभूति-सम्पन्न होते हैं। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। अगर शहरों में रहने वाले उच्चशिक्षित विद्वान् और धनी सज्जन ग्रामों में रहकर उनकी दशा सुधारने का उद्योग करें तो ग्राम फिर श्रीसम्पन्न हो सकते हैं, किसानों की दशा सुधर सकती है।

माधव ने और कुछ नहीं कहा। अपनी माता (रमेंद्र की माँ) के निष्कपट सदय व्यवहार, अपनी दया, परोपकार-प्रवृत्ति न्याय निष्ठा और दबाव का हाल वह नहीं कह सका। इन्हीं गुणों से सब ग्रामवासी उसके अनुरक्त भक्त थे। किन्तु अपने मुख से अपना बखान करना अशोभन समझकर वह चुप रहा।

सुरेशचंद्र चुपचाप तमाखू पीने लगे माधव उनसे बिदा होकर यह देखने भीतर चला गया कि भोजन के तैयार होने में अब कितनी देर है।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

"सुरेश बाबू, चलिए। रसोई तैयार है।"

उस समय आकाश साफ हो गया था। मेघमुक्त आकाश में चन्द्रमा की चाँदनी छिटकी हुई थी। उस मधुर दृश्य से आकृष्ट होकर घड़ी भर तक सुरेशचंद्र वहीं खड़े रह गये। उसके बाद माधव के साथ भीतर भोजन करने के लिए गये।

लंबे-चौड़े बरामदे में आसन बिछा था। सुरेश ने देखा, अकेले उन्हीं के लिये आसन डाला गया है। गाँवों की हिंदू गृहस्थों की व्यवस्था के अनुसार औरतों के भोजन के लिये दूसरी जगह प्रबन्ध किया गया था। सुरेश ने कहा—तुम भी तो बैठो माधव दादा!

माधव ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—भला यह कैसे हो सकता है, बाबूजी? अतिथि-सेवा के पहले भोजन करने का अधिकार नहीं। हमारे देहात की यह पुरानी व्यवस्था चली आती है। आप बैठिए।

सुरेशचंद्र को यद्यपि इस प्रथा का अभ्यास न था, किन्तु उससे एकदम अनभिज्ञ भी वह नहीं थे। यह प्रथा अच्छी है या बुरी, इसकी आलोचना का प्रयोजन क्या है? किन्तु सुरेशचंद्र यह अस्वीकार न कर सके कि यह प्राचीन व्यवस्था देखने में बहुत अच्छी मालूम होती है।

माधव कुछ दूर पर बैठकर अतिथि के आहार की देख-रेख करने लगा। सुरेशचंद्र ने देखा, काफी तैयारी की गई है। इतने थोड़े समय में इतने प्रकार की भोजन-सामग्री बना डालना केवल सुसम्पन्न, सुसंचालित ग्रामीण गृहस्थ के घर में ही सम्भव है।

भोजन करने बैठने पर सुरेशचंद्र ने देखा, भोजनसामग्री केवल

संख्या में ही अनेक प्रकार की नहीं है, प्रत्येक वस्तु का स्वाद भी नया है। वह बहुत बार बहुत स्थानों में भोजन कर चुके हैं; किन्तु ऐसी उत्कृष्ट, विचित्र स्वाद से युक्त और रसना-तृप्तिकर आहार-सामग्री बहुत कम खाई है। मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न और तृप्त होकर सुरेश ने कहा—भोजन की सामग्री बहुत ही अच्छी बनी है माधव दादा?

माधव ने हँसकर कहा—यह हम ग़रीब देहातियों का घर है। यहाँ अगर आप इतना संतुष्ट हो सके तो इसे मैं अपना सौभाग्य कहूँगा। एक बात निवेदन कर देना चाहता हूँ जो कुछ सामग्री आप भोजन कर रहे हैं, सब घर ही की पैदा की हुई है।

विस्मय के साथ सुरेश ने कहा—हाँ!

माधव ने कहा—जी हाँ। मय पुलाव के चावल तक। हम लोग बाजार से घी या तेल कभी नहीं खरीदते। हाँ काम-काज की बात और है। तब तो खरीदना ही पड़ता है। हल्दी, मिर्च, धनिया, सरसों, तेजपात, यह सब हमारे बाग़ में ही पैदा होता है। किसी चीज के लिए हमें बाजार नहीं जाना पड़ता। हाँ नमक अवश्य बाजार से मोल लेते हैं। लेकिन अगर क़ानूनी रोक न होती तो उसे भी हम घर ही में बना लेते।

विस्मय से अवाक् हो कर माधव की ओर देखते हुए सुरेश-चंद्र ने सोचा, ऐसा दूसरा आदमी उन्होंने शायद अपने जीवन में अन्यत्र कहीं नहीं देखा। स्वावलम्बन का ऐसा दृष्टान्त देशवासियों के सामने रखना वास्तव में बड़े गौरव की बात है। माधव के प्रति श्रद्धा से उनका हृदय परिपूर्ण हो गया।

इसी समय श्वेतवस्त्र धारण किये रमेन्द्र की मा धीरे-धीरे पुत्र के मित्र सुरेश के पास आकर खड़ी हुईं। उन्होंने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—बेटा सुरेश, तुम बड़े घर के लड़के हो। हमारे इस साधारण गाँव में तुम्हारे योग्य आदर-सत्कार—

बीच में बाधा देकर सुरेशचंद्र ने कहा—आप यह क्या कह रही हैं मा ? ऐसा बढ़िया भोजन मैंने जिन्दगी में एक ही आध बार खाया होगा ।

गृहिणी ने खुश होकर कहा—यह सब हमारी बहू ने ही बनाया है ।

सुरेश ने कहा—हाँ ! रमेन की स्त्री इतना बढ़िया भोजन बना सकती है ?—सचमुच रमेन बड़ा भाग्यशाली है !

यह कहकर ही सुरेश कुछ अनमने हो गये । ऐसी गुणवती स्त्री के रहते—

रमेन की मा ने कहा—मेरी बहू साक्षात् लक्ष्मी की प्रतिमा है । काम-काज में, देखने-सुनने में ऐसी अच्छी लड़की बहुत कम देखने को मिलती हैं भैया । मेरी इच्छा थी कि तुम आ गये हो तो और कुछ दिन यहाँ रक्खूँ । लेकिन देखती हूँ, ऐसा शायद न हो सकेगा । पहले ही से यह तय हो चुका है कि बहू को लेने के लिए उसके मायके से कल लोग आवेंगे ।

सुरेश ने कहा—रमेन की स्त्री क्या मायके जा रही हैं ?

रमेन की मा ने कहा—हाँ भैया, कल ही यात्रा का मुहूर्त बना है ।

सुरेश ने कहा—सो अच्छा तो है । हम तो इस जिले में और दो-एक दिन हैं । हमारे लिए उन्हें रोक रखने कोई जरूरत भी नहीं है । कल सबेरे ही हमें शहर को लौट जाना होगा मा ।

रमेन की मा ने कहा—यह कैसे हो सकता है भैया ! तुम लोग क्या रोज़ आया करोगे ? दो-तीन दिन तो भला ठहरो ।

सुरेशचन्द्र ने कहा—हम अब अधिक ठहर नहीं सकते मा, लाचार हैं ! आप माधव दादा से पूछ लीजिए, हमारे हाथ में बहुत जरूरी काम है । यह घर तो हमारा अपना ही घर है । अब की जब आऊँगा तो कुछ दिन ठहरूँगा ।

भोजन के उपरांत सुरेश बाहर बैठक में चले गये गये। उनका मन चिंता से परिपूर्ण हो रहा था।

सुरेश ने माधव से कहा—माधव दादा, दया करके एक काम मेरा करोगे क्या ?

हुक्क़ा सुरेश के हाथ में देकर माधव ने कहा—कौन सा काम ?

सुरेश—इस जिले में मैं अधिक दिन नहीं रह सकूँगा। इन लोगों (सीता और सरयू) को लेकर इलाहाबाद जाना होगा। लेकिन अभी यहाँ बहुत काम करने को पड़ा है। मैं इस जिले के हाकिम के हाथ में भी सहायता के लिए रुपये दे जा सकता हूँ। लेकिन मेरी इच्छा यह है कि हम सब देश के आदमी ही मिलकर सब काम करें। इस जिले में अभी और कुछ दिन अस्पताल और अन्नसत्र रखने की जरूरत है। उनकी देखरेख का भार तुम्हें अपने ऊपर लेना होगा।

सुरेशचन्द्र ने जैसे गंभीर आग्रह के साथ वह प्रस्ताव किया, उससे माधव के ऊपर उनका अगाध विश्वास और भरोसा जान पड़ा। माधव ने कहा—इतना काम क्या मैं चला सकूँगा ? हम लोग मूर्ख देहाती ठहरे !

सुरेश ने कहा—भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे जैसे कर्त्तव्यपरायण, स्वावलम्बी मनुष्य दिन-दिन बढ़कर देश के मस्तक को ऊँचा करें। । सचमुच माधव दादा, लिखने-पढ़ने की बात चलाकर आपने मुझे बहुत ही शर्मिन्दा किया। आजकल जो लिखे-पढ़े कहलाते हैं, उनमें सच्चे मनुष्य कितने होते हैं। स्कूल-कालेजों की शिक्षा सच्चे मनुष्य नहीं, नक़लची ग़ुलामों की सृष्टि कर रही है। तुम मुझे आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हारा-जैसा सच्चा और ईमानदार आदमी बन सकूँ।

उस समय बात यहीं तक रही भोजन के उपरांत माधव जब बाहर आया, तब सुरेश के साथ उसकी इस बारे में बहुत-सी बात-

चीत हुई। अन्त को माधव ने यह काम करना स्वीकार कर लिया। बातों-ही-बातों में सुरेशचन्द्र को मालूम हुआ कि माता के साथ सलाह करके माधव ने यह ठीक किया है कि इस दुर्भिक्षदान-भंडार में रमेंद्र भी एक हजार मन धान अपने यहाँ से देगा। इसके पहले माधव और रमेन की मा ग़रीब अकाल-पीड़ितों को क्या सहायता पहुँचा चुके हैं, यह माधव ने किसी तरह सुरेश को नहीं बतलाया।

इस स्वल्प-शिक्षित, बलिष्ठ-देह, सहृदय प्रौढ़ को सुरेश ने श्रद्धा के साथ मन-ही-मन अनेक बार प्रणाम किया। सुरेश को पहले यह विश्वास न था कि देहात में ऐसे प्राचीन आर्य-आदर्श के दर्शन उन्हें मिल सकेंगे।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

मनुष्य का जीवन क्या केवल पहेली है ? मन क्या ऐसा जटिल है कि उसकी थाह नहीं मिल सकती ? बेशक मन ऐसा ही तत्त्व है। कवि, दार्शनिक और मनस्तत्ववेत्ता विद्वान् लोग अपनी बहुत अभिज्ञता के फलस्वरूप जो कुछ कह गये हैं, उसे स्वयं कवि होकर अपने ही जीवन में क्या उसने सच होते नहीं देखा ? लड़कपन, किशोरावस्था और जवानी के मन के इतिहास को आदि से अन्त तक विश्लेषण करके देखने ही से यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि धाराबाहिकता रहने पर भी मन की जटिलता जैसी विचित्र है, वैसी ही अद्भुत् भी ! कौन प्रवृत्ति कब किस तरह उद्दाम हो उठकर पहले के इरादे को अपने दुर्निबार प्रवाह में बहा ले जायगी, इसकी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता। काम, क्रोध आदि छहो शत्रु जैसे अपने-अपने गढ़ में छिपे बैठे हैं। कौन कब किधर से अकस्मात् प्रबल होकर आक्रमण कर बैठेगा, इसका पहले आभास भी बेचारे मन को नहीं मिलता। जब अतर्कित रूप से आक्रमण हो जाता है तब बेचारा मन शत्रुओं के वशीभूत हो चुप-चाप उनकी बात मानने के लिये बाध्य होता है। पीछे संशय, पश्चात्ताप और खीझ जीवन को धिक्कार के भाव से परिपूर्ण कर देते हैं।

चलते-चलते रमेंद्र इसी तरह सोच रहा था। आज दोपहर को भोजन करने के बाद वह अकेला ही शहर में घूमने के लिए चल पड़ा था। डाक्टर बाबू के कोई आत्मीय आज बाहर से आने वाले थे, इसी से वह उन्हें लेने स्टेशन चले गये थे। रमेंद्र के साथ वह नहीं थे। मुसलमान नवाबों की कीर्ति बड़ा इमाम-

बाड़ा, छोटा इमामबाड़ा अभी तक रमेंद्र ने नहीं देखा था। वही देखने के इरादे से आज वह निकला था। शाहनजफ़, विक्टोरिया पार्क वग़ैरह कई बार वह देख चुका था। घूमते-घूमते जब शाम होने को हुई, तब रमेंद्र घर की ओर लौटा।

वह अपने मन में सोच रहा था कि अब और यहाँ रहना ठीक नहीं। आज उसे यहाँ आये तीन सप्ताह के लगभग हुए। संपूर्ण अपरिचित और अनात्मीय (ग़ैर) के घर में इतने दिन रहने की कल्पना भी एक महीने पहले वह नहीं कर सकता था। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ उसे कुछ भी कष्ट नहीं है। घर से भी अधिक आदर होता है, ख़ातिर की जाती है। डाक्टर बाबू के सरल, आडम्बरहीन, स्नेहपूर्ण व्यवहार ने सचमुच उसे मुग्ध कर लिया है। कितनी ही बार वह जाने के लिए तैयार हुआ, किन्तु बड़ा भाई जैसे पवित्र बन्धन से छोटे भाई को बाँध रखता है—उस बन्धन को तोड़कर जाना जैसे सहज नहीं होता वैसे ही वही बात रमेन्द्र के लिए भी हो रही थी।

रमेंद्र जब जाने का प्रस्ताव करता था, तभी स्नेह और युक्ति से पूर्ण बातों के द्वारा वह उसकी सब युक्तियों का खण्डन कर डालते थे। अन्तःपुर से डाक्टर बाबू की पत्नी की ओर से भी ऐसा मधुर अनुरोध आता था कि उसकी उपेक्षा करना बिलकुल मूढ़ व्यक्ति के लिए ही संभव था। इसीसे जाने की इच्छा करके भी वह अब तक वहाँ से जा नहीं सका।

किन्तु सभी बातों की एक सीमा होती है। ना, रमेन्द्र अब की विशेष चेष्टा करके देखेगा। शीघ्र ही उसे अब यहाँ से चल देना चाहिए।

सचमुच अब रहना देखने में अच्छा नहीं लगता। डाक्टर बाबू के आत्मीय लोग आज आरहे हैं, वे ही क्या समझेंगे? अब तक और कोई न था, केवल डाक्टर और उनकी स्त्री थी

पर अब आए हुए आत्मीय लोग उसके बारे में न जाने क्या समझ बैठें ! वह क्यों उन्हें वैसा समझने का मौका दे ?

फाटक के पास आते ही वह जैसे अपने होश में आ गया पास ही गाड़ी का अस्तबल और दरबान की कोठरी थी। रमेन्द्र को देखते ही दरबान संभ्रम के साथ उठ खड़ा हुआ। रमेंद्र को उससे मालूम हुआ कि डाक्टर बाबू स्टेशन से लौट कर किसी रोगी को देखने गये हैं।

रमेन्द्र ने बाहर की बैठक में प्रवेश किया। कमरे में रोशनी थी मगर कोई आदमी न था; वह बाहर आकर अन्यमनस्क भाव से टहलने लगा। उस समय बाग़ में कोई नहीं था। वह अक्सर इस लम्बे-चौड़े बाग़ में इधर-उधर घूमा करता था। डाक्टर बाबू की स्त्री शायद ही कभी बाग़ में आती थीं। कम-से-कम रमेन्द्र के आने के बाद से वह कभी बाग़ में नहीं आईं। रमेंद्र को कभी उनके वस्त्र का आँचल तक देखने को नहीं मिला। इसी लिए रमेंद्र बिना किसी संकोच के बेधड़क बाग़ के भीतर चला जाया करता था। अनेक फलों वृक्षों के अलावा उस बाग़ में बहुत से फूलों के पौदे भी थे। घूमते-घूमते पास ही लगे हुए एक रजनीगंधा के वृक्ष के पास रमेंद्र आकर खड़ा हुआ। डाक्टर बाबू रजनीगंधा फूल के विशेष भक्त थे। उनके यत्न से टब में लगे हुए रजनीगंधा के पौदे में असमय भी फूल दिखलाई पड़ते थे। इस फूल के वह ऐसे पक्षपाती या शौक़ीन थे कि बाग़ में पेड़ रहने पर भी अपने सोने के कमरे या बैठक में सब जगह टब में रजनीगंधा के वृक्ष रक्खे रहते थे। रमेंद्र को भी रजनीगंधा से विशेष अनुराग था। सायं-काल के अस्पष्ट प्रकाश में रजनीगंधा के पास खड़े होकर रमेंद्र उसके फूलों को सूँघ रहा था।

एकाएक कोमल संगीत का शब्द उसे सुनाई पड़ा। रमेंद्र के कान खड़े हो गये। आवाज़ बड़ी सुरीली और मीठी थी। अज्ञात

भाव से वह उस गीत को और भी स्पष्ट सुनने के लिए दो-एक पग आगे बढ़ गया। हवा में मधुर संगीत का स्वर आ रहा था—

केनो वंचित होबो चरणे !

(मैं चरणों से क्यों वंचित होऊँगा !)

वंशीनाद से आकृष्ट मृग की तरह रमेंद्र धीरे-धीरे निकटवर्ती खिड़की की ओर अग्रसर हुआ। बहुत दिनों बाद अपने प्रिय कवि का यह मधुर गीत मनोहर कंठ से सुनकर आज अपने को सँभाल नहीं सका।

आमि कतो आशा कोरे बोसे आछि,

पाबो जीवने ना हय मरणे।

(मैं कितनी आशा करके बैठा हुआ हूँ; जीवन में न पाऊँगा तो मरने पर तो पाऊँगा।)

यह तो केवल गान नहीं है। गानेवाली जैसे हृदय निकाल-कर रक्खे दे रही है। यह किसका गला है ? डाक्टर बाबू की स्त्री का ? शायद वही होंगी। रमेंद्र ने तो अब तक उन्हें कभी देखा भी नहीं; गाना सुनने की कौन कहे ? रमेंद्र अच्छी तरह सुनने के लिए उस खिड़की के नीचे ही आकर खड़ा हो गया।

स्वर के उतार-चढ़ाव से गीत के भाव जैसे प्रत्यक्ष आकर खड़े हो रहे थे। शिक्षित कण्ठ का गान था—गमक, मींड़ और तान बहुत मनोहर थी। बाहर की बैठक में रमेंद्र ने एक टेबुल-हारमोनियम देखा; लेकिन अबतक उसने किसी को उसे बजाते नहीं देखा था। उसे गाने का बड़ा शौक़ था वह बजाना भी जानता था। किंतु मन की अशान्ति के कारण उधर उसका ध्यान ही न था। आज यह गाना बड़ा ही मधुर लग रहा था—

होये पथेर धूलाय अन्ध
एसे देखिबो कि खेवा बन्ध ?
तबे पारे बोसे पार कोरो बोले पापी,
केनो डाके दीन शरणे ?

(मार्ग की उड़ती हुई धूल से अंधा होकर किनारे आकर क्या देखूँगा कि खेवा बंद है ? पार बैठकर पापी समझकर इसे पार करो। यह दीन शरण के लिए क्यों पुकारे ?)

सत्य है, अति सत्य है ! किंतु यह गानेवाली कौन है ? रमेंद्र के हृदय-यंत्र में जो सुर—जो बात नित्य बजती है, गायिका जैसे उसी की मूर्ति अपने सुर से खड़ी कर रही है ! सुन्दर, अद्भुत अति मधुर है !

रमेंद्र का मन संगीत के स्रोत में बह चला, उसकी सब इन्द्रियाँ जैसे संगीत के मोह से अभिभूत हो पड़ीं ।

गाना थमा। रमेंद्र उस समय भी वहीं मंत्रमुग्ध की तरह खड़ा था।

भीतर दो व्यक्तियों की बातचीत सुन पड़ी ।

एक स्त्री ने कहा—तू क्या रोज गाती थी ?

दूसरी ने कहा—नहीं दीदी, गाने को समय कहाँ मिलता है ? हाँ, घर जाने पर बाबूजी जब कहते थे, तब कभी-कभी गाती थी।

पहली ने कहा—लेकिन तेरा गला तो दूनी, पहले की तरह ही सधा हुआ है और एक गीत गा ।

दूसरी ने कहा—कोई आ जायगा दीदी, अब आज और न गाऊँगी।

पहली ने कहा—कौन आ जायगा ? उन (डाक्टर) के आने पर गाड़ी की आवाज होगी । और वह आ भी जायँगे तो क्या होगा ? उनके आगे तो तुझे शरमाने की कोई जरूरत नहीं है ! उनके आगे तो तू बराबर गाया ही करती थी। ले, और एक शुरू कर ।

दूसरी ने कहा—अच्छा तो पहले तुम एक गाना गाओ। बहुत दिनों से तुम्हारा गाना नहीं सुना ।

पहली ने कहा—मैं भला क्या गाऊँ ? तेरा जैसा गला होता

तो मैं गाती। जान पड़ता है, गाड़ी में तुझे अच्छी तरह सोने को नहीं मिला दूनी ?

दूसरी ने कहा—नहीं दीदी, रास्ते में तो कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। सेकिंड क्लास की रिजर्व गाड़ी थी। मामाजी, मौसी, मिनू और मैं थी। खूब सोती हुई यहाँ तक आई हूँ।

पहली – अच्छा, आज गाना रहने दे।

कमरे में फिर कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। रमेंद्र उस स्थान से हटना ही चाहता था, इसी समय उसने फिर सुना—

पहली स्त्री ने कहा—अच्छा वह कुमार-संभव काव्य का श्लोक तुझे याद है, जिसमें मदन-भस्म के उपरांत रति के विलाप का वर्णन है ? वही "उपमानमभूद्विलासिनां" श्लोक एक बार जरा सुना तो सही। बाबूजी अक्सर तेरे मुख से यह श्लोक सुना करते थे। मुझे भी यह श्लोक बहुत पसंद है।

रमेंद्र जाते-जाते लौट पड़ा। उसका कौतूहल बहुत बढ़ गया। इधर इन कई दिनों से उसे यह मालूम हो गया था कि डाक्टर की पत्नी को पुस्तक पढ़ने का बड़ा शौक है। वह समझता था, आज-कल जैसे अनेक औरतें मासिक पत्रिका पढ़ती हैं, उपन्यास पढ़ती हैं, वैसे ही डाक्टर की स्त्री भी पढ़ती-लिखती हैं। किन्तु यह तो केवल वैसे हलके साहित्य की अनुरागिणी नहीं देख पड़तीं ! यह तो महाकाव्य भी समझती हैं, महाकवि कालिदास की भक्त हैं। उसने अनुमान से जान लिया था कि यह दो बहनों में बातचीत हो रही है। आज जो मेहमान आनेवाले थे, वह शायद यही हैं। यह जानकर उसे विस्मय और प्रसन्नता भी हुई कि हिन्दू-घरों की स्त्रियाँ अब केवल उपन्यास ही नहीं पढ़तीं, बल्कि काव्य-साहित्य की आलोचना भी करने लगी हैं। कालिदास के कुमारसंभव तक उनकी गति हो गई है।

किन्तु साथ ही उसका मन उदास भी हो गया ! उसकी पत्नी

भी अगर ऐसी ही विदुषी होती ! सहसा उसने सुना, वामा-कण्ठ से महाकवि कालिदास की रचना बहुत ही शुद्ध और स्पष्ट रूप से उच्चारित हो रही है—

"उपमानमभूद्विलासिनां
करणं यत्तव कान्तिमत्तया ।
तदिदं गतमीदृशीं दशां
न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः ॥

शोक से मुह्यमान, पति-वियोग से कातर रति के विलाप की गाथा इस नारी के कण्ठ से जैसे विलाप-ध्वनि के समान ही करुण, हृदय-विदारक विषाद-संगीत के ही समान सुन पड़ने लगी ।

श्लोक की आवृत्ति का ढंग और कंठ की माधुरी बहुत ही मनोहर थी । रमेन्द्र मुग्ध हो गया । संस्कृत-साहित्य का अच्छा ज्ञान और उस पर अधिकार हुए बिना कोई इस तरह अभ्रान्त आवृत्ति नहीं कर सकता । रमेन्द्र स्वयं कवि है और श्लोक की आवृत्ति बहुत सुन्दर करता है; किंतु वह भी शायद इस तरह आवृत्ति न कर सकता ।

"ध्रुवनु मां त्वदधीनजीवितां
विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः ॥
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो
जलसंघात इवासि विद्रुतः ॥
रजनीतिमिरावगुण्ठिते
पुरमार्गे घन शब्द विक्लवाः ॥
वसतिं प्रिय कामिनां प्रिया-
स्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः ॥"

व्यथा का अनुभव किये बिना, वियोग-यंत्रणा झेले बिना इस तरह प्रति से बिछड़ी हुई नारी के शोक की मूर्त्ति सामने खड़ी कर देना सर्वथा असम्भव है । नारी-कण्ठ से विलाप का आर्त्त

स्वर जैसे प्रत्येक छन्द में सजीव मूर्ति धारण करके उस स्थान में विचरण करने लगा। कालेज में प्रौढ़ प्रवीण अध्यापक संस्कृत-साहित्य में सुपण्डित महामहोपाध्याय जब पढ़ाते समय श्लोकों की आवृत्ति करते थे, तब उसे सुनकर रमेंद्र मुग्ध हो जाता था। किन्तु आज इस तरुणी के कण्ठ से निकली हुई इस विलाप-गाथा ने उसके हृदय पर जैसा प्रभाव डाला, उसे अभिभूत और विचलित कर दिया, वैसा और कभी किसी दिन नहीं हुआ। हिंदी, बँगला और संस्कृत कविता पढ़ने की प्रतियोगिता में परीक्षा देकर एक बार रमेंद्र ने प्रथम पुरस्कार पाया था; किंतु उसे इस समय जान पड़ा कि ऐसे ललित ढंग से भाव प्रकट करके वह कभी आवृत्ति नहीं कर सका।

इस अपरिचित रमणी के प्रति रमेंद्र की श्रद्धा और भी बढ़ गई। एकाग्र मन से सुनते-सुनते वह ऐसा तन्मय हो गया कि पाठ समाप्त होने के उपरान्त भी कण्ठस्वर की झनकार और गर्जन-गीत उसके कानों में बहुत देर तक जैसे गूँजता ही रहा।

सहसा एक शब्द हुआ। उसने सिर उठाकर देखा। खिड़की का निचला हिस्सा बन्द था, खड़खड़ियाँ खुली न थीं, अतएव भीतर क्या हो रहा है, यह देखने का कोई उपाय न था। दूसरी ओर का दरवाज़ा खुलने के शब्द से उसने जाना कि इस कमरे में जो थीं, वे अब यहाँ से जा रही हैं। कौतूहल के साथ रमेंद्र ने ऊपर की ओर देखा, किन्तु कुछ भी न देख पड़ा। रमेंद्र ने सोचा, वह काम अच्छा नहीं कर रहा है। इस तरह छिप कर पराई स्त्री को देखना भले आदमियों का काम नहीं। लेकिन सब समय सभी लोग क्या विचार कर काम कर सकते हैं? यह शक्ति सब में नहीं होती।

फिर सुन पड़ा—चल दूनी, देख आवें, महराज ने क्या बनाया है, क्या बाकी है।

चूड़ियों की खनखनाहट और आँचल के खस-खस शब्द से रमेंद्र समझ गया, अब कमरे में कोई नहीं रहा। कई सेकिंड के बाद उसे खयाल आया कि काम ठीक नहीं है। वह धीरे-धीरे बाहर बैठक की ओर चला।

गाड़ी-बरामदे में पहुँचकर उसने देखा, डाक्टर बाबू खड़े हैं। वह न जाने कब लौट आये थे।

डाक्टर ने देख कर कहा—आइए शिशिर बाबू, आप को लौटे कितनी देर हुई ?

रमेंद्र ने अपने को सँभालकर कहा—अभी थोड़ी देर हुई। आप घर में न थे, इसी से ज़रा बाग़ में टहलने चला गया।

सिगरेट का एक कश खींचकर डाक्टर ने कहा—अच्छा किया। जान पड़ता है, आज बहुत दूर घूम आये आप ?

रमेन्द्र—हाँ, गोमती के उस पार गया था। सचमुच लखनऊ शहर बहुत बड़ा है। उसे देखने के लिए बहुत समय चाहिए।

डाक्टर—इसमें क्या शक है। चलिए, भीतर चलकर बैठा जाय। दिन भर तो आपने घूमकर ही बिता दिया, अब ज़रा गप शप लड़ाई जाय।

रमेन्द्र डाक्टर के साथ बैठक में आकर बैठ गया। डाक्टर ने कहा—आज तीसरे पहर आपने चाय पी ही न होगी ? वही एक बजे चल दिए थे।—बैरा !

"हजूर !" कहकर नौकर हाज़िर हुआ।

डाक्टर ने घड़ी की ओर देखकर कहा—अभी सात ही बजे हैं। भोजन मिलने में अधिक विलम्ब है।—रामदीन, अंदर जाकर दो प्याला चाय बनाने के लिए कह दो।

दीर्घ पर्यटन के बाद रमेंद्र की भी चाय पीने की इच्छा प्रबल हो उठी थी।

थोड़े ही समय में चाय और रकाबी में सिंघाड़े लाकर रामदीन

ने हाजिर किये। भोजन के लिए डाक्टर बाबू का आग्रह कभी कम न होता था। यही उनकी विशेषता थी। सामने आई हुई सामग्री को छोड़ना उनकी दृष्टि में कोरी मूर्खता थी।

डाक्टर बोले—आइए शिशिर बाबू, तब तक इनका सद्व्यवहार किया जाय। दिन भर मैं भी घूमता रहा, इससे इस समय भूख लगी है। आप तो चले गये, मुझे स्टेशन जाना पड़ा, मेरी छोटी साली आई है। चार बरस हुए, दोनों बहनों से भेंट नहीं हुई थी। मेरे मच्याँससुर जयपुर में रहते हैं। वही उन्हें जाते समय लखनऊ उतारते गये। उनसे मैंने बहुत कहा कि आप भी चलिए; पर वह देर नहीं कर सकते थे। देखिए शिशिर बाबू, यह गुलामी, चाहे बड़ी हो चाहे छोटी, गुलामी ही है। क्यों, ठीक है न?

दासत्व के अत्यन्त हेय होने में रमेन्द्र को रत्ती भर भी संदेह नहीं था। किन्तु मनुष्य का ऐसा भाग्य है कि इस दासत्व से किसी तरह उसका छुटकारा नहीं। वह या तो मनुष्य का दास होकर या प्रकृति का गुलाम बनकर बराबर अपना जीवन बिताता है! कहाँ है मुक्ति! कब इस दासत्व का अन्त होगा! कभी ऐसा होना सम्भव भी होगा क्या?

चिन्ता की धारा के साथ-साथ रमेन्द्र का मन बहुत दूर—सुदूर अतीत में चला गया।

डाक्टर—शिशिर बाबू, और थोड़े गर्म सिघाड़े मँगाऊँ क्या?

प्रकृतिस्थ होकर रमेंद्र ने कहा—मँगाइए।

रामदीन भीतर से केवल सिंघाड़े नहीं, नमकीन खस्ता भी लेकर हाजिर हुआ।

भृत्य के चले जाने पर रमेंद्र गंभीर भाव से कह उठा—एक अनुचित काम कर बैठा हूँ डाक्टर बाबू!

गिरीन्द्रनाथ ने खस्ता खाते-खाते कहा—कैसा?

रमेंद्रनाथ—आपके आने के पहले बाग़ में टहलने चला गया

था। एकाएक मधुरकंठ का गाना सुनकर और आगे बढ़ गया। जान पड़ता है, आपकी स्त्री गा रही थीं। बहुत मधुर मालूम हुआ, इसीसे सुनने लगा। पर काम अच्छा नहीं हुआ। छिपकर किसी महिला का गाना सुनना निस्सन्देह अभद्रता है।

डाक्टर बाबू कौतुकपूर्ण दृष्टि से रमेंद्र के गंभीर मुख की ओर ताक रहे थे। उसका वक्तव्य समाप्त होने पर डाक्टर ने जोर से हँसकर कहा—वाह! इसमें अनुचित क्या हुआ? अभद्रता क्या हुई? औरतें गला फाड़कर गा सकती हैं, और हम सुन नहीं सकते? यह तो कुछ दोष नहीं है।

रमेंद्र ने कहा—आपके लिए दोष नहीं है, संगत है। किन्तु मेरे लिए अन्तःपुर की ओर बिना बुलाए गाना सुनने जाना अवश्य ही अपराध है। केवल गाना ही नहीं, कविता-पाठ तक सुन आया हूँ। काम तो अनुचित है ही, किंतु उसे छिपाना और भी अन्याय है। इसी लिए आपसे मैंने जाहिर कर दिया।

डाक्टर ने कहा—हाँ! कविता-पाठ तक आपने सुना? बेशक आपका भाग्य बहुत अच्छा है। कौन-सी कविता थी?

डाक्टर बाबू ने यद्यपि सहज भाव से इस बात को टाल देना चाहा, पर रमेंद्र ऐसा नहीं कर सका। उसने क्षुब्ध भाव से कहा—कविता कुमारसंभव काव्य का रति-विलाप थी।

डाक्टर—संस्कृत श्लोक! किन्तु जान पड़ता है, आपको भ्रम हो गया है। मेरी स्त्री गाना अवश्य जानती हैं और कविता-पाठ भी बुरा नहीं कर लेती हैं, किन्तु आपकी बातें सुनकर मालूम होता है, वह गाना और कविता-पाठ मेरी स्त्री का न था। मेरी जो साली आई है वही गाती होगी, और कविता की आवृत्ति भी उसी ने की होगी। वह बहुत अच्छा गाती है; उसकी आवाज भी बड़ी मीठी और सुरीली है। मैं एक बार उसके मुख से कविता-पाठ सुन चुका हूँ। शायद यही कविता भी थी।

रमेंद्र ने कहा—वह चाहे जो हो, मैं अपने इस अनधिकार व्यवहार के लिए क्षमा चाहता हूँ। आप क्षमा कीजिए।

अबकी डाक्टर बाबू बड़े जोर से हो-हो करके हँस उठे। रमेंद्र भी कुछ अप्रतिभ हो गया। हँसी थमने पर गिरीन्द्रनाथ ने कहा—क्षमा? अच्छा, जिनके निकट आप अपराधी हैं, उन्हीं के आगे आपकी अर्जी पेश की जायगी। क्षमा करने या न करने का अधिकार उन्हीं को है।—अच्छा, अब ये खस्ता तो खा डालिए।

चालीसवाँ परिच्छेद

"माधव !"

"मुझे पुकारती हो मा ?"

"हाँ जरा इधर तो आ भैया !"

हाथ का काम छोड़कर माधव बरामदे में आ खड़ा हुआ। रमेंद्र की माता ने खुली हुई चिट्ठियाँ माधव के हाथ में दीं। माधव अधिक बातचीत का आदमी न था। उसने दोनों पत्र चुपचाप पढ़कर माता की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा।

मा ने कहा—अब क्या किया जाय ?

माधव ने कहा—इस तरह जब दोनों आदमियों ने आने के लिए अनुरोध करके लिखा है, तब मेरी समझ में जाना ही उचित है। इसमें तुम्हारे मान-संभ्रम की कुछ हानि न होगी।

माता सोचने लगीं। उसके बाद धीरे-धीरे बोलीं मैं कभी किसी के घर नहीं गई, यही सोच रही थी।

सिर हिलाकर माधव ने कहा—और जगह और इस जगह में बड़ा फर्क है मा ! बहू की बहन ने ठीक ही लिखा है कि "मा, मैं भी आपकी लड़की हूँ। दूनी जैसे आपके परम स्नेह की पात्री है, मुझे भी वैसे ही समझिए। यह घर आपके लड़के और लड़की ही का घर है। आपके आने से मेरे व्रत का उद्यापन सार्थक होगा। मा और बाबू जी आ रहे हैं। वे आपको अपने साथ लेते आवेंगे। आप न आवेंगी तो सब भरभंड हो जायगा। दूनी मामा बाबू के साथ पहले ही यहाँ आ गई है, यह आपको मालूम है। आप आकर देखेंगी कि आपकी लड़कियों के जीवन का जो परम

दुःख था, उसका अन्त हो गया है। यहाँ आने पर मैं आपको एक आनंद-समाचार भी दे सकूँगी।"

यहाँ तक पढ़ कर माधव ने कहा—इस जगह का मतलब कुछ समझ में नहीं आया मा !

रमेंद्र की मा समझ नहीं पाई थीं। किन्तु बहू और बहनोई ने जैसे गंभीर आग्रह के साथ निमन्त्रण किया है, उस अनुरोध की उपेक्षा करना भी तो असंगत ही होगा।

थोड़ी-सी आलोचना के बाद ठीक हुआ कि जाना ही उचित है।

माधव ने कहा—लेकिन मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकूँगा मा।

गृहिणी ने कहा—क्यों ?

माधव ने कहा—तुम तो जानती हो मा कि सुरेश बाबू मेरे ऊपर कैसी भारी जिम्मेदारी डाल गए हैं। वह काम छोड़कर मैं कहीं हिल नहीं सकता।

वृद्धा उस कार्य के गौरव को समझती थीं। माधव साथ जाता तो अच्छा होता। किन्तु जब उसके जाने की कोई सूरत नहीं है, तब उसे छोड़कर ही जाना पड़ेगा।

माधव ने कहा—बड़ी बहू तुम्हारे साथ जायगी।

मा ने कहा—वह जायगी तो घर की देखभाल कौन करेगा ? तुझे भी बड़ी तकलीफ़ होगी।

माधव ने हँसकर कहा—घर का काम क्या मैं नहीं कर सकूँगा ? खाने-पीने के कष्ट की बात कहती हो ? सो उसकी मैं कितनी पर्वा करता हूँ, यह तुमसे क्या छिपा हुआ है ?

माता हँस दीं माधव किस धातु का बना है, यह उन्हें खूब मालूम था। अतएव इस विषय में उन्होंने और अधिक कुछ नहीं कहा।

घर काम-काज समाप्त करके विदेशयात्रा के लिए किस-किस

वस्तु का प्रयोजन होगा, उसकी व्यवस्था करके विधवा बहुत कुछ निश्चित हुईं। राधारानी उनके साथ ही साथ काम करती फिर रही थी। उसने कभी पछाँह की सैर नहीं की। मा के साथ नवाबी अमलदारी का शहर लखनऊ देख आवेगी, और लौटते समय रास्ते में विश्वनाथजी के दर्शन भी काशी में होंगे, इस आनन्द से उसका चित्त उत्फुल्ल हो उठा था।

पास के अन्न बाँटने के केन्द्र से लौटने समय रास्ते में तीसरे पहर तार-पियन ने एक तार माधव के हाथ में दिया। उस तरफ़ माधव को सभी जानते-पहचानते थे।

माधव ने उसे पढ़कर देखा, खोका (रमेंद्र) के ससुर ने लिखा है कि आज रात को वह पहुंचेंगे। पढ़कर ही वह समझ गया कि रमेंद्र ससुर रमेंद्र की मा को अपने साथ लेने के लिए आ रहे हैं। गाँव के भीतर प्रवेश करके उसने सीधे स्टीमर-घाट में पालकी और कहार भेजने व्यवस्था की। फिर वह घर लौटा।

समधी और समधिन—धनी संभ्रात जमींदार अपनी पत्नी के साथ पहली बार आरहे हैं, इससे रमेंद्र की माता बहुत व्यस्त हो उठीं। उनके यहाँ आने की कभी संभावना न थी। किन्तु वही आज अपनी इच्छा से उनके घर आरहे हैं हाय! आज उनका पुत्र घर में नहीं है—बहू भी सुदूर पश्चिम में है! आदर-अभ्यर्थना में अगर कोई त्रुटि हो, यही उन्हें चिन्ता थी! अकेला माधव कहाँ तक सँभालेगा?

किन्तु माधव व्यवस्था करने में ऐसा निपुण था कि उनकी आदर-अभ्यर्थना में कोई त्रुटि घटित होने की बिलकुल संभावना ही न थी। उसने जमीदार समधी की यथायोग्य अभ्यर्थना करने का सारा प्रबन्ध थोड़े ही समय में अच्छी तरह पूर्ण कर डाला।

किन्तु इस सब व्यवस्था का कोई प्रयोजन ही न था। जिनके लिए इतना आयोजन किया गया, वे ऐसे आडम्बरहीन, सीधे-सादे

साधारण ढंग से आकर उपस्थित हुए कि उसे देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ। साथ केवल एक नौकर, एक ट्रंक और एक बिस्तर था और कुछ नहीं।

रमेंद्र की मा ने बड़े आदर से समधिन की अभ्यर्थना की। रमेंद्र के ससुर ने कहा—समधिनजी, आज हम आपके अतिथि हैं। हमारे आने का उद्देश्य तो शायद आपको मालूम होगा?

माधव के द्वारा गृहिणी ने कहला भेजा कि वह चलने के लिए तैयार हैं।

समधी ने कहा—कल सबेरे के स्टीमर से ही हमें रवाना हो जाना होगा। तभी हम ठीक समय पर लखनऊ पहुँच सकेंगे। प्रौढ़ा के चित्त में संकोच की जो साधारण-सी छाया थी, वह भी समधी और समधिन के अयाचित आगमन और परमात्मीय के-से व्यवहार से शीघ्र ही गायब हो गई।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

रमेंद्र ने सोचा, उसके मन का पाप जैसा भारी है, आत्म-ग्लानि, अनुशोचना सुयोग देखकर वैसाही कठोर प्रायश्चित भी उसका उससे करा रही है। इसके लिए दुःखित होने से काम नहीं चलेगा। यह तो उसका प्राप्य ही है। यंत्रणा? जलन?—सो आग में हाथ डालने से होगी ही। उससे बचने का अब कोई उपाय नहीं है।

जी की जलन जुड़ाने के लिए, हृदय को शान्त करने के लिए, वह डाक्टर बाबू के मित्र से मिलने गया। वह मित्र जैसे निष्कपट, सहृदय और भद्रपुरुष थे, वैसे ही सुशिक्षित और सुपुरुष भी। उनसे बातचीत करके वह प्रसन्न हुआ। किन्तु उसे क्या मालूम था कि उसके हृदय के घाव को वहाँ भी ठेस लगने की संभावना है!

पहले दिन साधारण बात-चीत करके वह कुछ खुश होकर ही लौटा था। वह भले आदमी एक बड़े भारी विज्ञान के विद्वान् थे; पर रूखे वैज्ञानिक ही नहीं, साहित्य के रसिक भी थे। प्राच्य और प्रतीच्य साहित्य में उनका यथेष्ट अधिकार था। किन्तु आज तीसरे पहर बातों ही बातों में रमेंद्र को मालूम हुआ कि वही भद्रपुरुष सुरेशचंद्र के बहनोई और सीता के पति प्रोफ़ेसर सुनीलचन्द्र हैं। वह इलाहाबाद से लखनऊ में एक वैज्ञानिक परिषद् के अधिवेशन में सभापति होने के लिए आए थे और किसी कारण से कुछ दिन लखनऊ में ठहरने का उनका विचार था।

सुनीलचन्द्र का परिचय जानने के बाद फिर उसके हृदय का सूखा हुआ घाव हरा हो चला और उससे रक्त की धारा बहने लगी। जिसका सर्वनाश करने में उसने एक दिन कुछ भी

कसर नहीं रक्खी थी—जिसे मानसी प्रतिमा समझकर पूजा करते-करते पाप के पंकिल गड्ढे में डुबाकर मारने के लिए उसने मूढ़ की तरह दुर्व्यवहार किया था—उसी सीता के स्वामी के साथ आज वह हँस-हँसकर बातें कर रहा है, अपने को भद्र-संतान कहकर उसके साथ साहित्य और विज्ञान की आलोचना कर रहा है !

रात को रमेंद्र को नींद नहीं आई। वह केवल रह-रहकर यही सोचने लगा—बन्धुत्व का विश्वास और दावा तथा आत्मीयता का अधिकार लेकर कोई व्यक्ति यदि उसी की सहधर्मिणी के प्रति इस प्रकार व्यवहार करता तो वह क्या उसे क्षमा कर सकता ? ना, कभी नहीं। उसकी स्त्री कैसी है, यह वह नहीं जान सकता। स्त्री के प्रति उसका कुछ भी आकर्षण नहीं है। तो भी वह अगर जान पावे कि किसी आदमी ने उसके शयनगृह में प्रवेश करके उसी की तरह निर्लज्ज भाव से प्रेम के नाम से कुत्सित इंद्रिय-लालसा की बात उसकी स्त्री से कही है, तो वह क्या करेगा ? निश्चय ही वह उस व्यक्ति को प्रेम से गले लगाने को तैयार कभी न होगा। बल्कि बदले में उसके बलिष्ठ बाहु का प्रचंड घूसा उस पापिष्ठ के मस्तक को तोड़ने के लिए तैयार हो जायगा।

प्रेम ?—यह शब्द याद आते ही वह काँप उठा। इस दो अक्षरों के शब्द का आज कल लोग कैसा अपव्यवहार करते हैं। समग्र विश्व की रस-माधुरी जिसमें भरी पड़ी है, उस प्रेम की महिमा क्या इस समय वह समझ पाया है ? प्राच्य के प्राचीन कविगण जिसकी महिमा गाकर स्वयं धन्य हुए हैं—वैष्णव कवि जिसके रस और माधुरी का कीर्तन करके अपने साहित्य को अमर कर गये हैं, वह प्रेम क्या विना साधना के कोई पा सकता है ? यह सच है कि वह स्वयं भी कवि है, किन्तु इतने दिन तक तो वह केवल प्रेम का सपना देखता रहा, प्रेम को जान नहीं

पाया। साधना और मनोवृत्ति की विशुद्धता न होने से केवल दुर्जय प्रथम रिपु (काम) से ही उसकी भेंट हुई! आज यह बात स्मरण करने से भी उसका हृदय ग्लानि से भर जाता है।

रमेंद्र खिड़की के पास आकर खड़ा हुआ। उसके गरम मस्तक में इस समय बाहर की ठंडी हवा आकर लगने लगी। स्निग्ध चाँदनी का प्रकाश आत्मविस्मृत भाव से जैसे नैश प्रकृति को प्यार कर रहा था। श्यामा पृथ्वी और चाँदी सी सफेद चाँदनी का यह विचित्र मिलन कैसा मधुर और मनोहर था! इसमें न लालसा का कलुष था, न वासना की ज्वाला! कामना और रूप-तृष्णा का अधीर आग्रह भी नहीं था। यही तो सच्चा प्रेम है!

प्रेम में आत्मतृप्ति या स्वार्थपरता का भाव नहीं होता। अपने को दे डालना, गँवा देना ही प्रेम है। फिर आज तक यह ज्ञान उसे क्यों नहीं हुआ? वह बड़ा ही अभागा है, इसी से तो प्रेम को लांछित करके उसने काम को सिर चढ़ा लिया था। रामायण पढ़ कर भी वह प्रेम के ध्यान-मंत्र को सीख नहीं सका। कालिदास, भवभूति के ग्रंथ कंठस्थ करके भी वह प्रेम के दर्शन नहीं पा सका। वह केवल अंधे की तरह अमृतसागर को मँझा गया, उसके भीतर गोता लगाकर उसकी थाह नहीं पा सका।

किन्तु अब वह विपथ में पैर न रक्खेगा—मरीचिका के पीछे न दौड़ेगा। उसके पाप का प्रायश्चित चाहे जितना कठोर हो, वह सब बरदाश्त करेगा। वही उसे प्राप्य है। हृदय फट जायगा? फट जाय। यही तो उसका दण्ड है। उसने ध्रुव सत्य की झलक देख पाई है।

हाँ, मन का पाप स्पष्ट रूप से उसे प्रकट करना होगा। वह सुनीलचन्द्र से सब हाल कह देगा। ऐसा करने के लिये वह बाध्य है। वह घोरतर पापी है। दैहिक पाप से भी बढ़कर मन का पाप भीषण होता है। उसने महापाप किया है। सुनीलचंद्र से वह आदर और प्रतिष्ठा पाने के योग्य नहीं है।

किन्तु उसके पहले सीता के निकट अपराध स्वीकार करना संगत नहीं है क्या ? अभद्र, इतर पुरुष का-सा व्यवहार करके बिना क्षमा माँगे ही कायर की भाँति वह भाग आया है। अब तक अपने को छिपाये हुए है। इससे उसके पाप का प्रायश्चित्त कहाँ हुआ ? उसे सिर झुकाकर अपना अपराध स्वीकार करना होगा। केवल सीता ही नहीं, सुरेश के आगे भी उसे अपना पाप प्रकट करना होगा। इससे अगर सारी दुनिया के लोग उसकी ओर उँगली उठाकर कहें कि "इस कामांध पशु का विश्वास न करना; इसे समाज में स्थान देना भी महापाप है !" तो वह इस दण्ड को चुपचाप स्वीकार कर लेगा। कारण, वह इसी का पात्र है !"

हाँ, सब लोग उसे घृणा करें, सब उसका साथ छोड़ दें। मनुष्य समाज से निर्वासन का दण्ड ही उसके भयानक पाप का किसी अंश में प्रायश्चित्त है !

किन्तु ये लोग इस समय कहाँ मिलेंगे ? सुरेश और सीता से भेंट होने की संभावना तो इस समय है ही नहीं।

रमेंद्र छाती पर दोनों हाथ बाँधकर सोचने लगा।

कमरे में रोशनी नहीं थी। अँधेरे में बैठे-बैठे वह बाहर के आलोक-प्लावित नीरव सौंदर्य को देखने लगा। क्रमशः उसकी विचार-धारा भी दूसरी ओर मुड़ गई।

जो चिर-सुन्दर है, उसका परिचय आज कैसा प्रकृति के प्रत्येक अंग में—कण-कण में—मिल रहा है ! उसने आँखें मूँद लीं।

विश्वनाथ ! उसके हृदय की इस ज्वाला को तुम अपने मधुर प्रेम की ज्योत्सना के प्रवाह में डुबो दो। तुमको भूलने ही से तो उसका यह सर्वनाश हुआ। जवानी की मस्ती में शिक्षा के अभिमान में पड़कर वह माता के दिये उपदेश को भूल गया था। उसने मानव-जीवन के एक मात्र अवलम्ब को त्याग दिया था। वह भूल गया था कि उसी भारत में उसका जन्म हुआ है, जिस

देश के लोगों को धर्म-विश्वास और ईश्वर-निष्ठा जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त होती है। यहाँ के लोग ज्ञान के प्रकाश में उस विश्वास और निष्ठा का कैसा उत्कर्ष कर दिखाते हैं, इसके उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रंथों में भरे पड़े हैं और अब भी यत्र-तत्र देखने को मिल जाया करते हैं। किन्तु वह ऐसा अभागा है कि ज्ञान और शिक्षा उसे सत्य के मार्ग में न ले जाकर मोह की भूल भुलैया में भटकाते रहे! केवल वही अकेला नहीं, उसके समान सैकड़ों नवयुवक देशवासी इसी तरह बाहरी रूप रंग की चकाचौंध में अंधे होकर मरीचिका के पीछे मारे-मारे फिरते हैं।

रमेंद्र ने आकुल आग्रह से मन को एकाग्र करना चाहा। मनुष्य जब हृदय से ईश्वर को पुकारता है, तो भगवान् अवश्य उस का उत्तर देते हैं! तब अनन्त चैतन्य-सागर से भक्तकी ईप्सित मूर्ति प्रकट हो पड़ती है। हे भगवन् तुम किसी के भी कातर आह्वान की उपेक्षा नहीं करते। रमेंद्र उठना चाहता है, मनुष्य के नाम से अपना परिचय देना चाहता है। केवल मांस पिण्डमय देह को लेकर इस जगत में वह व्यर्थ जीवन बिताने के लिए नहीं आया।

हृदय के अन्तःपुर के मार्ग में वह जैसे किसी आनेवाले के पैरों की आहट का अनुभव करने लगा। उसके प्रति पदक्षेप में जैसे उसके हृदय का अंधकार हटने लगा। अमृत-प्रलेप की स्निग्धता से उसके हृदय के घाव में जैसे ठंडक पड़ने लगी। आह, कैसी शान्ति है?

आँसुओं से उसकी छाती भीग गई। बहुत देर बाद शान्त शिशु की तरह उसने शय्या पर आकर शयन किया। गहरी नींद ने उसकी थकी हुई देह को अपनी गोद में ले लिया।

बयालीसवाँ परिच्छेद

उस दिन वैज्ञानिक परिषद् का अधिवेशन था। वहाँ का कार्य समाप्त करके प्रोफ़ेसर सुनीलचंद्र चटपट सभामंडप से निकले और एक गाड़ी भाड़ा करके अपने डेरे की ओर चल दिये। इतनी जल्दी का एक विशेष कारण था। आज उनकी पत्नी, बहन और साले की अवाई थी। ये लोग इलाहाबाद न जाकर सीधे कलकत्ते से लखनऊ आ रहे थे। सुनीलचन्द्र ने उन्हें यहीं बुलाया था; क्योंकि वह अभी १०-१५ दिन लखनऊ में ही रहनेवाले थे। यहाँ कुछ दिन ठहरने के लिए उनके कई इष्ट-मित्रों ने अनुरोध किया था, जिनमें डाक्टर गिरीन्द्रनाथ मुख्य थे। आज अधिवेशन में फँसे रहने के कारण वह अपने इन आत्मीयों को स्टेशन पर लेने नहीं जा सके। उन्होंने अपने विश्वासी और पुराने नौकर भदुआ को स्टेशन भेज दिया था।

डेरे के दरवाज़े पर गाड़ी रुकते ही सुनीलचंद्र एक तरह से छलाँग मारकर उससे उतर पड़े और भदुआ को गाड़ी-भाड़ा चुका देने का हुक्म देकर जल्दी से ऊपर चढ़ गये। सामने के बरामदे में बैठे सुरेशचंद्र तमाखू पी रहे थे। सादर संभाषण और साग्रह संमिलन के बाद सुरेश ने कहा—पहले कपड़े जाकर उतारो प्रोफ़ेसर साहब, फिर बातचीत होगी।

सुनीलचन्द्र के पैरों की आहट पाकर दूसरे कमरे से सरयू और सीता निकल रही थीं। दरवाज़े पर दादा को देखकर सरयू ने झुककर उन्हें प्रणाम किया।

प्रोफ़ेसर ने कहा—कैसी रहीं सरयू? वाह, तुम्हारा चेहरा तो एकदम बदल गया।

सरयू के मुख पर गुलाबी आभा दौड़ गई, नीची दृष्टि किये हुए सरयू ने कहा—कपड़े उतारो दादा, मैं तुम्हारी चाय और जल-पान का सामान लिये आती हूँ।—भाभी, तुम तकलीफ़ न करो, मैं जाती हूँ।

यों कहती हुई सरयू जल्दी से चली गई। सुनीलचन्द्र ने बहन की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा। उनके अधरों में मुस्कान की रेखा दौड़ गई।

कमरे में प्रवेश करते ही सीता ने स्वामी के सामने झुककर प्रणाम किया। सुनीलचन्द्र ने जल्दी से उसे उठाकर कहा—मामला क्या है! देखता हूँ आज सबको लंबी दण्डवत् की सूझी है?

मुस्कराकर सीता ने कहा—क्यों, प्रणाम करने में क्या कुछ दोष है?

कुर्ता उतारते-उतारते सुनील ने कहा—वाह, इस साम्य-मैत्री-स्वाधीनता के युग में ये सब पुराने आचार-विचार क्या अच्छे लगते हैं?

स्वामी के हाथ से कुर्ता लेकर सीता ने यथास्थान रख दिया। उसके बाद कोमल स्वर में कहा—स्वामी की सेवा, गुरुजन को प्रणाम करना, यह सब तो समाज की विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत है। कम-से-कम भारत में तो ऐसा न करना अनुचित ही प्रतीत होता है!

पत्नी की ओर प्रीति-पूर्ण दृष्टि से देखकर सुनील ने कहा—आजकल तो छोटा-बड़ा, गुरु-लघु कुछ नहीं माना जाता सीता! इस युग में हम सब समान हैं—केवल एक प्रीति का बन्धन है। अन्यथा स्वामी और स्त्री दोनों के समान अधिकार हैं। यह क्या तुम्हें नहीं मालूम?

सीता ने कहा—औरों के लिए यह ठीक हो सकता है; किन्तु हम भारत की स्त्रियाँ हैं, हिंदू-नारी हैं। हमारा आदर्श और ही तरह का है। अधिकार सबके समान हैं, यह मैं मानती हूँ। साथ

ही यह भी मानती हूँ कि हिंदू-स्त्री के लिए उसका स्वामी ही गुरु, सखा, सब कुछ है ।

सुनील—हिन्दू ? यह क्या कह रही हो सीता ? इन कई सप्ताहों में तुम्हारा मत भी बहुत कुछ बदल गया देख पड़ता है !

सीता—क्यों ? हम लोग क्या हिंदू नहीं हैं ? हमारे शरीर में जो रक्त बह रहा है, वह क्या भारतवर्ष का नहीं है ? देह क्या हिंदू-धर्म की अस्थिमज्जा से युक्त नहीं है ?

पत्नी की ओर एकटक देखते रहकर सुनीलचन्द्र ने कहा—है क्यों नहीं; निश्चय ही है। किन्तु आजकल हम लोग उसे मानने के लिए तैयार तो नहीं हैं। इस सत्य को हम स्वीकार तो करना नहीं चाहते सीता !

सीता ने कहा—मेरी वह धारणा अब चली गई है। मगर यह तो बताओ, तुम इतने दुबले क्यों हो गये हो ?

कौतुक की दृष्टि से पत्नी की ओर देखकर सुनीलचन्द्र ने कहा—और तुम्हीं कौन मोटी हो आई हो ? तुम्हारा शरीर तो पहले ही अच्छा था !

बातचीत में बाधा पड़ी। सरयू चाय और जल-पान की सामग्री ले आई। बोली—दादा, हाथ-मुँह धो चुके ?

"जाता हूँ" कहकर सुनीलचंद्र ने नहाने की कोठरी में प्रवेश किया।

चाय पीने के लिए सुरेश बुलाए गए और आकर उसमें शामिल हुए। बहुत दिनों के बाद प्रियजन-सम्मिलन होने पर अनेक प्रकार की बातें होने लगीं। किसी निर्दिष्ट विषय की बातचीत न थी, साधारण गपशप लड़ती रही। संध्या का समय बड़े आनंद से कट गया। रात हो गई, पर बहुत दिन बाद मिलने पर समय का हिसाब कौन रखता है ?

भोजन के उपरान्त सुरेशचंद्र ने बहनोई को एकान्त में ले जाकर कहा—तुम लोगों को अगर कुछ आपत्ति न हो तो मैं

तुम्हारी बहन को अपने जीवन की चिरसंगिनी बनाना चाहता हूँ।

सुनीलचंद्र को बड़ी प्रसन्नता हुई; पर प्रकट में इन्होंने कहा—सरयू से पूछ कर क्या तुमने उत्तर नहीं पाया?

विस्मय के साथ सुरेश ने कहा—पागल हुए हो क्या! मैं अविवाहिता कुमारी से पूछूँगा कि "क्योंजी, तुम मुझसे ब्याह करोगी?" ना भाई, इस तरह के विलायती क़ायदे को मैं पसंद नहीं करता।

सुनील—क्यों भाई, इसमें बुरा क्या है? इस देश में भी तो पहले स्वयंवर की प्रथा थी। फिर इसे तुम विदेशी प्रथा क्यों मानते हो? देखो, अर्जुन ने सुभद्रा—

सुनीलचंद्र की बात काटकर सुरेश ने कहा—ना भाई, मैं इस बारे में तुमसे बहस करना नहीं चाहता। सीधी बात यह है कि मुझे यह ढंग पसंद नहीं, इसीसे मैंने ऐसा नहीं किया और न करूँगा। बस।

सुनील ने पुकारा—सीता!

सीता आकर दरवाज़े पर खड़ी हुई। सुनील ने कहा—हम न तो हिन्दू-समाज के हैं और न यहाँ शंख ही है। खास कर यह घर नहीं, डेरा है। नहीं तो इस समय शंख बजाने का अवसर था।

स्वामी की इस दिल्लगी से सीता सब समझ गई। उसने भाई की ओर देखा। सुरेश ने गंभीर भाव से कहा—तुम्हें लोग कठोर-हृदय रूखा वैज्ञानिक कहते हैं, यह उनका भ्रम है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि किसके आगे क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिये, इसकी तमीज़ अभी तक तुम्हें न आई।

सुनील ने इधर ध्यान न देकर हँसते-हँसते कहा—समझीं सीता, महादेव की तपस्या आज खंडित हुई। अब जाकर तैयारी करो।

सीता प्रसन्नचित्त होकर वहाँ से चल दी।

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

लंबे बिछोह के बाद अर्धरात्रि को स्वामी और स्त्री का एकान्त मिलन हुआ। इस समय बाहर की कोई बाधा उनके वार्तालाप में विघ्न नहीं डाल सकती।

कोमल स्वर में सीता ने कहा—तुम अगर साथ होते—

वीणा गुंजन के समान वह कंठस्वर सुनीलचंद्र के कानों को बड़ा सुखदायक प्रतीत हुआ। वह पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर खेलने लगे। साथ न जा सकने के कारण उनके मन में जो कसक रह गई थी, वह आज एकदम जाती रही।

सीता ने कहा—तुम से लेकिन अभी तक एक बात मैंने नहीं कही। पत्र में वह बात लिखना उचित न जान पड़ा। तुम अपनी अपराधिनी स्त्री के महा अपराध को क्षमा कर सकोगे क्या?

सुनीलचंद्र के मुख पर एकाएक विस्मय की रेखा फूट उठी। उन्होंने कोमल स्वर में कहा—तुम्हारा अपराध सीता? तुमसे कोई अपराध हो ही नहीं सकता। मैं तुम्हारे अपराधी होने की बात पर विश्वास नहीं कर सकता।

सीता ने कहा—नहीं, मैं तुमसे सच कहती हूँ, मुझसे अपराध बन पड़ा है—पाप हुआ है। जब तक वह बात तुमसे नहीं कह लेती तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। आज पहले वही बात कहूँगी, तुमको सुनना ही पड़ेगा।

स्वामी के कोई आपत्ति न करने पर सीता सारी झिझक दूर करके सीधी होकर बैठ गई। वह जो बात इस समय प्रकट करने को तैयार थी, उस में मिथ्या का रत्ती भर भी लगाव न होगा, निष्कपट भाव से वह सब कह डालेगी, यह उसने निश्चय

कर लिया था। किन्तु कोई भी स्वामी क्या अविचलित रह कर उस को सुन सकता है? वह चाहे जितना शान्त और शिष्ट क्यों न हो, ऐसा करना उसके लिए सर्वथा असंभव ही है। मगर तो भी सीता आज सब वृत्तांत अवश्य कहेगी। अपने मन की—मोह-मूढ़ चित्त की क्षणिक दुर्बलता का इतिहास, परपुरुष के स्पर्श की भीषण ज्वाला, दाहिका शक्ति की तीव्रता ने उसे किस तरह बहुत समय तक जलाया, इसका आद्यान्त विवरण भाषा में प्रकाशित करना सचमुच मनुष्य शक्ति के बाहर की बात है, किन्तु जहाँ तक कहा जा सकता है, वहाँ तक कहने की वह चेष्टा करेगी, कुछ भी नहीं छोड़ेगी। कुछ भी छिपाने का न तो उसे अधिकार है और न इच्छा ही। स्वामी और स्त्री के बीच गोपनीय कुछ भी नहीं रह सकता। मुक्तकण्ठ से सब व्यक्त न करने से उसका नारी-धर्म अखंडित नहीं रहेगा, यही सीता की धारणा और शिक्षा है।

उस तूफ़ानी रात का सब हाल सीता निष्कपट भाव से कह गई; किन्तु उसने रमेंद्रनाथ के ऊपर किसी अपराध का आरोप करने की चेष्टा नहीं की। अबाध साहचर्य—जो कि भारतीय नारी के लिये असामाजिक है, उसी बिना बाधा के मिलने-जुलने ने ही रमेंद्र को लुब्ध और मुग्ध किया था, यह कहना भी वह नहीं भूली। उसने यह भी कहा कि शास्त्रकारों की—मानवमनोवृत्ति की जानकारी में असाधारण व्युत्पत्ति रखनेवाले बहुदर्शी प्राचीन ऋषियों की सतर्कवाणी के प्रति आधुनिक साम्यवादी उछृंखल युग के मनुष्य भले ही उपेक्षा का भाव दिखलावें, किन्तु उस निषेध को न मानने वाले लोगों को जो परिणाम भोगना पड़ता है, उसका उत्कृष्ट उदाहरण उसने स्वयं प्रत्यक्ष किया और भोगा है। अग्नि को ईंधन से दूर न रखने के कारण उसे जो मानसिक यंत्रणा सहनी पड़ी, उसका इतिहास उसके स्मृति-पटल में रक्त के अक्षरों में लिखा हुआ है। उस दुर्दिन में वह हृदय के

गंभीर आवेग के साथ स्वामी को निकट पाने के लिये व्याकुल हो उठी थी। अन्त को किस तरह उसे शांति का—सत्य का मार्ग मिला, यह भी उसने विस्तार के साथ बतलाया।

सब कुछ कह चुकने के बाद सीता आर्त्तकण्ठ से कहने लगी—यह सब सुनकर तुम्हारे मन में शायद मेरे ऊपर घृणा उत्पन्न हो गई होगी। शायद इस जन्म भर के लिये मुझे तुम्हारे हृदय से निर्वासन का दण्ड ही मिलेगा। किन्तु क्या करूँ? तुमसे कोई बात छिपाने की शिक्षा मैंने नहीं पाई। तुम स्वामी, पूज्य और मेरे सर्वस्व हो। तुम से देह या मन का कोई पर्दा नहीं है। मैंने चाहे जितना लिखा-पढ़ा हो, पुरुष और नारी के समानाधिकार की बात मुझे चाहे जितनी मान्य हो, मैं यह कभी नहीं भूल सकती कि तुम्हीं मेरे एक मात्र पूज्य या इष्टदेव हो। हिन्दू स्त्री के इस जन्मजात संस्कार को मैं नहीं छोड़ सकी और न कभी छोड़ ही सकूँगी। बोलो, एक बार कह दो, मेरे अपराध का प्रायश्चित्त हो गया क्या?

सारे हृदय को नयनों से प्रकट करके अधीर आग्रह के साथ सीता स्वामी की ओर ताकने लगी।

सुनीलचंद्र के शान्त नयनों से जैसे सहानुभूति बरस रही थी।

बड़े आदर और गंभीर प्रेम के साथ पत्नी के अश्रुसिक्त मुख को दोनों हाथों से उठाकर कोमल स्वर में उन्होंने कहा—सीता, सीता, मेरी प्यारी सीता!

इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सके।

स्वामी के कंधे पर शिथिल मस्तक रखकर सीता ने शान्ति के साथ आँखें मूँद लीं। स्वामी के हृदय की सारी बातें—सारा भाव जैसे इस मधुर संबोधन में ही निहित था।

दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर परम भक्ति के साथ सीता ने मन-ही-मन कहा—भगवान्, तुम्हारी जय हो! जय हो!

चवालीसवाँ परिच्छेद

रमेंद्र का शरीर और मन, दोनों थके हुए थे। वह कंपनी बाग की एक बेंच पर बैठ गया। छः घंटे के लगभग वह पैदल ही शहर के अनेक स्थानों में घूमता फिरा था। सूर्य-देव उस समय पश्चिम आकाश में नीचे ढल चुके थे। विक्टोरिया पार्क का लम्बा चौड़ा मैदान हरी दूब से भरा हुआ था। अनेकों नर-नारी वहाँ हवा खाने आ गये थे। रमेंद्र की दृष्टि उधर नहीं थी। वह लक्ष्य-हीन दृष्टि से दूब के हरे गलीचे की ओर ताक रहा था। उसका मन उस समय किस कल्पना के राज्य में विचर रहा था, इसकी कोई स्पष्ट धारणा स्वयं उसी को नहीं थी।

सहसा परिचित स्वर में किसी ने उसे पुकारा। वह चौंक उठा। आँख उठाकर देखते ही वह विस्मय-विमूढ़-सा बन गया। वह क्या यह सपना देख रहा है? या सचमुच सुरेशचंद्र उसके सामने खड़ा है? ना, ना, वह तो जाग रहा है। यह स्वप्न नहीं, मिथ्या नहीं! केवल सुरेश ही नहीं है, सीता, सरयू और प्रोफेसर सुरेशचंद्र, जिनसे उसका अभी इसी शहर में परिचय हुआ है, सशरीर मौजूद हैं।

सुनीलचंद्र ने मुसकिराकर कहा—शिशिर बाबू, टहलने आए हैं शायद?

रमेंद्र ने उत्तर देने के पहले एक बार सबकी ओर देखा। सीता के शान्त नेत्रों में जैसे विस्मय की छाया स्पष्ट देख पड़ी।

सरयू ने दोनों कोमल हाथ जोड़कर एक छोटा-सा नमस्कार करके कहा—आप यहाँ?—शिशिर बाबू आपने किसे कहा दादा? यह तो रमेंद्र बाबू हैं!

किसी के कुछ उत्तर देने के पहले ही दृढ़ स्वर में रमेंद्र ने कहा आप सब लोगों से मुझे कुछ कहना है—एक प्रार्थना है; किंतु यहाँ कहना ठीक होगा या नहीं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

रमेंद्र का हाथ पकड़कर सुरेश ने स्निग्ध स्वर में कहा—चलो रमेन, हमारे डेरे पर चलो। आओ सुनील।

सरयू ने कहा—दादा, शायद तुमको बड़ा आश्चर्य होगा कि रमेंद्र बाबू से हम लोगों का परिचय कैसे हुआ? कलकत्ते में पुरी में बहुत दिनों तक हम लोग एक साथ रहे थे। क्यों न भाभी?

अत्यन्त सहज स्वर में सीता ने कहा—यह हमारे बहुत दिनों के परिचित मित्र हैं। यही यूथिका के कवि रमेंद्र बाबू हैं। क्यों दादा से, मुझसे उनका परिचय क्या तुमने सुना नहीं?

सुनील ने कहा—यह वही रमेंद्र हैं? यह तो मैं जानता न था। (गिरींद्र डाक्टर बाबू ने मुझसे कहा था, इनका नाम शिशिर बाबू है।

रास्ते में चलते-चलते सीता ने कहा—रमेंद्र बाबू, हम लोग आपके गाँव में, आपके घर में गये थे। आप नहीं थे। किन्तु आपकी माता जी और स्त्री ने हमारा जो आदर किया, वह कहा नहीं जा सकता।

रमेन्द्र चौंक उठा, उसकी माता और स्त्री के साथ इन लोगों का परिचय हो चुका है। किन्तु—किन्तु—

रमेंद्र फिर सोचने लगा, इस नारी के प्रति उसने जो व्यवहार किया है, उसके बाद भी इस तरह अकुंठित भाव से यह उसके साथ कैसे बातचीत कर रही है?

सरयू ने कहा—सचमुच रमेंद्र बाबू, उस आनन्द की बात हमें हमेशा याद रहेगी। किन्तु आपसे मुझे यह बड़ी शिकायत है कि किसी कुछ कहे-सुने बिना—"जी ख़राब हो रहा है, घर

जाता हूँ" कह कर आप एकदम ग़ायब हो गये ! अन्त को लखनऊ में आकर दर्शन दिये। अच्छे आदमी हैं आप !

पास ही एक फिटन खड़ी थी। दोनों स्त्रियाँ एक तरफ़ बैठ गईं, मर्द तीनों दूसरी ओर बैठे।

गाड़ी चलने लगी। सरयू ने कहा—लेकिन रमेन बाबू, पछाँह की आब हवा रहने पर भी आप के शरीर की कुछ भी उन्नति नहीं हुई ? बहुत दुबले हो गये हैं। आँखों के नीचे स्याही तक दौड़ गई है। आप तब से बराबर यहीं हैं ?

उत्तर में रमेंद्र ने केवल सूखी हँसी हँस दी। उसने गरदन हिलाकर स्वीकार किया कि सरयू का अनुमान ही यथार्थ है !

डेरे पर गाड़ी पहुँचने पर रमेंद्र भी सबके साथ उतरकर कमरे में जाकर बैठा। संकोच और दुर्बलता की जो बाधा उस समय भी रमेंद्र के मन में बाक़ी थी, उसे दृढ़ संकल्प के बल से रमेंद्र ने दूर कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि आज मैं कोई बात नहीं छिपाऊँगा। इससे सरयू, सुनील, सुरेश, सबकी श्रद्धा उस पर से हट जायगी, बन्धु-बिच्छेद भी अवश्यंभावी है, सुनील-चन्द्र का उद्यत क्रोध उस पर बज्राघात करेगा। किन्तु चाहे जो कुछ हो, और कोई उपाय नहीं है। पाप का प्रायश्चित्त उसे करना ही पड़ेगा। आज अपने पाप-कलुषित हृदय की नग्न मूर्ति सबके सामने खोलकर वह महापाप का परिणाम भोगने के लिए सर्वथा प्रस्तुत है। वह अपराधी अपना सिर सबके सामने झुका देगा। ऐसा अवसर उसे फिर कभी नहीं मिलेगा। सत्य का प्रकाश जब हृदय के घने अंधकार में जग उठा है, तब देर करना ठीक नहीं। हृदय ग्लानि, दैन्य और घृणा के योग्य अतीत को वह अब मिथ्या के आवरण से ढक कर रखने में असमर्थ है। उस समय वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि आज मुझे वाणी और हृदय में शक्ति दीजिये। आज मेरी भाषा मुझे धोखा न दे।

रमेंद्र के संकल्प की दृढ़ता उसके नेत्रों में और मुख में झलकने लगी थी। सामने चाय का प्याला खिसकाकर सीता ने कहा—चाय पीजिए रमेन दादा।

"रमेन दादा!" एक बार सिर उठाकर स्थिर दृष्टि से देखा। सीता के मुख से यह संबोधन आज उसने पहले पहल सुना था। किन्तु कैसा मधुर यह संबोधन है!

रमेंद्र ने सुनील बाबू की ओर देखकर कहा—सुनील बाबू, आप विस्मित न होइएगा। सचमुच ही मैं धूर्त और धोखेबाज़ हूँ। केवल यही नहीं, महापापी भी हूँ।—सुरेश, मैं बन्धुत्व, विश्वास और मनुष्यत्व के सम्मान की रक्षा नहीं कर सका। आज तुम्हारे आगे वही सब वृत्तान्त कहूँगा।

रमेंद्र के दृढ़ कंठ-स्वर से विस्मित होकर सबने उसकी ओर देखा।

स्थिर दृष्टि से सबकी ओर देखकर फिर सुनीलचंद्र की ओर लक्ष्य करके रमेंद्र ने कहना शुरू किया—मैं आपके निकट छद्म नाम से परिचित हूँ; परन्तु यह कोई बड़ा अपराध नहीं भी माना जा सकता। किन्तु अब जो कुछ मैं आपको सुनाऊँगा, उसे शायद आप सह नहीं सकेंगे, क्षमा नहीं कर सकेंगे। आप क्या, कोई भी भला आदमी नहीं सह सकता।

सुरेशचंद्र धीरे-धीरे रमेंद्र के पास आकर खड़े हो गये। कोमल भाव से रमेंद्र के कंधे पर हाथ रख कर स्निग्ध स्वर में उन्होंने कहा—रमेंद्र, तुम बहुत विचलित हो रहे हो भाई। इस तरह अपने को छोटा करने का कोई प्रयोजन नहीं है।

रमेंद्र—प्रयोजन नहीं है? तुम क्या कहते हो सुरेश मैं अपने को छोटा कर रहा हूँ? छोटा? मैं कितना बड़ा नीच, अधम और घृणित हूँ, यह तुम अभी नहीं जानते। इसीसे ऐसा कह रहे हो। ना, ना, मुझे कहने दो। मैं अवश्य कहूँगा।—

सुनिए सुनील बाबू, आप ही के निकट मैं विशेष रूप से अपराधी हूँ।

सरयू और सीता उठकर खड़ी हो गईं। रमेंद्र ने विनती के स्वर में कहा—आप न जाइए। सीता की ओर देखकर कहा—खास कर आप अवश्य रहिए। मेरा अपराध तो आपही के निकट अधिक है।

सीता ने स्थिर दृष्टि और प्रशान्त भाव से देखकर कहा—रमेन दादा, मेरे स्वामी से मेरी कोई बात छिपी नहीं है। मगर—मगर—

सुनीलचंद्र कह उठे—रमेंद्र बाबू जब सुनाए बिना नहीं मानेंगे, तब हमें विवश होकर सुनना ही पड़ेगा। परन्तु तुम लोगों के यहाँ रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

सरयू और सीता धीरे-धीरे दूसरे कमरे में चली गईं।

स्त्रियों के वहाँ से चले जाने पर रमेंद्र कुछ देर तक चुप रहा। सीता के व्यवहार ने उसे चक्कर में डाल दिया था। इस ममतामयी महीयसी महिला के प्रति श्रद्धा से उसका हृदय भर गया।

थोड़ी देर बाद अपने स्वर को संयत करके धीरे-धीरे उसने कहा—मेरे हृदय में पाप ने अधिकार जमा लिया था।

इसके बाद धीरे-धीरे एक-एक करके रमेंद्र अपने जीवन के इतिहास के पृष्ठ खोलने लगा। यौवन के प्रथम उन्मेष में सीता के साथ ब्याह करने का अपना आग्रह, अपनी माता की उसमें प्रबल आपत्ति, अन्यत्र अपना विवाह होना, मन की असंयत अवस्था, पुरीधाम में सीता के आगे अपने घृणित भाव को प्रकट करना, सीता का रानी के समान घृणा के साथ प्रत्याख्यान, पाप की यंत्रणा और इस महीयसी महिला की वज्र-कठोर वाणी ने किस तरह अपने मोह को दूर कर दिया, ये सब बातें कहते-कहते रमेंद्र की आँखें चमकने लगीं। अपने पाप की

कहानी, दुर्बल हृदय की कथा उसने ऐसे निर्मल भाव से विश्लेषण करके वर्णन की कि कुछ देर तक किसी के मुख से अनुकूल या प्रतिकूल एक शब्द भी नहीं निकला। सब सन्नाटे में बैठे रहे।

इसके बाद गाढ़े स्वर में रमेंद्र ने कहा—मालूम नहीं, मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त क्या है। क्षमा की प्रत्याशा रखने का भी मुझे अधिकार नहीं है।—सुनील बाबू, आप मुझे दण्ड दीजिए।—सुरेश, तुम भी मुझे उपयुक्त दंड दो। जिस पापी जिह्वा से मैंने नारी के सम्मान पर आक्रमण किया है, गहरी श्रद्धा और विश्वास का अपमान किया है, उसे खींच लो।

सुनीलचंद्र उठकर खड़े हो गये। रमेंद्र ने सिर झुकाकर कहा—प्रचंड घूंसे से मेरा सिर तोड़ डालिए, सुनील बाबू! मैं दण्ड ग्रहण करने के लिये ही आया हूँ।

सुनील बाबू कुछ देर मुँह फेरे खिड़की के पास खड़े रहे। उसके बाद शान्त स्वर में बोले—रमेन बाबू; आप बहुत विचलित हो उठे हैं बैठिए।

रमेंद्र—विचलित? आप अब भी स्थिर भाव से खड़े हैं? सम्मान के साथ मुझ अधम को संबोधन कर रहे हैं? आपकी सहिष्णुता अद्भुत है!

सुनील ने कहा—एक बात मैं कहना चाहता हूँ। स्वामी की सजग ईर्षा, अभिमान, सन्देह और क्रोध भावों से हीन मैं भी नहीं हूँ रमेन बाबू—कोई भी मनुष्य नहीं हो सकता—किन्तु आपके अपराध की अपेक्षा मैं आपके अवस्था-संकट को ही इसके लिए अधिक जिम्मेदार समझता हूँ। आप दंड की बात कहते हैं? जो दंड आपको मिला है, जो प्रायश्चित्त आप कर रहे हैं, उसका पता तो आपका मुख देखने ही से लग जाता है।

सुरेशचंद्र अब तक चुपचाप खड़े थे। अब रमेंद्र का हाथ अपने हाथ में लेकर उन्होंने कोमल स्वर में कहा—क्षमा प्रार्थना

करने की आवश्यकता तो मुझे ही अधिक है रमेन। मेरी नासमझी से ही ये सब बातें हुई हैं। पश्चिम के ढंग को न छोड़ने ही के कारण यह सब अनर्थ हुआ है। मगर इसमें भी सुख की बात यह है कि आज कवि रमेंद्र की ही जय हुई। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि प्रयोजन होने पर तुम्हारे ही समान मैं भी सत्य की निष्ठा का परिचय दे सकूँ।

रमेंद्र का विस्मय सीमा को नाँघ गया। ये लोग कहते क्या हैं? इतना बड़ा अन्याय करने वाले के सम्बन्ध में इन लोगों की यह कैसी अद्भुत धारणा है?—हे अनन्त लीलामय! इस तुम्हारी विचित्र लीला का रहस्य समझने में मैं तो सर्वथा असमर्थ हूँ!

सुनीलचंद्र ने कहा—रमेन बाबू संसार के पिच्छिल पथ में पैर का फिसल जाना स्वाभाविक है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु गिरकर पड़े रहना ही मनुष्यत्व का लक्षण नहीं है। मनुष्य का प्रधान और एकमात्र कर्त्तव्य है सहयात्री को हाथ पकड़कर उठाकर निरापद स्थान में पहुंचा देना। आप मित्र हैं, केवल मित्र ही नहीं, आप मेरे भाई हैं। आप से देश को, दस मनुष्यों को बहुत कुछ आशा है। खरे मनुष्य—जिनमें सच्चा मनुष्यत्व हो—संसार में विरले ही देख पड़ते हैं। मैं मुक्तकंठ से स्वीकार करूँगा कि आप वैसे ही खरे आदमी हैं।

रमेंद्र से अब और सहा नहीं गया। दोनों हाथों से माथा पकड़कर वह उठ खड़ा हुआ। आर्त्तकण्ठ और अस्पष्ट स्वर में उसने कुछ कहा। उसके बाद पागलों की तरह लड़खड़ाता हुआ वहाँ से निकल कर चल दिया। किसी का भी निषेध न सुनकर वह सीधा डाक्टर के घर चल दिया।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

"शिशिर बाबू, आपको कुछ जरूरी काम है ?"

रमेन्द्र पलँग पर पड़ा हुआ कुछ सोच रहा था। डाक्टर बाबू का प्रश्न सुनकर वह चटपट उठ बैठा और बोला—नहीं तो काम मुझे क्या होगा ?

"तो चलिए, जरा स्टेशन हो आवें। मेरे कुछ आत्मीय आने-वाले हैं।" यह डाक्टर ने कहा।

रमेंद्र उस समय सन्नाटे में, एकान्त में रहना चाहता था; किन्तु डाक्टर के अनुरोध को न टाल सका।

गाड़ी पर बैठकर रमेंद्र ने कहा—कल लेकिन मुझे आपको आज्ञा देनी ही पड़ेगी डाक्टर बाबू। घर जाने के लिए जी बहुत उद्विग्न हो रहा है।

गम्भीर भाव से डाक्टर ने कहा—निश्चय ! कल मैं आपको नहीं रोकूँगा। मेरी स्त्री का व्रत आज पूरा हो जायगा। शाम को इष्टमित्रों को दावत दी जायगी। कल से आपको छुट्टी है।

ट्रेन के आने में अभी देर थी। स्टेशन पहुँचकर दोनों जने प्लेटफार्म की एक बेंच पर बैठ गए। बहुत से देशी और गोरे साहब ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे। रमेंद्र शून्य दृष्टि से उधर देख रहा था। उसका मन उस समय कल्पना के राज्य में विचरण कर रहा था। वह सोच रहा था, अब की घर जाकर वह माँ की गोद में आश्रय लेगा—नवीन जीवन से कर्मक्षेत्र में प्रवेश करेगा। यह सच है कि बचपन, किशोरावस्था या प्रथम-यौवन के निष्कलुष मन और चरित्र को फिर नहीं पा सकता, तथापि अब वह सच्चे मनुष्य की तरह रहने की चेष्टा करेगा।

पत्नी ? पत्नी का ख्याल आते ही उसका मन गहरी निराशा में डूब गया। स्त्री की ओर आगे बढ़ना ही उसके लिए कठिन काम है। सामाजिक दृष्टि या पारलौकिक दृष्टि से इस पवित्र दाम्पत्य बन्धन का महत्व कैसा है, इस बात को अब अवश्य वह समझ पाया है; किन्तु खेद और परिताप की बात यह है कि मन इस समय भी उधर अनुकूल पवन के सहारे आगे बढ़ना नहीं चाहता ! जिसके साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध है, वह उसके निकट कितनी अपरिचित है, उसके हृदय से कितनी दूर है !

अच्छा, इतने दिनों में वह कितनी बड़ी हुई होगी ! स्वामी की उपेक्षा देखकर उसका चित्त क्या स्वामी के प्रति विमुख न हो गया होगा ? ऐसा होना ही तो स्वाभाविक है। केवल सामाजिक बन्धन ही क्या मनुष्य के मन को बाँधकर रख सकता है ? मन तो सब बन्धनों को तोड़-फोड़कर बढ़िया के प्रवाह की तरह दौड़ता है। इसका बहुत बढ़िया दृष्टांत स्वयं उसी के मन की गति है। अतएव वह यह भी तो प्रत्याशा नहीं कर सकता कि हिन्दू-घर की कन्या होने के कारण, स्वामी की अकारण दारुण उपेक्षा सहने पर भी, उसकी पत्नी अपने मन को उसी में लगाए हुए होगी।

रमेंद्र का मन इस चिन्ता से और भी मुर्दा हो गया।

यदि उसकी पत्नी का मन इतने दिनों में किसी और के ऊपर आसक्त हो गया हो तो क्या उसे अपराधी कहा जा सकता है ? प्रथम उद्दाम यौवन की उमंग ठहरी; अल्हड़ अवस्था है,—ऐसी दशा में अवलम्बनहीन चित्त अवश्य ही किसी आश्रय को खोजता है। किन्तु वह आश्रय तो उस नारी ने पाया नहीं ! बहुत दिन तक प्रतीक्षा करके, हताश होकर यदि—

रमेंद्र से आगे सोचा नहीं गया। उसका हृदय वेदना से व्यथित हो उठा। अनेक प्रकार की उद्भट कल्पनाओं के प्रभाव से उसका हृदय जैसे क्षत-विक्षत होने लगा। जन्मगत, समाजगत

चिरन्तन संस्कार जिसका दावा कर रहा था, उसके प्रभाव से बचने की शक्ति रमेंद्र में नहीं थी। किन्तु यह भी वह अस्वीकार नहीं कर सका कि उसका वह दावा असंगत है। वह पुरुष है, स्वामी होकर भी यदि एक दिन वह अन्य नारी के खयाल को अपने मन से हटा नहीं सका—उसी निषिद्ध विचार के प्रवाह में बहकर अपने को और अपने साथ और एक अबला को ले डूबने चला था, तो एक नारी के लिए—पति के द्वारा अनादृत स्त्री के लिए क्या ऐसा होना असम्भव है ? और ऐसी दशा में अनर्थ हो गया हो तो उसमें अपराध स्त्री का नहीं, उसी का है। जो नारी के लिए अपराध है, वह पुरुप के लिए भी वैसा ही अपराध है, यह किसी दिन उसने अस्वीकार नहीं किया। इस समय भी नहीं करेगा। हाँ, यदि उसकी पत्नी के मन में ऐसी कोई दुर्बलता आ गई हो, तो उसके लिए न्याय से, धर्म से, सब तरह वही जिम्मेदार है। इसके लिए रमेंद्र को कठोर-से-कठोर प्रायश्चित्त करना होगा। और हिन्दू की लड़की, अच्छे उच्चकुल की बहू होने के कारण वह यदि स्वामी के ध्यान में ही अपना जीवन बिता रही हो—क्योंकि उसे विश्वास है कि हिन्दुओं के अधिकांश घरों में ऐसा ही हुआ करता है—तो भी उस पुण्य की प्रतिमा देवी के सामने किस साहस से, कौन मुँह लेकर वह उपस्थित होगा ?

डाक्टर ने कहा—शिशिर बाबू, उठिए, ट्रेन आ गई।

डाक्टर के पुकारने से रमेंद्र की चिन्ता का सूत्र टूट गया। उसने देखा, ट्रेन धीरे-धीरे स्टेशन के प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही है। गिरींद्रनाथ के पीछे-पीछे रमेंद्र भी चला।

यात्रियों की पुकार, कुलियों का कोलाहल, ट्रेन की खिड़कियों के खुलने और बन्द होने का शब्द गूँज उठा। लोगों की भीड़ ठेलकर डाक्टर गिरीन्द्रनाथ के साथ-साथ रमेंद्र भी एक सेकिंड क्लास के कमरे के सामने उपस्थित हुआ।

भीतर से किसी ने कहा—आओ गिरीन, अच्छे तो हो भैया ?

डाक्टर ने उस आगन्तुक प्रौढ़ पुरुष के चरणों पर सिर रख दिया। प्रौढ़ उसके पास खड़े हुए रमेंद्र की ओर देखकर जैसे सन्नाटे में आगए। उन्हें शायद रमेंद्र को वहाँ देख पाने का ध्यान भी न था। सहसा उनके मुख में आनन्द की दीप्ति फूट उठी। वह कह उठे—भैया, तुम भी यहीं हो ? बहुत अच्छा हुआ। बड़ी खुशी की बात है !

रमेन्द्र ने भी विस्मय के साथ उन प्रौढ़ की ओर देखा। अकस्मात् उसके मन में भी पूर्व परिचय की स्मृति जाग उठी। उसने भी झुककर उन्हें प्रणाम किया। यह और कोई नहीं रमेंद्र के ससुर—उसकी स्त्री के पिता थे ! किन्तु—

सहसा रमेंद्र की दृष्टि उस कमरे से पहले निकलनेवाली स्त्री के ऊपर पड़ी। यह कैसा विस्मय पर विस्मय है ! यह क्या वह सपना देख रहा है ? उसकी चिराराध्या, गर्भधारिणी जननी भी यहाँ आई हैं ? उनके पीछे वह कौन है ? माधव दादा की स्त्री राधारानी ही तो है ? यह सब क्या इन्द्रजाल है ? या वह जागते में सपना देख रहा है ?

रमेंद्र ने सामने गाड़ी का हेंडिल पकड़कर अपने को गिरने से बचाया। उसके बाद ही दौड़कर उसने अपने को माता के चरणों में डाल दिया।

माता ने कहा—बेटा ! बेटा ! तू यहीं है ?

माता और पुत्र के नेत्रों से सावन की वर्षा के समान आँसू बहने लगे। रमेंद्र ने चटपट अपने को सँभालकर रूमाल से आँसू पोंछ डाले। चारों ओर भीड़ थी। देखकर लोग क्या समझेंगे ?

डाक्टर उस समय सामान उतरवाने में लगे हुए थे। काम समाप्त करके वह भी वहीं आगए।

राधागोविन्द बाबू (रमेंद्र के ससुर) ने कहा—गिरीन, रमेन तुम्हारे घर में कब से हैं ?

विस्मय का भाव करके डाक्टर ने कहा—रमेन कौन ? शिशिर बाबू क्या हमारे रमेंद्र बाबू हैं ?

उनकी दृष्टि कौतुक हास्य से उज्ज्वल हो उठी।

रमेंद्र की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। डाक्टर बाबू के साथ उसके ससुर का क्या सम्बन्ध है और उसकी माता ही यहाँ क्यों आई हैं ?

डाक्टर ने कहा—शिशिर बाबू, तो क्या आपका असल नाम रमेन्द्र है ?

ससुर ने विस्मय के साथ कहा—मामला क्या है गिरीन ? तुम दोनों क्या परस्पर परिचित नहीं हो ? रमेन, यह तुम्हारे साढ़ू गिरींद्रनाथ वसु हैं।

साढ़ू ! तो क्या वह अब तक अपनी साली के घर में ही मेहमान था ! तो क्या, तो क्या उस दिन बाग़ में—

इतने में ससुर ने रमेन से कहा—भैया, यह तुम्हारी सास हैं। इन्हें भी प्रणाम करो।

रमेंद्र के लिए दिमाग़ सही रखना कठिन हो गया। इतनी विस्मयजनक घटनाओं के आकस्मिक आविर्भाव से उसका चित्त विस्मय-विमूढ़ हो रहा था।

सबके पीछे आधा घूँघट काढ़े हुए जो महिला थीं, उन्हें रमेंद्र ने अभी तक देखा न था। उसने लड़खड़ाते हुए आगे बढ़कर सास के भी पैर छुए। उन्होंने चुपचाप रमेंद्र के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

उनके सुन्दर सौम्य-गंभीर मुख की ओर देखते ही रमेंद्र का मन विस्मय, उल्लास और आतंक से विह्वल हो उठा। ठीक ऐसे ही दो नेत्र, यही वर्ण, यही मुख-श्री उस दिन उसने प्रातःकाल

के उज्ज्वल प्रकाश में और एक स्त्री के शरीर में देखी थी। कैसा अपूर्व सादृश्य है! केवल अन्तर यही है कि एक नवोदित अरुण है और दूसरी तीसरे पहर का सूर्य। विवाह के समय रमेंद्र ने अपनी सास को देखा अवश्य था; किन्तु मानसिक चंचलता और मन की खीझ के कारण उसने अच्छी तरह स्त्री या उनकी माता की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था। इसके सिवा इतने लंबे समय तक फिर दुबारा न देख पाने के कारण वह उनकी आकृति को एकदम जैसे भूल ही गया था। बाग़ में उस दिन जिनको उसने अचानक देख पाया था, वह अगर डाक्टर बाबू की पत्नी ही हों? छी-छी! कैसी लज्जा और घृणा की बात है!

कुली लोग सामान लेकर आगे बढ़े। माता ने चलते-चलते कहा—रमू, मेरी बहू तो अच्छी तरह है न? मैं अगर जानती कि तू यहाँ है—

रमेंद्र चौंक उठा। गिरीन्द्रनाथ ने बाधा देकर कहा—मा, रमेंद्र को यह बिलकुल मालूम ही न था कि हम लोगों के साथ उसका क्या संबंध है। यह तो उसे अभी मालूम हुआ है। यह अपराध मेरा ही है। क्षमा कीजिए।

विधवा सहसा कुछ समझ न सकी कि यह पहेली क्या है। लेकिन बुद्धिमती होने के कारण इतना अवश्य उनकी समझ में आ गया कि इसके भीतर कुछ रहस्य अवश्य है। रमेंद्र के ससुर और सास को भी कुछ कम विस्मय नहीं था। किन्तु स्टेशन पर या रास्ते में इस विषय की अधिक चर्चा करना न तो शोभन ही था और न संगत ही। सब अपनी-अपनी धारणा लेकर गाड़ी पर सवार हुए।

गिरीन्द्र ने कहा—भाई रमेन, मैं नाते में और अवस्था में भी तुमसे बड़ा हूँ। हमारी इस लुकाचोरी के लिए नाराज़ न होना। घर चलने पर सब तुम्हारी समझ में आ जायगा।

छियालीसवाँ परिच्छेद

आज डाक्टर बाबू के घर बड़ा भारी उत्सव था। खूब रोशनी की गई थी। खाने-पीने और मनोविनोद का भी यथेष्ट प्रबंध था। इतने थोड़े समय में इतना अधिक प्रबन्ध करने के लिए रमेंद्र मन-ही-मन डाक्टर बाबू की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका।

सन्ध्या होते ही निमंत्रित नर-नारी आकर उपस्थित हो गये। मेहमानों की संख्या अधिक नहीं थी सुनीलचंद्र, सुरेश और सीता, सरयू भी आईं घनिष्ठ बन्धु-बान्धवों के सिवा बाहरी आदमी बहुत कम थे। डाक्टर सबकी अभ्यर्थना कर रहे थे।

यह किसी को मालूम न था कि रमेंद्र गिरीन बाबू के साढ़ू हैं। डाक्टर बाबू हँस-हँसकर सबको यह शुभ समाचार दे रहे थे और कह रहे थे कि उन्हीं के अभिनन्दन के लिए आज यह उत्सव किया गया है। विस्मय का पहला धक्का सँभल जाने पर सुनीलचन्द्र ने कहा—तो फिर तुमने शिशिर बाबू के नाम से उनका परिचय क्यों दिया था?

कौतुक की हँसी के साथ डाक्टर ने कहा - बात यह थी कि भाई साहब अज्ञातवास में थे। कैसे नाम ठीक बताता?

रमेंद्र का मुख लज्जा से लाल हो उठा। उसने कहा—अच्छा आपने मुझे पहचाना किस तरह? पहले तो कभी आपने मुझे देखा नहीं था। मैं तो आपका नाम भी नहीं जानता था—याद न था।

डाक्टर ने कहा—तुम न जानते होगे, पर मैंने यद्यपि तुम्हें आँखों से देखा न था, तथापि नाम अवश्य जानता था। लेकिन सच तो यह है कि मैं तुमको पहचान नहीं सका। तुम्हारी साली

साहबा को ही पहले संदेह हुआ था। उसके बाद—तुम जानते ही हो, "स्त्री बुद्धिः प्रलयंकरी"। वे जिस बात को जानना चाहती हैं, उसे जानकर ही मानती हैं। बस, तुम बेचारे उनके फंदे में फँस गये—गिरफ्त में आ गये। उसी का यह शुभ फल है कि कवि जी, तुम्हारी बदौलत और हम चार जनों का मुँह मीठा होगा। यह तो तुम इतने दिनों में अच्छी तरह जान ही गये हो कि मैं कैसा पेटू और चटोरा हूँ।

कुछ ही दूर पर ससुर के बैठे होने से गिरीन्द्र बाबू ने बड़ी मुश्किल से अपने अट्टहास को रोका और पेट पर हाथ फेरने लगे।

भीतर भी हर्ष और विस्मय लहरा रहा था। सीता और सरयू से सुरमा (डाक्टर की स्त्री) का साक्षात् परिचय पहले ही से था। इलाहाबाद में एक पास रहते समय इन दोनों परिवारों में मेल हो गया था। किन्तु संध्या सुरमा की ही छोटी बहन है, यह इन दोनों को नहीं मालूम था। रमेंद्र की माता यहाँ सीता और सरयू को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं।

बड़ी-बूढ़ी औरतें जब इधर-उधर हट गईं, तब सरयू ने संध्या से कहा—भाभी—हाँ, भाभी कहने का ही अधिकार आज से आप मुझे दें!—इतनी जल्दी आप से यहाँ भेंट होने की आशा मुझे नहीं थी। आज बड़े आनन्द का दिन है। रमेन दादा—वीर रमेन दादा की सहधर्मिणी की जय हो!

सरयू के इस आकस्मिक उच्छ्वास या उमंग के भीतर कौन शक्ति काम कर रही थी, यह संध्या की समझ में नहीं आया। इसी से वह विस्मय के साथ सरयू के मुख की ओर ताकने लगी।

सीता जब सुरमा के साथ बातचीत समाप्त कर चुकी, तब वह धीरे-धीरे संध्या की ओर बढ़ी। उसके बाद बड़े आदर से संध्या का हाथ अपने हाथ में लेकर आनन्द-मिश्रित स्वर में उसने

कहा—आपको मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। आप नहीं जानतीं, एक दिन आपने मेरे जीवन पर कितना बड़ा प्रभाव डाला था। उस दिन शाम को तुलसी चौरे के सामने आपके मुख की जो छवि मैंने देखी थी, वह मेरे हृदय में आज भी वैसी ही अंकित है। आपका वह निष्ठापूर्ण भाव मैं अपने में लाने की चेष्टा करती हूँ। भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है कि मैं आपके समान बन सकूँ।

इस कथन का भी कुछ अर्थ संध्या की समझ में नहीं आया। उसके लिए सब जैसे पहेली था—यहाँ जब से वह आई है, तभी से जैसे एक गोरखधंधे में पड़ी हुई है।

"किन्तु यह तो बड़ा मजा है! आप स्वामी की खोज में यहाँ आवेंगी, यह तो उस दिन आपने हम से नहीं कहा था।"—यह हँसते-हँसते सीता ने फिर कहा।

काम खतम करके सुरमा उधर से आ रही थीं। यह सुनकर उन्होंने कहा—बहन, उससे कुछ कहना ठीक नहीं। वह तो जानती ही न थी कि रमेन बाबू यहाँ हैं। यह एक मिलनान्त पञ्चाङ्क नाटक है। घटना के बाद घटना होकर अन्त को अकस्मात् अन्तिम दृश्य में नाट्यकार जैसे इस अंक का अभिनय दिखला रहा है।

इसी प्रकार अनेक प्रकार की हँसी-दिल्लगियों से स्त्रियाँ आनन्द मना रही थीं।

खाने-पीने के बाद आलाप-आप्यायन की रीति समाप्त होने पर एक-एक करके सब मेहमान बिदा होने लगे। प्रगाढ़ आलिंगन के बाद सुरेशचंद्र ने गिरीन्द्रनाथ से जाने की आज्ञा माँगी। इस समय सुनीलचंद्र ने कहा—रमेन बाबू, एक सुसमाचार सुनाए जाऊँ। आपके मित्र सुरेश बाबू इतने दिन बाद चिरकुमार-सभा की मेंबरी से इस्तीफ़ा दे रहे हैं। मैं पहले ही से आप को निमन्त्रण

दिये रखता हूँ।—गिरीन, तुमसे क्या कहूँ भाई, सरयू का ब्याह अगहन के पहले सप्ताह में ही होगा। तुम सबको चलना पड़ेगा।

इस शुभ संवाद से रमेंद्र खुश ही हुआ। आज चारों ओर से आनन्द के ही समाचार मिल रहे हैं। किन्तु—किन्तु तो भी उसका मन क्यों बीच-बीच में ऐसा उदास हो जाता है? उसके पाप का प्रायश्चित क्या अब भी बाक़ी है? हाँ बाक़ी क्यों नहीं है? सबसे बढ़कर प्रायश्चित्त तो बाक़ी ही है! उसके बाद? उसके बाद?

नौकर ने आकर ख़बर दी कि भीतर उसका बुलौवा है। खबर सुनते ही रमेन्द्र का हृदय अनेक भावों की हलचल से हिल उठा। काँपते—धड़कते हुए हृदय से वह धीरे-धीरे भीतर गया। एक कमरे के भीतर दो स्त्रियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। रमेंद्र ने पहचाना, आगेवाली उसकी सास हैं। किन्तु दूसरी? ज़रा-सा आँचल सिर को ढकने के लिये आगे खिसकाए, आडम्बर के बाहुल्य से वर्जित रानी की तरह जो तरुणी खड़ी थी, उसे उसने पहले कभी देखा है या नहीं, यह सहसा वह याद न कर सका। मगर हाँ, वह स्त्री नहीं, जिसे उसने उस दिन बाग़ में सवेरे डाक्टर के यहाँ देखा था। यह जानकर उसने स्वस्ति की साँस छोड़ी। किन्तु इनके भी मुख पर सास के मुख की छाप देख पड़ती है। तो क्या यही डाक्टर बाबू की स्त्री हैं? आज के उत्सव की अधिष्ठात्री देवी, उसकी पत्नी की बड़ी बहन शायद यही हैं।

संध्या की माता ने स्निग्ध स्वर में कहा—भैया, ब्याह के बाद तो कभी भेंट हुई नहीं, इससे शायद तुम न पहचान सकोगे। यह मेरी बड़ी लड़की सुरमा है।

युवती के मुख पर हलकी मुसकान की छाप देख पड़ी। रमेंद्र ने सिर झुकाकर आँखें नीची किये ही सुरमा को प्रणाम किया।

सुरमा ने कहा—बस-बस हो चुका। आप बैठिए रमेंद्र बाबू।

सुरमा ने एक कुर्सी खींचकर बढ़ा दी।

रमेंद्र संकोच से इधर-उधर करने लगा। रिश्ते में जो पूजनीय, अपने से बड़े हैं, उनके खड़े रहते वह कैसे बैठे?

उसके मन का भाव जानकर सास ने कहा—तुम बैठो भैया, इसमें कुछ दोष नहीं है।—बेटी सुरमा, तू तबतक रमेंद्र के साथ वार्तालाप कर। मैं आती हूँ।

यह कहकर सुरमा की मा चली गई। सुरमा ने पास के टेबुल के सामने खड़े होकर कहा—बैठिए रमेन बाबू।

आत्मीया पत्नी की बहन होने पर भी प्रथम परिचय होने के कारण सुरमा के सामने रमेन लज्जा और कुंठा से संकुचित हो गया।

सुरमा ने कहा—अपने परमस्नेह आदर के पात्र होने पर भी मैं अपका आदर, आराम पहुँचाने का यत्न नहीं कर सकी। मेरा यह अवश्य अपराध है रमेन बाबू।

अब की गला साफ करके रमेंद्र ने कहा—आप यह क्या कहती हैं दीदी। यहाँ मैंने जैसा आदर-यत्न पाया है, उससे अधिक तो माता में भी ममता नहीं हो सकती।

सुरमा—किन्तु आप मेरे भाई हैं। आपके सामने तो मुझे आना चाहिए था। मैं क्यों नहीं आई, इसी की कैफियत मैं इस समय देना चाहती हूँ। इसका एक कारण था। इसी से उस समय मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकी। इसके सिवा आप से मेरी एक प्रार्थना है।

रमेंद्र ने विस्मय के साथ कहा—प्रार्थना? मुझसे?

सुरमा—हाँ, आपही से—आप विस्मित हो रहे हैं रमेन बाबू? विस्मित होने की बात ही है। मर्द ही स्त्री जाति से प्रार्थना करें, यही सनातन व्यवस्था है। किन्तु इस मामले में वह व्यवस्था उलटनी ही पड़ेगी। मैं आपके निकट अपराधी हूँ।

सुरमा के सुन्दर अधर में हास्य का सुधा-समुद्र जैसे लहरा

उठा, सुन्दरी ने स्निग्ध स्वर में कहा—आपका अपराध तो है ही। पर जिसके आप अपराधी है, उसी के निकट क्षमा प्रार्थना ठीक होगी। किन्तु मुझसे भी कुछ आपका अपराध बन पड़ा है। कौतूहल के कारण पहले उसका आरम्भ हुआ और बाद को कर्त्तव्य और स्नेह की प्रेरणा से अन्त।

"आप क्या कहती हैं दीदी ? मेरे निकट आपका अपराध ? बल्कि मैं ही अनेक प्रकार से आप लोगों के निकट अपराधी—महा अपराधी हूँ !'—यह रमेंद्र ने कहा।

रमेंद्र ने विस्मय के साथ एक बार इस परिहास-रसिक, किंतु अपने गौरव को न भूली हुई युवती की ओर देखा। उज्ज्वल लैंप की रोशनी की ओर ताकते हुए सुरमा ने कहा—मैंने कवि की अनजान में उनकी डायरी पढ़ ली थी। इसी से आज कवि के निकट क्षमा चाहती हूँ।

पहले तो रमेंद्र चौंक पड़ा। कई सेकिंड तक उसके मुँह से बोल ही न निकला। उस समय सब उसकी समझ में आ गया कि किस सूत्र को पकड़कर घटना कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। अब कोई गुत्थी नहीं रह गई—सब सहज, सरल हो गया।

कोमल स्वर में रमेंद्र ने कहा—आपने अच्छा ही किया। इसके लिये कुण्ठित होने का कोई कारण नहीं है। डायरी तो तुच्छ वस्तु है, मैं तो मुक्त-कंठ से अपनी त्रुटि, नीचता और दैन्य तथा सब प्रकार की हीनता प्रकट करने को तैयार हूँ। इससे भी मेरे पाप का प्रायश्चित शायद न होगा।

सुरमा के गंभीर, प्रसन्न मुख पर जैसे एक प्रकाश की लहर दौड़ गई।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

अन्त को सुरमा ने शांत स्निग्ध स्वर में कहा—रमेन बाबू, गले में रत्नों का हार पड़ा रहने पर भी कुछ लोग अनिश्चित के

राज्य में रत्न की खोज करने को दौड़ते हैं। आप कवि हैं, समझ सकते हैं, ऐसा करनेवाला कैसा भाग्यहीन होगा!

यह बात रमेंद्र के चित्त में गड़ गई। यही हिंदू नारी हैं! इन्हें कौन अशिक्षित या कुसंस्कारों से घिरी हुई कह सकता है? सत्य ही वह अभागा महामूर्ख है!

सुरमा ने इधर की लिखी हुई रमेंद्र की डायरी अवश्य पढ़ी थी—उसके भग्न हृदय की, विक्षुब्ध चित्त की निराशापूर्ण मानसिक अवस्था का वर्णन पढ़ा था। किन्तु इससे अधिक उन्हें कुछ मालूम न था।

रमेंद्र के मुख पर मानसिक चंचलता और उद्वेग की छाया शायद गहरी पड़ गई थी। स्नेहशील नारी की दृष्टि से वह छिपी नहीं रही।

सुरमा ने कहा—रात अधिक हो गई है। चलिए विश्राम कीजिए।

रमेंद्र काँप उठा—किन्तु प्रतिवाद नहीं कर सका। उनके पीछे-पीछे चल दिया।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

खुली खिड़की के किनारे सन्ध्या खड़ी थी। हेमन्त की हवा झर्राटे के साथ कमरे के भीतर प्रवेश करके उसके केशों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। आकाश में चाँदनी लहरा रही थी, बाग़ में पेड़ों के पत्ते हिल रहे थे। सन्ध्या मुग्ध दृष्टि से प्रकृति का यह विचित्र सौंदर्य निहार रही थी।

सुरमा ने बहन के सोने के कमरे को अपनी इच्छा के अनुसार ख़ूब सजाया था। टेबुल के ऊपर पीतल के शमादान में काँच के ग्लोब के भीतर रंगीन रोशनी हो रही थी। उसके आसपास ताज़े फूलों के दो गुलदस्ते रक्खे थे। बहन को मन के माफ़िक़ सजाकर—उसका सँवार-सिंगार करके अनेक गहने पहनाए थे। संध्या ने एक बार भी इसका प्रतिवाद नहीं किया—एक शब्द भी नहीं कहा। यद्यपि उसका हृदय पूर्ण रूप से विद्रोह कर रहा था, पर उसके चेहरे पर या व्यवहार में उस विद्रोह का कोई लक्षण नहीं देख पड़ा। उसके जीवन की यही शिक्षा है कि जो उसके हृदय की वस्तु है, उसे वह बाहर के किसी भी मनुष्य के आगे प्रकट नहीं होने देगी। स्नेह की अत्यन्त अधिकता के कारण बड़ी बहन जो फ़िकर रही है, सास और मा भी जिसका साथ दे रही हैं, उसका प्रतिवाद करना उसने नहीं चाहा, किया भी नहीं। किन्तु यह सब जैसे एक बहुत बड़ा विद्रूप या उपहास है, यह अ भव उसका सम्पूर्ण हृदय कर रहा था।

वह जैसे नई ब्याह कर आई बहू है—आज जैसे उसकी प्रथम मिलन-रात्रि है । वास्तव में यह कुछ झूठ नहीं है। विवा-

हित जीवन के लम्बे चार वर्ष उसके यों ही चले गये। वे दाम्पत्य जीवन का कोई भी चिन्ह नहीं छोड़ गये। विवाह? वह तो जैसे एक सपने की कहानी है। एक दिन नींद से जागकर उसने जैसे एक आनन्द का स्वप्न देखा था इसमें सन्देह नहीं कि उस सुन्दर रात्रि की प्रत्येक घटना सदा के लिये उसके हृदय में अंकित है। किन्तु उसके बाद? केवल लगातार क्लान्ति से भरा जीवन बीता। भीतर की दीनता को बाहरी प्रफुल्लता के आवरण से ढककर इतने दिनों तक वह लोगों की आँखों को धोखा देती आ रही है।

उसकी एकनिष्ठ स्थिर, अचंचल प्रकृति ने उसकी शिक्षा और वंश-गौरव ने, हृदय में उस रात को स्थापित की गई मूर्ति को श्रद्धा करना सिखाया था। देवता के पवित्र पीठ-स्थान के हिसाब से उस आसन को, उस मूर्ति को वह अब तक पूजा का अर्घ्य अर्पण करती आ रही है। उसके सामने अपनी माता के पवित्र जीवन का आदर्श है। वह पवित्र आदर्श उसके मार्जित स्वच्छ हृदय में, दर्पण में पड़ने वाले प्रतिबिंब के समान, हर घड़ी उपस्थित रहा। उसका संस्कार, आवेष्टन और भारतभूमि की चिरागत पुण्य-गाथा उसके केवल मन में ही नहीं, रक्त की हर एक बूँद में इस प्रकार मुद्रित हो गई है कि किसी दूसरी कल्पना का अवसर या इच्छा ही उसे नहीं थी।

किन्तु तो भी क्या स्वामी के व्यवहार को समर्थन योग्य समझकर वह अपने मन को प्रबोध दे सकी थी? जिन बाधा-विघ्नों ने दाम्पत्य जीवन के राज्य में मिलन-गान के सुर की झनकार को दूर ठेल रक्खा था, उनकी यथार्थता के सम्बन्ध में उसके हृदय में क्या कभी भूलकर भी सन्देह की छाया नहीं पड़ी। मन को युक्ति के द्वारा प्रबोध देने की चेष्टा वह सदा करती आई है; किन्तु मन क्या कभी निःसन्देह होकर उसे स्वीकार करता था?

आज इस चाँदनी रात में स्वामी के साथ शीघ्र ही होने वाले

संभाषण के पहले ये ही सब विचार संध्या के चित्त को विक्षुब्ध विचलित बना रहे थे। कमरे के भीतर आकर ही उसने बहन के पहनाए हुए सब आभूषण खोलकर उतार कर रख दिए। बहुमूल्य सारी के बदले उसने एक साधारण देसी धोती धारण करली। छिः वेषभूषा का आडम्बर दिखाकर वह किसका मनोरंजन करने जा रही है? रमणी का शृंगार तभी सार्थक है, जब स्वामी पत्नी का सुन्दर वेप देखने के लिए लालायित हो।

अपने मन को अब तक उसने चाहे जितना झूठे आश्वासनों से बहलाने का प्रयत्न किया हो, पर यह बात बिलकुल सत्य है कि स्वामी उससे ब्याह करके सुखी नहीं हो सके। स्वामी को उसके सम्बन्ध में कुछ भी स्मृति नहीं है। किसी पुरुष के लिए यह भी क्या संभव है कि वह अपनी स्त्री को न पहचाने? यदि स्वामी के मन में उसके सम्बन्ध में तनिक भी आकर्षण होता तो वह चाहे जितनी कठोर साधना में लगे होते, स्त्री को बिलकुल न पहचानना सर्वथा असंभव था। ब्याही हुई पत्नी के प्रति स्वामी के कर्त्तव्य को वह अवश्य ही जानते हैं। वह मूर्ख हृदयहीन नहीं, सुपण्डित और सहृदय कवि हैं। उनके लिए जानना तो और भी सहज है। अब यदि प्यार ही नहीं कर सकते थे, तो फिर ब्याह करना ही उचित न था।

इसी तरह के अनेक प्रश्न संध्या के चित्त को व्याकुल और विक्षुब्ध करने लगे। स्निग्ध वायु के झोंकों के साथ बाग़ के मनोरम सौन्दर्य ने उसके उत्तेजित हृदय की हलचल को बहुत कुछ शान्त कर दिया। पास के दूसरे कमरे में उसकी माता उसकी सास के साथ कुछ बातचीत कर रही थीं। उनकी आवाज उसके कानों में पड़ी।

मा की आवाज सुनते ही उसकी चिन्ता की धारा दूसरी ओर फिर गई। अपने मायके के कितने ही दृश्य उसे याद आने लगे। माता की अतुलनीय स्वामिभक्ति, अथाह स्नेह और प्रेम की अभिव्यक्ति को बचपन से ही वह कितने ही प्रकार से देखती आ

रही है। देवता के समान पुण्यात्मा पिता और देवी के समान ममतामयी पुण्यमयी माता के दिये उपदेश, जीवन के दृष्टांत, उसके कानों में गूँजते और आँखों के आगे नाचने लगे।

वैसे ही मन ही मन वह लज्जा से संकुचित हो गई। मनुष्य का विचार करने का सचमुच ही उसे क्या अधिकार है? अपने स्वामी के बारे में कोई भी धारणा बनाने का संयोग या सुयोग उसने नहीं पाया। अधिकार भी इसी कारण शायद उसे नहीं हुआ। स्वामी को वह कितना जानती है? उसने स्वामी को कितना देखा-सुना है? स्वामी के हृदय के साथ परिचित होने के पहले किसी तरह की प्रतिकूल धारणा कर लेना उसके लिए असंगत है। वह केवल स्वामी को प्यार करने की चेष्टा अब तक करती आई है। प्यार सचमुच किया है या नहीं, इसकी परीक्षा का अवसर अभी तक नहीं आया। उनकी अब तक उसने पूजा की है; क्योंकि उसका विश्वास है कि यह उसका धर्म है। तात्पर्य यह कि स्वामी को विचार करने का अधिकार उसे अभी नहीं प्राप्त हुआ। अवश्य ही विचार करने के अपने अधिकार को वह अस्वीकार नहीं करती; किन्तु स्वामी को जानने के पहले उनके सम्बन्ध में कोई धारणा कर लेना असंगत है।

अच्छा तो फिर वह क्या करे? कठपुतली की तरह स्वामी की राह देखती रहे? यह भी तो कम हीनता और दैन्य की बात नहीं है। ना, यह तो बड़ी ही लज्जा की बात है! बहुत ही अशोभन है!

दयालु, भगवान्, तुम उसे उसका कर्त्तव्य बतला दो। तुम्हारा ध्यान तो वह सदा करती आ रही है। तुम ही तो इतने दिन उसे राह दिखाते आ रहे हो, तुम ही तो उसे अब तक अभय-वाणी सुनाते आ रहे हो! तुम्हारी मधुर मूर्ति का ध्यान करके उसने जीवन में शान्ति भी न पाई हो, पर सान्त्वना अवश्य पाई है। तुम्हीं ने तो उसकी हृदयतंत्री बजाकर संगीत के स्वर

में बतला दिया है कि नारी का कर्त्तव्य, माता का कर्त्तव्य और सब कर्तव्यों से बढ़कर होता है। आज इस जटिल संकट-संकुल समय में तुम ही उसे राह दिखाकर कर्तव्य के मार्ग में ले चलो वह धर्म के मार्ग में, सत्य के मार्ग में, प्यार के मार्ग में चल सके, यही उसकी तुमसे प्रार्थना है।

इसी तरह जिस समय संध्या खड़ी-खड़ी आकाश-पाताल कर रही थी, उसी समय उसकी बहन का स्वर सुन पड़ा। संध्या ने चौंककर दरवाजे की ओर मुँह फेरा। साथ ही साथ उसके दाहने हाथ ने आँचल को सिर पर तनिक और आगे खिसका दिया।

"रमेन बाबू, दरवाजा बंद कर दीजिएगा।"

सुरमा के ये शब्द सुनते ही संध्या का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। वह शब्द जैसे उसके मस्तिष्क में गूँज उठा।

घड़ी क्या युग हो जाती है?

"संध्या!"

यह सम्बोधन संध्या ने सैकड़ों बार सैकड़ों लोगों के मुख से सुना है। किन्तु इन दो संयुक्त अक्षरों में इतनी व्याकुलता, इतना आर्त्तभाव इतनी व्यथा, इतना माधुर्य अब तक कहाँ छिपा हुआ था? यह भी क्या संध्या के विभ्रान्त मस्तिष्क की कल्पना मात्र है?

संध्या ने धीरे-धीरे खिड़की की ओर मुँह फेरा।

"संध्या! संध्या रानी!!"

टेबिल के किनारे स्वामी खड़े थे। दोनों की आँखें चार हुईं। दोनों के बीच में अंतर बहुत थोड़ा था। रमेंद्र के दोनों व्याकुल बाहु कुछ हिलकर फिर स्थिर हो गये।

रमेन्द्र ने काव्य में समुद्र-मंथन का वर्णन सुना था? किन्तु मानव-हृदय समुद्र के मंथन में जो विपुल शब्द उठता है, उसका वर्णन भाषा नहीं कर सकती।

यही उसकी स्त्री है? हाँ, उस दिन तड़के बाग में इसी मूर्ति

ने उसके चित्त को विचलित कर दिया था। भाग्य की विडम्बना इसी को कहते हैं! यह रूप-यौवन से भरी बसन्ती लता के समान प्रफुल्लित नारी ही उसकी इसलोक और परलोक की साथिन है। हाय! अब तक रमेंद्र कहाँ भटकता रहा? उसके घर में ही विधाता ने इतना रूप, इतनी विद्या दे रक्खी। पर वह अंधा है! उसने इस रत्न को पहचाना नहीं। मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता रहा! इस, महीयसी महिला में आँखों को चौंधिया देनेवाला रूप अवश्य नहीं है; पर जो कुछ है, वह आँखों को शान्ति देनेवाला है। बिजली की चमक क्षणस्थायी होती है, पर घर के दीपक का प्रकाश चिरस्थायी।

स्टेशन से लौटने के बाद उस दिन शाम के बाद एकान्त में माता और पुत्र के बीच जो बातचीत हुई थी, वह रमेन को याद आ गई। अनुतप्त पुत्र के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद के साथ माता ने कहा था—बेटा, मेरे सारे जीवन के विश्वास और भक्ति की पूँजी तू ही है। तेरे ऊपर मुझे दृढ़ विश्वास है। वह जिसमें बना रहे, यही मैं चाहती हूँ बेटा। तेरी मा की और कोई कामना नहीं है। और एक बात याद रखना। मेरी सती लक्ष्मी बहू का अनादर न करना, कभी उसे कष्ट न देना। मेरे बड़े पुण्यों के प्रभाव ने तूने उसको पाया है। तूने उसे पहचाना नहीं, इसीसे अब तक उसका आदर नहीं किया। इसे मैं तेरा दुर्भाग्य समझती हूँ। मैं आशीर्वाद करती हूँ, तू मेरी जन्म भर की साधना को सफल कर।

माता के ये शब्द उसके हृदय में इस समय गूँजने लगे।

वह लोभी है, घोरतर लोभी है! किन्तु लोभ के वश होकर वह इस पुण्य की प्रतिमा को क्या स्पर्श कर सकता है? ना, ना, समाज और धर्मविधि के अनुसार ऐसा करने का अधिकार शायद उसे है। किन्तु अपने कामकलुषित हृदय के घृणित घाव को छिपाकर अब वह अग्रसर न होगा!

इतने दिन क्या वह अंधा ही था? सत्य ही सुरमा ने कहा है कि गले में रत्नों का हार रहने पर भी मूढ़ रत्न की खोज में इधर-उधर मारा-मारा फिरता है!

एकटक वह जवानी के फूलों से लदी और आडंबर के बाहुल्य से हीन पत्नी के मनोहर शरीर की ओर ताकता रहा। हृदय को मथकर एक लंबी साँस उसके मुँह से निकल गई।

अधीर आग्रह को बलपूर्वक रोककर रमेन्द्र स्वप्नाविष्ट की तरह कह उठा—तुम, तुम संध्या—इतनी सुन्दर हो!

फिर, फिर वही सौन्दर्य की स्तुति!

संध्या ने नीची नजर से स्वामी की ओर फिर देखा। उस सुन्दर मुख में यह यंत्रणा की गहरी छाप कैसी देख पड़ती है? नेत्रों में अद्भुत चमक कैसी है? कंठस्वर में यह गहरा आर्त्तनाद क्यों है?

नारी का स्नेहशील कोमल हृदय सहसा सहानुभूति और करुणा से पसीज उठा। अनजान में ही संध्या दो-एक पग स्वामी की ओर बढ़ आई।

रमेन्द्र ने कहा—मेरे मन के पाप को तुम नहीं जानतीं संध्या। मन की आग में, यंत्रणा की जलन में, दिन-रात मैं जला किया हूँ। अब भी वह शान्त नहीं हुई। सन्ध्या, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ—कभी नहीं हूँ। वही इतिहास आज तुम्हारे सामने कहूँगा। सुनकर अगर तुम्हें मुझसे घृणा हो तो—घृणा होना ही स्वाभाविक है—तो घृणा करके मेरी ओर से मुँह फेर लेना। और—और—यदि हो सके तो—यदि सुनकर मुझ पापी पर दया हो आवे तो—अपने इस भाग्यहीन, विडम्बनाभोगी स्वामी का हाथ पकड़कर, अपने पावन स्पर्श के प्रभाव से, राह दिखाकर शान्ति के राज्य में ले चलना। बस।

संध्या ने विस्मय के साथ स्वामी की ओर देखा। वह कुछ भी समझ नहीं पाती थी। किन्तु रमेन की बातचीत और कहने का

ढंग ऐसा था कि न समझ पाने पर भी संध्या का हृदय जैसे टूक-टूक हुआ जाता था।

रमेंद्र तब धीरे-धीरे एक-एक करके अपने मन का सारा इतिहास कहने लगा। उसने कुछ भी नहीं छिपाया। उस समय छिपाने की प्रवृत्ति भी उसमें नहीं थी। आज वह जिसके सामने ये सब बातें कह रहा है, उसे उसके जीवन के प्रतिदिन का इतिहास जानने का न्यायसंगत और धर्मसंगत अधिकार है। उससे बढ़कर और किसी का दावा नहीं हो सकता।

सुनते-सुनते संध्या के हृदय में क्षोभ, अभिमान, वेदना और सहानुभूति की एक-एक प्रचण्ड लहर उठने लगी।

पश्चात्ताप से अधीर अपराधी विचारक के सामने जैसे निश्चित दृढ़ता के साथ अपना सारा अपराध प्रकट करता है, आज रमेंद्र भी ठीक उसी तरह संध्या के सामने अपने अपराध का वर्णन, विश्लेषण कर रहा था। केवल अपराध का इतिहास ही नहीं, पल-पल पर दारुण ग्लानि और अनुपात से वह किस तरह जला किया है, यह भी उसने नहीं छिपाया। लखनऊ आकर पराई स्त्री समझकर भी, संध्या के गीत और श्लोक की आवृत्ति सुनकर, प्रातःकाल के प्रकाश में बाग़ के भीतर उसे देखकर वह कैसे मुग्ध हो गया था, यह भी रमेंद्र ने नहीं छिपाया।

रमेंद्र की कथा उपन्यास से भी बढ़कर विचित्र थी! हृदय-राज्य की कामना, निष्फलता, वेदना और निराशा की कहानी ने संध्या पर बड़ा प्रभाव डाला। छाती के ऊपर दोनों हाथ बाँधे स्वामी उसके सामने विचारार्थी अपराधी की तरह खड़े हैं! संध्या और सहन न कर सकी। उसका नारी-हृदय करुणा से जैसे विचलित हो उठा।

पिता की उपदेशवाणी—सौ-सौ बार सुनी हुई महावाणी अस्कमात् उसकी हृदय-तंत्री में बज उठी—"जितनी सयानी होती

जाओगी, उतना ही संसार का भार सिर पर पड़ेगा। एक बात याद रखना, जीवन में कभी किसी मनुष्य से घृणा न करना। क्योंकि अवस्था-संकट अथवा विपरीत स्थिति में पड़कर मनुष्य पाप करता है, परन्तु किसी पापी या अपराधी से घृणा करना या उसे त्याग करना उचित नहीं। मनुष्य के धर्मशास्त्र की यह मुख्य बात कभी न भूलना कि यदि तुम एक मनुष्य को भी उसका हाथ पकड़कर कीचड़ से उबार सको, पाप से उसका उद्धार कर सको तो तुम्हारा जन्म सफल हो गया।"

ये अमूल्य उपदेश पिता ने अनेक बार अनेक प्रकार से दिए थे। इस संकट के समय पिता के उपदेश का यह मूल-मंत्र उसके कानों में गूँजने लगा। वह स्त्री है—स्वामी के धर्म, कर्म, सुख दुःख, विपत्ति, संपत्ति, सभी अवस्थाओं में स्वामी की अर्द्धांगिनी होने के नाते उनमें भाग लेनेवाली है। हाँ, वह पत्नी के कर्त्तव्य का पालन करेगी।

भाव की अधिकता से उसके नेत्र भी सूखे नहीं रहे। किसी तरह अपने को सँभालकर संध्या धीर दृढ़ गति से स्वामी की ओर अग्रसर हुई। अब तक वह अपने प्रथम कर्त्तव्य तक को भूली हुई थी। प्रथम सम्भाषण की मानसिक चंचलता इस विस्मृति का कारण अवश्य है; किन्तु—

संध्या ने स्वामी के सामने झुककर प्रणाम किया, उसकी चरण-रज माथे में लगाई। उसके स्पर्श में रमेंद्र का शरीर जैसे काँप उठा। यह क्या क्षमा का निदर्शन है? पत्नी ने क्या उस पापी को क्षमा कर दिया?

बहुत दिनों के घात-प्रतिघात से रमेंद्र का हृदय चूर-चूर हो रहा था। सबल देह के भीतर दुर्बल हृदय और सहन न कर सका, रमेंद्र अचेत-सा हो चला।

"यह क्या!—आप—तुम—ऐसा क्यों कर रहे हो?" कहती

हुई संध्या ने बढ़कर काँपते हुए हाथों से संकोच त्याग स्वामी को सँभालकर आराम कुर्सी पर लिटा दिया।

रमेंद्र की आँखों से आँसू बह चले। दोनों हाथ जोड़े ऊपर दृष्टि किये वह थोड़ी देर चुपचाप पड़ा रहा।—तुम हो, सचमुच तुम हो प्रभु! वेदना-कातर हृदय से जी भरकर पुकारने से तुम अवश्य सुनते हो। तुम्हें प्रणाम, तुम्हें धन्यवाद! तुम्हारी असीम दया को जीवन भर मैं नहीं भूलूँगा स्वामी।

संध्या उस समय एकाग्र चित्त से पश्चात्ताप के प्रायश्चित्त से विशुद्ध स्वामी के आँसुओं से धुले हुए मुख की ओर देख रही थी। उसके कोमल बाहुओं के स्पर्श की अनुभूति रमेंद्र के शरीर और मन में जिस शान्त आनन्द-रस की सृष्टि कर रही थी, उसमें नशा नहीं था, तृप्ति थी। उसे जान पड़ने लगा, जैसे वह पवित्र जाह्नवी-जल में स्नान कर रहा है। उसके चारों ओर जैसे पवित्रता का वायु-मण्डल व्याप्त हो रहा है, स्वर्ग की सौरभ छाई हुई है। रमेंद्र अपने मन में कहने लगा—हे प्रभो, जीवन के इस पवित्र शुभ मुहूर्त्त को चिरस्थायी बना दो।

सामने दीवार में अन्नपूर्णाजी का चित्र लगा हुआ था। जगद्धात्री माता अन्नपूर्णाजी अन्नभण्डार से विश्व के परम देवता को—भिखारी शंकर को, उनके फैले हुए हाथ में अन्न दे रही हैं। कैसी मधुर कल्पना है! कैसा पवित्र और सुन्दर दृश्य है! रमेंद्र को जान पड़ा, अनन्त प्रेममयी जगन्माता विश्ववासियों के साथ स्वयं विश्वनाथ को प्रेमरूप जीवन-सुधा बाँट रही हैं। भिखारी रमेंद्र क्या सहधर्मिणी के हिरण्मय हृदयागार से दी हुई प्रेम की अन्न-सुधा हाथ फैलाकर प्राप्त करने का सुअवसर नहीं पावेगा?